पंचम गणधर भगवत् सुधर्मा स्वामि प्रणीत

सप्तम तथा नवम अंग

सचित्र
उपासकदशा एवं अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र

मूल शुद्ध पाठ हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद-विवेचन रंगीन चित्रों सहित

❖ प्रधान सम्पादक ❖

उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के सुशिष्य

उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि

❖ सह-सम्पादक ❖

श्री तरुण मुनि

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

❖ अंग्रेजी अनुवाद ❖

श्री राजकुमार जैन

पद्म प्रकाशन

पद्म प्रकाशन, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

श्रुत-सेवी उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. की दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती के मंगल प्रसंग पर प्रकाशित

सचित्र आगममाला का दसवाँ पुष्प

- सचित्र उपासकदशा एवं अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र

- **प्रधान सम्पादक**
  उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि

- **सह-सम्पादक**
  श्री तरुण मुनि
  श्रीचन्द सुराना 'सरस'

- **अंग्रेजी अनुवाद**
  श्री राजकुमार जैन (दिल्ली)

- **चित्रकार**
  डॉ. श्री त्रिलोक शर्मा

- **प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान**
  पद्म प्रकाशन
  पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

- **मुद्रण-व्यवस्था**
  दिवाकर प्रकाशन
  ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  दूरभाष : (०५६२) ३५११६५

- **प्रथम आवृत्ति**
  वि. सं. २०५७, चैत्र
  ईस्वी सन् २००१, मार्च

- **मूल्य**
  पाँच सौ रुपया मात्र

Seventh and Ninth Angas by
FIFTH GANADHAR BHAGAVAT SUDHARMA SWAMI

ILLUSTRATED
UPĀSAK-DASHĀ & ANUTTARAUPAPĀTIK-DASHĀ SŪTRA

Original Text, Hindi and English Translations with elaboration and colourful illustrations

✦ EDITOR-IN-CHIEF ✦

Up-pravartak Shri Amar Muni

(the disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra Ji Maharaj)

✦ CO-EDITORS ✦

Shri Tarun Muni

Srichand Surana 'Saras'

✦ ENGLISH TRANSLATION ✦

Shri Raj Kumar Jain

PADMA PRAKASHAN

PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-110 040

Published on the occasion of the Diksha Golden Jubilee Year of Shrut-Sevi Up-pravartak Shri Amar Muni Ji M.

ILLUSTRATED AGAM PUBLICATION SERIES : BOOK TEN

- ILLUSTRATED UPASAK-DASHA & ANUTTARAUPAPATIK-DASHA SUTRA

- *Editor-in-Chief*
  Up-pravartak Shri Amar Muni
- *Co-Editors*
  Shri Tarun Muni
  Srichand Surana 'Saras'
- *English Translator*
  Shri Raj Kumar Jain (Delhi)
- *Illustrator*
  Dr. Shri Trilok Sharma
- *Publisher and Distributor*
  Padma Prakashan
  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040
- *Printer*
  Diwakar Prakashan
  A-7, Awagarh House, M.G. Road, Agra-282 002
  Phone : (0562) 351165
- *First Edition*
  Chaitra, 2057 V.
  March, 2001 A.D.
- *Price*
  Five Hundred Rupees only (Rs. 500)

समर्पण

परमश्रद्धेय
उत्तर भारतीय प्रवर्तक
राष्ट्रसन्त गुरुदेव

भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज

की सेवा में
सविनय समर्पित

गुरुदेव का कृपाकांक्षी
विनयाधीन चरण सेवक
तरुण मुनि

शुभ योग में [illegible]
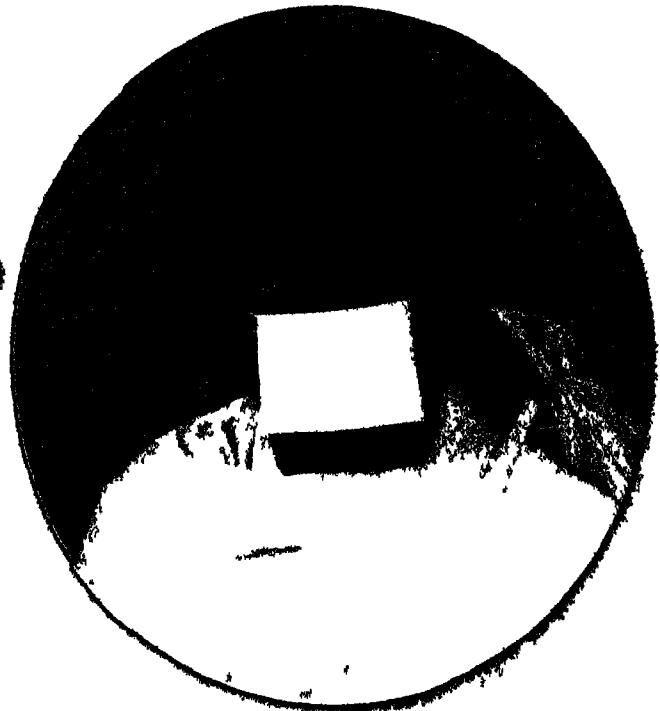
श्री उग्रसैन जैन श्रीमती सुन्दरी देवी जैन
विवेक विहार, दिल्ली
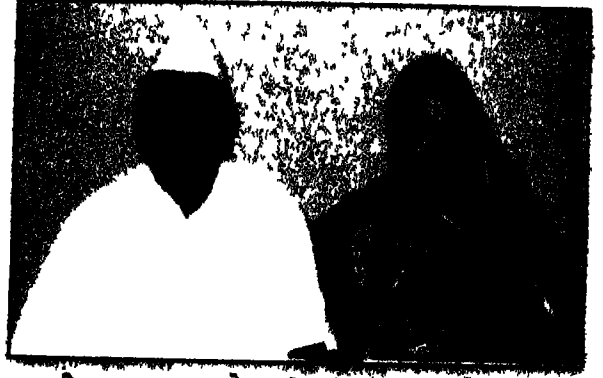
श्री जय भगवान जैन श्रीमती विद्यावती जैन
योजना विहार, दिल्ली

श्री सुभाष जैन श्रीमती सुलोचना जैन
हुड्डा कॉलोनी, पानीपत
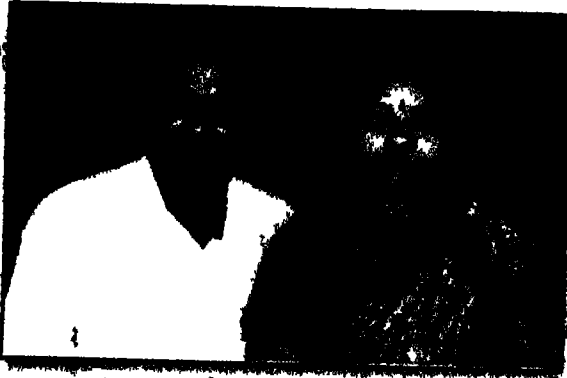
श्री अनिल जैन श्रीमती मंजू जैन
(मुआने वाले) विश्वा अपार्टमेंट, दिल्ली

श्री सुरेन्द्रपाल जैन श्रीमती माया देवी जैन
(मानसा वाले) शास्त्री नगर, दिल्ली

श्रुत सेवा में समर्पित सहयोग प्रदाता

श्रीमती शशि जैन, श्री सुभाषचन्द जैन
विवेक विहार, दिल्ली

श्री सुशील कुमार जैन श्रीमती कौशल्या देवी जैन
योजना विहार, दिल्ली

श्री अमित जैन श्रीमती रीना जैन
अशोका निकेतन, दिल्ली

श्रीमती दर्शना देवी जैन, श्री महावीर प्रसाद जैन
शास्त्री नगर, दिल्ली

श्री पन्नालाल जैन श्रीमती माला देवी जैन
पश्चिम विहार, दिल्ली
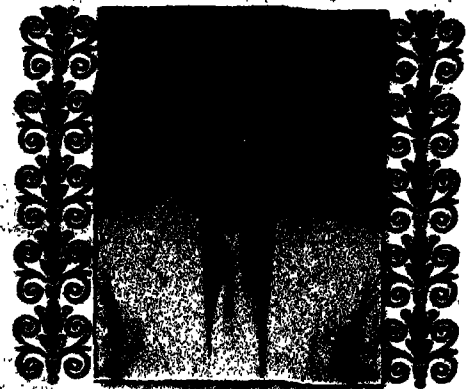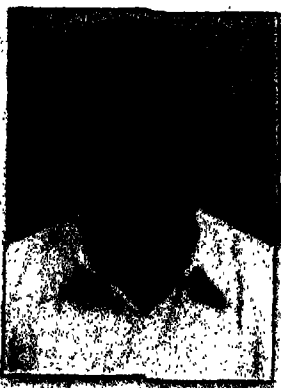
प्रकाशकीय

आज से लगभग नौ वर्ष पहले जैनशास्त्रों के सचित्र हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद तथा विवेचन सहित प्रकाशन की योजना लेकर हम श्रुत-सेवा के क्षेत्र में उतरे थे। उस समय इतनी लम्बी योजना हमारे सामने नहीं थी, न ही इतने सुन्दर उत्साहजनक परिणाम की अपेक्षा थी, परन्तु शासनदेव की कृपा तथा पूज्य गुरुदेव श्री भण्डारी जी म. का आशीर्वाद एवं उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. का साहसिक निर्णय, दृढ़ संकल्प और अथक परिश्रम का यह सुपरिणाम है कि हम अब तक सात सूत्रों के नौ भागों का प्रकाशन कर चुके हैं और इस वर्ष एक साथ उपासकदशा एवं अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र तथा अनुयोगद्वारसूत्र (प्रथम खण्ड) यों दो शास्त्रों का प्रकाशन करने में सफल हो रहे हैं।

हम विश्वास व दृढ़तापूर्वक इस कार्य को आगे बढ़ाते रहने का संकल्प करते हैं और आशा है सभी सज्जनों का सहयोग हमें निरन्तर मिलता रहेगा। जिनवाणी का प्रकाश हम समूचे विश्व में फैलाते रहेंगे, यह पूर्ण विश्वास रखते हैं।

सम्पादन में प्रसिद्ध विद्वान् श्रीचन्द सुराना 'सरस' का, अंग्रेजी अनुवाद में विद्वान् तत्त्वज्ञ श्रावक श्री राजकुमार जी जैन, दिल्ली; संशोधन में श्री सुरेन्द्र बोथरा, जयपुर एवं चित्रकार डॉ. त्रिलोक शर्मा का सहयोग प्राप्त हुआ है, इनके सहयोग के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञ हैं। ग्रन्थ को अन्तिम रूप देने में इनका सहयोग महत्त्वपूर्ण रहा है।

इस प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों ने हमें आर्थिक सहयोग प्रदान कर इतने व्यय-साध्य कार्य को सुगम बनाया है हम उनके आभारी हैं।

विनीत
महेन्द्रकुमार जैन
अध्यक्ष
पद्म प्रकाशन

PUBLISHER'S NOTE

About nine years back, we had launched the project of publication of Jain Scriptures with original text, Hindi and English translations and illustrations. At that time, we did not have in mind such a broad-based planning nor we expected so good and encouraging results. But with the grace of the protecting diety and the blessings of Reverend Gurudev. Shri Bhandari Ji M. bolstering the bold decision, determination and ceaseless efforts of Up-pravartak Shri Amar Muni Ji M., we have been able to publish six *Agams* in nine books. This year we have succeeded in publishing *Upasak-dasha & Anuttaraupapatik-dasha* and *Anuyogadvar Sutra* (First Part).

We once again resolve to engage ourselves in this project with faith and determination. We hope that we shall receive the assistance of all concerned as before. We have full confidence that we shall continue to spread the beacon-light of *Jina-Vani* in the entire world.

We express our earnest gratitude to Srichand Surana 'Saras' for his expert editing; scholarly *shravak* Shri Raj Kumar Jain, who has profound knowledge of scriptures, for English translation; Dr. Trilok Sharma for his lively illustrations; and Shri Surendra Bothara for reading final proofs. We value their contribution in giving final shape to the publication.

We express our gratitude and indebtedness to magnanimous devotees who have financially contributed in this project to make this ambitious project a success.

Mahendra Kumar Jain
PRESIDENT
Padma Prakashan

सहायक ग्रन्थ : सादर कृतज्ञता

■ **श्री उपासकदशांगसूत्रम्**

संपादक : जैनधर्म दिवाकर आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म.

संपादक : डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.

प्रकाशन वर्ष : ईस्वी सन् १९६४

प्रकाशक : आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना

उवासगदसाओ

प्रधान संपादक : युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

संपादक : डॉ. छगनलाल शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.

प्रकाशन वर्ष : ईस्वी सन् १९८०

प्रकाशक : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

■ **अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र**

संपादक : श्री विजय मुनि शास्त्री

प्रकाशन वर्ष : जून १९६१

प्रकाशक : सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

■ **अनुत्तरौपपातिकदशा**

संपादक : युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

संपादक : डॉ. साध्वी मुक्तिप्रभा जी, एम. ए., पी-एच. डी.

प्रकाशक : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

REFERENCE BOOKS

- **Shri Upasak-dashanga Sutra**
  Editor : Jain Dharm Diwakar Acharya Shri Atmaram Ji M.
  Editor : Dr. Indra Chandra Shastri, M.A., Ph.D.
  Publication Year : 1964 A.D.
  Publisher : Acharya Shri Atmaram Jain Prakashan Samiti, Ludhiana

  Uvasag-dashao
  Editor-in-Chief : Yuvacharya Shri Madhukar Muni
  Editor : Dr. Chhagan Lal Shastri, M.A., Ph.D.
  Publication Year : 1980 A.D.
  Publisher : Agam Prakashan Samiti, Beawar

- **Anuttaraupapatik-dasha Sutra**
  Editor : Shri Vijay Muni Shastri
  Publication Year : June 1961
  Publisher : Sanmati Jnan Peeth, Agra

- **Anuttaraupapatik-dasha**
  Editor : Yuvacharya Shri Madhukar Muni
  Editor : Dr. Sadhvi Mukti Prabha, M.A., Ph.D.
  Publisher : Agam Prakashan Samiti, Beawar

प्राक्कथन

आगमों का विषय

भगवान महावीर की वाणी का संग्रह, उनके उपदेश तथा तत्त्वज्ञान मूलक सिद्धान्तों का संकलित रूप 'आगम' कहलाता है। आगमों में अनेक प्रकार के विषय हैं। द्रव्य, आत्मा, जीव, अजीव, पुद्‌गल, कर्म, संसार, नरक, स्वर्ग, सूर्य, चन्द्र, समुद्र, पर्वत आदि विविध विषयों का वर्णन आगमों में प्राप्त होता है। पूर्वों में तो ज्योतिष, निमित्त, यंत्र, मंत्र, तंत्र विविध विद्याएँ आदि का भी ज्ञान संग्रहीत था, जो आज अनुपलब्ध है। उन बहुविध, बहुविषयक आगमों को आचार्यों ने चार अनुयोगों में विभक्त किया है। जैसे–द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, धर्मकथानुयोग और गणितानुयोग। द्रव्यानुयोग में जीव, अजीव, कर्म, पुद्‌गल आदि का विषय है। चरणकरणानुयोग में आचारशास्त्र का वर्णन है। धर्मकथानुयोग में धर्मतत्त्व को समझाने के लिए उदाहरण, दृष्टान्त, रूपक आदि की बहुलता है। गणितानुयोग में सूर्य, चन्द्र, स्वर्ग, नरक, समुद्र, पर्वत आदि गणित सम्बन्धी विषयों का समावेश है।

प्रस्तुत उपासकदशा और अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। इनमें धर्माचरण का व्यावहारिक स्वरूप समझाने वाले वृत्तान्त/दृष्टान्त/उदाहरण हैं।

धर्म का आधार आचार है। धर्म प्राणतत्त्व है तथा आचार उसका शरीर है। आचार के रूप में ही धर्म जीवन्त और मूर्तिमान दीखता है। समस्त अंगसूत्रों का सार आचार है।

ग्यारह अंगसूत्रों में आचारांगसूत्र आचार धर्म का प्रतिपादक मुख्य आगम है। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि में भी श्रमण आचार का वर्णन है।

द्वितीय अंग–सूत्रकृतांग में तत्त्वज्ञान व दर्शन सम्बन्धी चर्चा है। पंचमांग भगवतीसूत्र में तत्त्वज्ञान, आचार, द्रव्य आदि तथा दृष्टान्त आदि के रूप में चारों अनुयोगों का विषय है।

सप्तम अंग–उपासकदशा, अष्टम अंग–अन्तकृद्दशा तथा नवम अंग–अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र धर्मकथानुयोग में समाहित हैं। इनमें धर्मकथाओं के माध्यम से श्रावकाचार तथा श्रमणों के जीवन की उत्कृष्ट तप आराधना का विषय है जो आचार धर्म का ही अंग है।

बत्तीस आगमों में श्रमणाचार के प्रतिपादक आगम तो अनेक हैं परन्तु श्रावकाचार का परिपूर्ण प्रतिपादन केवल उपासकदशासूत्र में ही मिलता है।

उपासकदशा का विषय

श्रावक का जीवन श्रमण-जीवन का आधार है। श्रमण-जीवन की साधना बहुत कठिन है। इसलिए हर किसी के लिए श्रमण बनना सम्भव नहीं है। परन्तु श्रावक धर्म तो इतना सहज और

उपयोगी है कि उसकी आराधना हर कोई कर सकता है और हर एक मोक्षाभिलाषी को श्रावक जीवन का आदर्श तो स्वीकारना ही चाहिए। सच्चा श्रावक एक आदर्श नागरिक होता है। उसका जीवन नैतिकता, सामाजिकता, राष्ट्रीयता के आदर्शों से बँधा होते हुए भी अध्यात्म-परायण होता है। श्रावक का अर्थ है—एक जागृत आत्मा।

उपासकदशासूत्र में श्रावक के व्रतों का बड़ा ही संतुलित और सुव्यवस्थित वैज्ञानिक वर्णन है। साथ ही व्यावहारिक भी है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे सार्वभौम सिद्धान्तों का सम्पूर्ण पालन करना गृहस्थ के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए उसे एक ऐसी मर्यादापूर्ण संतुलित, व्यावहारिक आचार विधि की आवश्यकता है जिसके अनुसार चलता हुआ वह अपने जीवन को धर्मानुकूल भी बनाये रखें, साथ ही परिवार व समाज के दायित्वों का उचित निर्वाह करता हुआ जीवन की एक आदर्श शैली का अनुसरण कर सकें। 'उपासक + दशा' का अर्थ है—उपासकों की वह 'उदात्त दशा' अर्थात् जीवन-शैली या 'स्थिति'। इसका वर्णन करने वाला यह सप्तम अंग—'उपासकदशा' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसमें भगवान महावीर के दस प्रमुख प्रसिद्ध उपासकों का वर्णन है तथा इसके दस अध्ययन हैं। इस कारण भी इसे 'उपासकदशासूत्र' कहा जाता है। ये दस उपासक अपने-अपने क्षेत्र के प्रभावशाली, सम्मानित, सम्पन्न और दृढ़ संकल्पबली व्यक्ति थे।

भगवान महावीर के एक लाख उनसठ हजार श्रावकों में दस श्रावकों का वर्णन ही क्यों किया गया? यह प्रश्न खड़ा होता है। परन्तु इस सूत्र का अध्ययन करने पर उत्तर भी इसी से मिल जाता है। क्योंकि ये विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे प्रमुख व्यक्ति हैं, जिनके पास धन-ऐश्वर्य, सुख-भोग के असीम, अपार साधन उपलब्ध होते हुए भी उनका त्याग किया और जीवन को धर्म के लिए समर्पित कर दिया। ऐश्वर्य एवं भोग के साधन सुलभ होना कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है, परन्तु उनका स्वेच्छापूर्वक त्याग कर देना महत्त्वपूर्ण है। इसी में त्याग की महिमा है। वह त्याग का आदर्श मार्ग है। इसलिए ये दस श्रावक-त्याग के आदर्श प्रतीक हैं। दूसरी बात, ये दसों श्रावक अत्यन्त दृढ़ श्रद्धा-सम्पन्न, धृति-सम्पन्न और जीवन-पर्यन्त धर्म की अखण्ड आराधना करते हैं।

श्रावकों के लिए एक विशेषण आया है—"आओग-पओग संपउत्ते।" अर्थात् व्यापार में वे नीति और मर्यादा का पूर्ण पालन करते थे। हजारों कर्मचारियों, दास-दासी, हजारों पशुओं आदि का भरण-पोषण, संरक्षण करने में बड़े कुशल व दक्ष थे। मेरे विचार में दरिद्र का त्याग, त्याग तो है, परन्तु वह दूसरों के लिए आदर्श नहीं बन सकता। भगवान स्वयं फरमाते हैं—

"जे य कंते पिये भोए लद्धे विपिट्ठीकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्चई।।"

जो प्राप्त हुए कान्त, प्रिय और मनोहर भोग साधनों का स्वाधीनतापूर्वक अर्थात् स्वेच्छापूर्वक त्याग करता है, वही वास्तव में त्यागी है। संसार में सम्पन्नता में त्याग, दरिद्रता में दान, यौवन में

ब्रह्मचर्य, सत्ताधीशता में क्षमा और समृद्धि में शील-सदाचार का पालन करना आदर्श माना जाता है। दसों श्रावकों के जीवन में यह आदर्श दिखाई देता है। इसी कारण इन दस श्रावकों का वर्णन इस आगम में किया है।

अणुव्रत का अर्थ

साधु अहिंसा, सत्य आदि का सम्पूर्ण रूप में पालन करता है। इसलिए उसके ये नियम महाव्रत कहलाते हैं। श्रावक उन व्रतों के पालन में कुछ छूट भी रखता है, मर्यादा एवं सीमा बाँधता है और सीमित रूप में उनका यथाशक्ति पालन करता है। इसलिए उसके व्रत 'अणुव्रत' कहे जाते हैं। 'अणुव्रत' का अर्थ छोटा व्रत नहीं है। 'व्रत' तो व्रत होता है, उसमें छोटा या बड़ा जैसा कुछ नहीं होता। वह तो एक संकल्प है, एक निष्ठा है। किन्तु भोगों के प्रति विरक्ति हुए बिना व्रत का संकल्प नहीं जगता। व्रत चाहे छोटा हो या बड़ा हो, वह तो महान् है, क्योंकि उसके साथ दृढ़ संकल्प, भोग-विरक्ति और आत्म-शुद्धि का लक्ष्य-ये तीन बातें जुड़ी होती हैं। किन्तु व्रत ग्रहण करने वाले साधक की भूमिका, क्षमता और नियम पालन की काल-मर्यादा के कारण उसके 'महा' और 'अणु' दो रूप हो जाते हैं। अपवादरहित अर्थात् आगाररहित व्रत 'महाव्रत' कहलाते हैं तथा आगार सहित व्रत 'अणुव्रत'।

प्रत्येक व्यक्ति का मनोबल, पराक्रम, धैर्य, संकल्प शक्ति, सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियाँ एक समान नहीं होतीं। साधु तो सामाजिक भूमिका से ऊपर उठ जाता है, परन्तु गृहस्थ के अपने सामाजिक, पारिवारिक तथा राजनीतिक एवं प्रशासनिक दायित्व व मर्यादाएँ होती हैं। उनका निभाव व पालन करते हुए वह स्वयं को व्रतों के अनुरूप ढालता है, कभी कहीं परिस्थितियों के अनुसार ढलना पड़ता है। वह न तो उन परिस्थितियों की उपेक्षा कर सकता है और न ही उनकी दासता स्वीकार करता है, किन्तु अपने विवेक के अनुसार समझौता करके धर्म का भी पालन करता है और समाज-मर्यादा व पारिवारिक दायित्व को भी निभाता है।

उपासकदशासूत्र में श्रावक जीवन की इस विवेकपूर्ण चर्या का दिग्दर्शन होता है। वे समाज में रहते हुए धर्माचरण का उत्कृष्ट और उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

धन का विभाजन करने की नीति

इस सूत्र में श्रावकों की विशाल सम्पत्ति का वर्णन करने के साथ यह भी बताया है कि वे धन सम्पत्ति का विभाजन बड़ी कुशलतापूर्वक करते थे। धन का विभाजन करना उस समय की आदर्श गृहस्थ नीति का एक नमूना है। उस समय का धनपति अपनी सम्पत्ति के तीन भाग करता है। जितनी सम्पत्ति है, उसका एक तीसरा भाग ही व्यापार में लगाता है। यह नहीं कि अपनी क्षमता व सामर्थ्य से अधिक कर्ज लेकर अंधाधुंध व्यापार करे।

इस नीति के कारण वे सदा ही निश्चिन्त और सुरक्षित रहते थे। कभी व्यापार में घाटा लग जाये, खेती में नुकसान हो जाये तो सुरक्षित धन में से उस घाटे की पूर्ति करके व्यापार को चौपट

नहीं होने देते। उन्हें व्यापार में कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जीवन में कभी आकुलता, उद्विग्नता और अपमान व तिरस्कार सहना नहीं पड़ता। सम्पत्ति का तीसरा भाग सदा ही सुरक्षित पूँजी के रूप में निधान में रखने से संकटकाल में या किसी भी अनचाही स्थिति में इस धन का उपयोग किया जा सकता है और वे तीसरे भाग से घर-परिवार का भरण-पोषण, साधन-सामग्री जुटाते। उनके जीवन में आडम्बर व प्रदर्शन नहीं, स्वावलम्बन रहता। सादगी और सन्तुलन बना रहता। **'तेते पाँव पसारिये, जेती लाम्बी सौर'** का सन्तुलित और अनुकरणीय आदर्श भी उनके जीवन को सदा सुखी रखता था।

आनन्द आदि के जीवन से यह भी ध्वनित होता है कि जब तक वे समाज व परिवार के कार्यों में अग्रणी होकर भाग लेते थे, पूरे मान-सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ काम किया। धर्म-साधना के साथ-साथ परिवार का पालन, संरक्षण और समाज की अभिवृद्धि के कार्यों में सदा ही अपना योगदान करते रहे हैं, और जब देखा कि अब शरीर क्षीण हो रहा है, शक्ति कम हो रही है, दायित्वों का निर्वाह करने में कठिनाई अनुभव हो रही है तो फिर उस मान-प्रतिष्ठा व अधिकारों से चिपटकर नहीं रहे, बल्कि समूचे समाज की साक्षी में परिवार के समस्त कर्त्तव्यों और दायित्वों का भार अपने पुत्रों को सौंपकर स्वयं अपनी आत्म-साधना में लग गये। धन और अधिकारों का विसर्जन कर चिन्ता-मुक्त हो गये। श्रावकों की यह जीवन-शैली उस आदर्श को सूचित करती है कि वे गृहस्थ जीवन में रहे तो भोगों के, इन्द्रियों के दास बनकर नहीं रहे, बल्कि अपने तन-मन के स्वामी बनकर रहे और त्याग मार्ग पर बढ़ते ही अपने स्वामी स्वयं बनकर जीये।

श्रावकों के जीवन प्रसंगों से यह भी पता चलता है कि जब वे भगवान का प्रवचन सुनते हैं, तो सहज ही उनके भीतर त्याग की प्रेरणा जगती है, स्वतः प्रेरित होकर अपने असीम भोग-साधनों की सीमा बाँधते हैं और धन, वैभव, भोगोपभोग की सामग्री की मर्यादा करते हैं। अन्तर प्रेरणा से जो त्याग करता है, उसे जो आनन्द भोग में प्राप्त था वही आनन्द त्याग में भी अनुभव होता है। स्वतः प्रेरित त्याग सहज साधना बन जाता है।

आनन्द आदि श्रावकों के जीवन के वर्णन से यह भी पता चलता है कि उनके जीवन में धन-वैभव, सुख-सुविधाएँ, मान-सम्मान, उच्च प्रतिष्ठा आदि किसी भी बात की कमी नहीं है और जब वे भगवान के उपदेशों से प्रेरित होकर त्याग मार्ग को स्वीकार करते हैं, तो धीरे-धीरे उन भोग साधनों को छोड़ते जाते हैं, अपने आप पर संयम, नियंत्रण करते हुए एक दिन सभी भोग साधनों को त्यागकर तप संयम की आराधना में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि न तो शरीर की परवाह करते हैं न ही परिवार की। सुखों में जीने वाले एकदम शरीर-सुख से मुँह मोड़ लेते हैं। शरीर अस्थि पंजर बन जाता है फिर भी वे अपनी साधना में दृढ़ और स्थिर रहते हैं। देवता परीक्षा करने आते हैं, अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग देते हैं तब भी अपनी साधना से विचलित नहीं होते। जिसे त्याग में सुख और आनन्द का अनुभव हो जाता है, वह उस मार्ग को ही अपना जीवन-लक्ष्य मानकर चलता रहता है।

चरित्रगत मुख्य गुण

श्रावकों के वर्णन में उनके जीवन में जिन चारित्रिक गुणों का सूचन आगम में किया गया है वे भी ध्यान देने योग्य हैं। उनका न्याय नीति से उपार्जित अपार वैभव, नीति व सदाचार का पालन तथा मर्यादा एवं अनुशासन बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

इसके लिए आगम में "**अड्ढे अपरिभूए मेढीपमाणभूए चक्खुभूए**" आदि विशेषण दिये गये हैं जो ध्यान देने योग्य हैं। वे '**अड्ढे**' अर्थात् धन तथा सद्गुणों में मण्डित हैं, उनका जीवन शील-सम्पन्न है, सदाचार-सम्पन्न है।

'**अपरिभूए**'—वे किसी से भी पराभूत अर्थात् हार खाने वाले नहीं हैं। व्यापार, उद्योग, समाज एवं राजनीति में उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली और रौबीला था कि कोई भी उनका अपमान या अवहेलना/उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकता था। किसी कारण समाज में अनादर व तिरस्कार, निन्दा व अपमान के पात्र नहीं बनते। सदा ही सम्मानपूर्ण, प्रतिष्ठापूर्ण, सर्वोत्कृष्ट बनकर जीये। समाज, व्यापार या धर्म—जिस क्षेत्र में भी गये वे श्रेष्ठ बनकर रहे। वे समाज में आदर्श और समाज के भविष्यद्रष्टा बनकर **मेढीपमाणभूए** तथा **चक्खुभूए** बनकर रहे। उनका चरित्र समाज में आदर्श और प्रमाण माना जाता था। **महाजनो येन गतः स पन्था**—के अनुसार वे जो करते थे वह कार्य समाज में नैतिक मान-मर्यादा व प्रमाणभूत होता था तथा वे चक्षुभूत 'धर्म' एवं समाज के मार्गदर्शक होते थे। दूसरों का रास्ता बताने वाले थे, अच्छे सलाहकार और शिक्षक भी थे। वे सत्कर्मों को, सामाजिक श्रेष्ठ कार्यों को, गुणी व्यक्तियों को समाज में प्रोत्साहित करते थे—**सव्व कज्ज वड्ढावए**—अच्छे कार्यों को आगे बढ़ाने वाले थे। गुणियों को प्रोत्साहित करने वाले थे। आगम में आये श्रावकों के ये विशेषण उनके व्यक्तिगत तथा सामाजिक चरित्र के इन श्रेष्ठ गुणों को सूचित करते हैं जो सम्पूर्ण श्रावक वर्ग के लिए प्रेरणादायी हैं।

नारी का सम्मान

श्रावकों के चरित्र में जिन बातों का वर्णन है उससे पता चलता है कि उस युग में नारी जाति का पूर्ण सम्मान था। नारी को मातृ-शक्ति के रूप में, धर्म-सहायिका के रूप में, मित्र और सलाहकार के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा, आदर और आत्मीय सम्बन्धों की मधुरता प्राप्त थी।

जब आनन्द भगवान से धर्म उपदेश सुनकर श्रावक व्रत ग्रहण करके घर आता है तो अपनी पत्नी शिवानंदा से एक मित्र की भाषा में बोलता है—"मैंने भगवान से यह व्रत ग्रहण किया है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी जाओ, उनके दर्शन करो, उपदेश सुनो और धर्म ग्रहण करो।"

सकडालपुत्र, जो गौशालक का परम भक्त था, वह भी प्रभु महावीर का अनुगामी बनता है तो अपनी पत्नी अग्निमित्रा को आदेश की भाषा में नहीं, केवल प्रेरणा की भाषा में बोलता है—"मुझे भगवान का उपदेश और धर्म, नीति, तर्क न्याययुक्त लगा है। तुम भी उनका उपदेश सुनकर चाहो तो उसे स्वीकार कर सकती हो। वे नारी को धार्मिक विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता और सम्मान प्रदान करते हैं।"

दसों श्रावकों के जीवन में केवल एक महाशतक अनेक पत्नियों का स्वामी है, बाकी सभी एक पत्नी व्रतधारी और पत्नी को धर्मानुगामिनी मानकर चलते हैं।

दास–प्रथा

उस युग में दास–प्रथा का प्रचलन था, एक–एक व्यक्ति के पास सैकड़ों दास–दासी रहते थे। परन्तु श्रावकों के आदर्श में बताया है, वह दासों का उत्पीड़न नहीं करते थे, दासों की खरीद–फरोख्त करना भी उनके लिए निषिद्ध था। वे अपने आश्रित दास–दासी ही क्या, पशु–पक्षियों के भरण–पोषण, संरक्षण के प्रति पूर्ण सावधानी रखते थे। श्रावकों के लिए दासों का विक्रय करना वर्जित था।

उस युग में नगरों की बस्ती इतनी सघन नहीं होती थीं। नगरों के बाहर बड़े–बड़े उद्यान रहते थे, जहाँ त्यागी सन्त जन आकर ठहरते थे, उनका निवास नगरों के बाहर उद्यानों में ही होता था।

श्रावकों के पास भी धर्म साधना करने के लिए अपनी स्वतंत्र पौषधशालाएँ होती थीं। घर–परिवार से दूर एकान्त में जाकर वे अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में धर्म साधना किया करते थे।

इन दसों श्रावकों के वर्णन से पता चलता है, उस युग में कृषि–गौपालन प्रमुख व्यवसाय था और यह सबसे अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। पन्द्रह कर्मादानों के वर्णन से यह भी पता चलता है कि श्रावक के लिए हिंसाजीवी, दूसरों का उत्पीड़न करने वाला या सामाजिक अपराधों का प्रोत्साहन देने वाला व्यवसाय निषिद्ध था। सम्यक् आजीविका ही श्रावक का आदर्श था।

इस प्रकार दस श्रावकों का यह वर्णन उस युग की अनेक सामाजिक, पारिवारिक तथा धार्मिक आदर्श रीति–नीति को प्रकट करता है।

श्रावकों का उपसर्ग : मनोबल की कसौटी

"सोना कसौटी पर कसा जाता है।"–इस कहावत के अनुसार साधना के मार्ग पर बढ़ने वालों को जीवन में विघ्न, संकट व संघर्ष का सामना करना पड़ता है। कुन्दन बनने के लिए सोने को अग्नि में तपना ही पड़ता है। अग्नि में पड़कर जो अधिक चमकता है वही सोना कुन्दन कहलाता है। कष्टों व संकटों के बीच जो साधक अविचल रहता है, वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, जो एक बार विचलित होकर पुनः सँभल जाते हैं वे भी लक्ष्य को पा लेते हैं।

परीषह–उपसर्ग या विघ्न कभी अनुकूल मनमोहक रूप में साधक को लुभाते हैं तो कभी विध्वंसक भयानक रूप में साधक को भयभीत करते हैं।

इन श्रावकों में से चार श्रावकों का साधनाकाल उपसर्ग या विघ्नरहित रहता है।

श्रमणोपासक कामदेव को देवता धर्म से विचलित करने के लिए भयानक और रौद्र उपसर्ग करता है, परन्तु वह अविचल रहकर उपसर्ग विजयी बनता है। उसकी धीरता की प्रशंसा स्वयं भगवान महावीर साधु-साध्वियों के सन्मुख करते हैं।

चूलनीपिता पुत्रों की हत्या आँखों के सामने होने पर भी चंचल नहीं हुआ, परन्तु माता की सूक्ष्म ममता ने उसे चंचल/द्रवित बना दिया। माता के उद्‌बोधन ने ही पुनः उसे सावधान कर दिया।

श्रमणोपासक सुरादेव पुत्रों की मोह-माया से डिगा नहीं, परन्तु शरीर में रोगोत्पत्ति की धमकी से रोमांचित हो जाता है। उसके मन में शरीर की ममता छिपी रहती है और वह उसी ममता के कारण विचलित होता है। किन्तु तुरन्त ही सँभल गया और भूल का परिष्कार कर व्रतों की शुद्धि कर ली। चुल्लशतक के मन में सम्पत्ति का मोह छिपा रहता है, तो सकडालपुत्र को अपनी पत्नी अग्निमित्रा से बहुत अधिक मोह होता है। यह परीक्षा एक प्रकार से उनके भीतर छिपी दुर्बलता का अहसास कराती है और वे उसका परिष्कार करके उन दुर्बलताओं से छुटकारा पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, यह देव-परीक्षा उनके भीतर छिपी सूक्ष्म आसक्ति को मिटाने के लिए ही हुई है।

महाशतक के सामने एक विचित्र ही अनुकूल मोहजनक प्रसंग आता है। उसी की पत्नी रेवती उसे मोहजनक चेष्टाएँ करके व्रतों से च्युत करना चाहती है, महाशतक मोह जन्य प्रयत्नों से तो विचलित नहीं होता, परन्तु रेवती के उद्धत-निर्लज्ज व्यवहार से उसका मन क्षोभ से ग्रस्त हो जाता है, अप्रिय वचनों का उच्चारण कर देता है। उसकी कठोर अप्रिय भविष्यवाणी से रेवती आतंकित-भयभीत हो उठती है। भगवान महावीर गौतम स्वामी के माध्यम से इस भूल का अहसास कराते हैं और उसका प्रायश्चित्त करके व्रत शुद्धि की प्रेरणा देते हैं। श्रावक का आदर्श है, वह साधनाकाल में किसी को अप्रिय कठोर वचन भी न बोले।

छठे श्रमणोपासक कुण्डकौलिक के जीवन में भी धर्म दृढ़ता की परीक्षा का प्रसंग आता है। देवता उसे भगवान महावीर का पुरुषार्थवाद त्यागकर मंखलिपुत्र गौशालक का नियतिवाद स्वीकारने की प्रेरणा देता है, किन्तु तत्त्वज्ञानी कुण्डकौलिक देवता को निरुत्तर कर अपनी गहरी तत्त्व-श्रद्धा और तत्त्व-ज्ञान का परिचय देता है।

एक श्रावक को माता तथा तीन को पत्नियाँ प्रतिबोध देती हैं। कामदेव की धीरता और कुण्डकौलिक तत्त्वज्ञता की प्रशंसा स्वयं भगवान महावीर करते हैं।

इस प्रकार उपासकदशासूत्र अपने समय की परिस्थितियाँ, विकसित लोक संस्कृति का चित्रण करता है। श्रावकों के जीवन आदर्शों का, उस युग की कला, संस्कृति, व्यापार, लोक-व्यवहार का बहुत ही सुन्दर और यथार्थ परिचय देता है।

व्रताचरण की वैज्ञानिक प्रस्तुति

इस सूत्र में श्रावक धर्म के व्रतों की बड़ी वैज्ञानिक और हृदयग्राही प्रस्तुति हुई है। 'व्रत' जीवन का एक दृढ़ संकल्प है, संकल्प ही मनुष्य की इच्छा-शक्ति को प्रगट करता है, प्रखर बनाता है।

बारह व्रत श्रावक जीवन की आदर्श-शैली है, इसमें धर्माचरण की सम्पूर्ण पद्धति का समावेश हो गया है।

बारह व्रतों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है–

(१) **शीलव्रत**–पाँच अणुव्रतों को शीलव्रत कहा गया है। शील अर्थात् आचार। आचार का मुख्य आधार पाँच अणुव्रत हैं।

(२) **गुणव्रत**–गुणव्रत का अर्थ है, जो व्रतों के गुणों को अधिक तेजस्वी तथा चमकदार बनाये। ये जीवन में अनुशासन, मर्यादा और व्रतों के पालन में अधिक सजगता की प्रेरणा देते हैं।

(३) **शिक्षाव्रत**–सामायिक आदि चार शिक्षाव्रत जीवन में त्याग, दान आदि की साधना द्वारा जीवन-शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं। इस प्रकार बारह व्रतों का यह साधना क्रम गृहस्थ जीवन में त्याग, अनुशासन, साधना, दान, सेवा आदि की सम्पूर्ण विधियों का विकास करते हुए गृहस्थ को एक सद्गृहस्थ और एक आदर्श उपासक के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

दस श्रावकों का जीवन, जीवन जीने की कला सिखाता है तो मरने की भी कला सिखाता है। जीवन के उत्तरार्द्ध में जब शरीर शक्तिहीन होने लगता है, मृत्यु नजदीक आती दिखाई देती है। तब साधक समस्त वासनाओं, तृष्णाओं और जीने की आकांक्षाओं को त्यागकर परम शान्ति, समाधि के साथ शरीर को छोड़ने की तैयारी करता है। संलेखना व्रत जीवन और मृत्यु से परे अध्यात्म रमण की दृष्टि है। मृत्यु से भयभीत होकर नहीं, परन्तु मृत्यु को जीतकर मृत्युंजय बनने का मार्ग है। इस प्रकार जीने की और मरने की उच्च आदर्श कला सिखाने वाला यह उपासकदशासूत्र गृहस्थ जीवन की एक उदात्त आचार संहिता प्रस्तुत करता है।

अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र

इसी भाग में दूसरा आगम है–अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र। इसमें तीन शब्द हैं–अनुत्तर, उपपात तथा दशा। इसका एक अर्थ है–'अनुत्तर' सर्वश्रेष्ठ जीवन प्राप्त करने की कला। दूसरा अभिप्राय है–'अनुत्तर' यानी सबसे ऊँचे देवलोक में जन्म लेने वाली आत्माओं की त्याग, वैराग्यमय दशा या चारित्र। यहाँ 'दशा' का अर्थ अवस्था या चारित्र से है। उपासकदशा में जिस प्रकार दस श्रावकों की आत्म-साधना का वर्णन है। इस आगम में श्रमण जीवन अंगीकार करके कठोर तप, त्याग, क्षमा, ध्यान आदि द्वारा आत्म-शुद्धि करने वाले तैंतीस श्रमणों का पवित्र चरित्र है।

इस सूत्र के तीन वर्ग हैं। तीनों वर्गों में ३३ अध्ययन हैं। अन्य सभी वर्णन तो संक्षेप में हैं किन्तु धन्यकुमार 'धन्य अनगार' के तपःसाधना का वर्णन अत्यन्त विस्तृत और रोमांचकारी है।

धन्य अनगार की कठोर साधना से उसके शरीर की जो दुर्बलता, क्षीणता और अत्यन्त कृश दशा हुई है उसके एक-एक अंग का, शरीर के एक-एक अवयव का उपमाओं द्वारा जितना हृदय द्रावक वर्णन इस सूत्र में हुआ है। यह साहित्यिक वर्णन की दृष्टि से भी बड़ा अद्भुत, उपमा अलंकारों से समृद्ध अद्वितीय वर्णन है।

इस सूत्र की एक विशेषता यह है कि धन्यकुमार, अभयकुमार जैसे विशिष्ट चरित्र जिनका गृहस्थ जीवन भी अत्यन्त सुखमय, समृद्धिमय, गौरवमय, भोग-प्रधान और कर्त्तव्य-परायण रहा है उसकी यहाँ कोई चर्चा नहीं है। उनके भोग-ऐश्वर्य का वर्णन भी केवल संक्षेप में इस दृष्टि से किया गया है कि इतनी विपुल भोग-सामग्री प्राप्त होने पर भी उसका त्याग और शरीर के प्रति कितनी अनासक्ति है। लगता है सूत्रकार का उद्देश्य केवल उनके तपोमय जीवन का वर्णन करना ही प्रमुख है। उनके ऐश्वर्य का वर्णन केवल त्यागी जीवन की गरिमा बताने के लिए किया गया है। भोग से त्याग की उत्कृष्टता का दिग्दर्शन कराना है, इसलिए उनके गृहस्थ जीवन की किसी भी घटना का कोई विशेष उल्लेख इस चरित्र में नहीं मिलता है।

अभयकुमार तो जैन इतिहास का एक प्रसिद्ध और प्रमुख चरित्र है, भगवान महावीर का परम भक्त, दृढ़ श्रद्धालु है। श्रेणिक राजा का अंगजात होने के साथ ही मगध साम्राज्य का महामंत्री है। उसके जीवन से सम्बन्धित अनेक वर्णन जैन सूत्रों में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। विविध ग्रन्थों में भी अभय की बुद्धि कुशलता के चमत्कार और उसकी सूझ-बूझ, धर्म-परायणता, पितृ-भक्ति आदि की घटनाएँ मिलती हैं, परन्तु यहाँ पर उन घटनाओं का वर्णन नहीं है, यहाँ केवल उसका दीक्षा लेकर तप, त्याग, साधना करने का ही उल्लेख है। इन दोनों ही सूत्रों की प्रेरणा व सन्देश एक ही है—भोग के स्थान पर त्याग की प्रतिष्ठा। जीवन में प्राप्त भौतिक ऐश्वर्य की ममता माया में नहीं उलझकर उसको बंधन रूप मानते हुए त्यागना और शरीर को तप, त्याग, तितिक्षा के चरम आदर्श तक ले जाना।

उपासकदशा तथा अनुत्तरौपपातिकदशा पर अभयदेवसूरि कृत संस्कृत टीका के अलावा इसके अनेक हिन्दी, गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। श्रमण संघ के प्रथम अधिनायक परमाराध्य आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म. ने उपासकदशांगसूत्र पर संस्कृत छाया, शब्दार्थ तथा विस्तृत हिन्दी टीका लिखी है, जिसका प्रकाशन सन् १९६४, विक्रम संवत् २०२१ में लुधियाना से हुआ। मैंने अनुवाद विवेचन में उसी का मुख्य आधार लिया है।

अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र पर एक सुन्दर हिन्दी टीका आचार्यसम्राट् ने लिखी है, जिसका प्रकाशन सन् १९३६ में जैन शास्त्रमाला कार्यालय, लाहौर से हुआ था। वर्तमान में उसकी प्रतियाँ बहुत दुर्लभ हैं। उसके अतिरिक्त आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा दोनों ही सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। मैंने अनुवाद विवेचन में उन दोनों का ही उपयोग किया है। फिर भी मूल शुद्ध पाठ आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म. द्वारा स्वीकृत ही रखा है।

मेरे आगम सम्पादन कार्य में मुख्य प्रेरणा स्रोत रहे हैं, मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म.। उनके रोम-रोम में जिन-वाणी की आस्था बसी हुई है। वे रात-दिन यही प्रेरणा देते हैं कि जिन-वाणी के प्रसार-प्रचार में अपना जीवन समर्पित कर दो। उन्हीं की प्रेरणा से मेरे हृदय में आगमों के सचित्र हिन्दी-अंग्रेजी संस्करण की प्रेरणा जगी और मैंने संकल्प किया कि मैं अपना जीवन श्रुत-सेवा के लिए समर्पित करूँगा। इसी संकल्प को साकार करते

हुए अब तक सात सूत्रों के नौ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। अब उपासकदशा तथा अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र एक ही जिल्द में पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है। इन शास्त्रों के सम्बन्ध में मुझे जितनी सूचनाएँ मिल रही हैं वे उत्साहवर्धक हैं कि जिज्ञासु पाठक इन शास्त्रों का उपयोग कर रहे हैं, अनेक आगम-प्रेमी संत-सतियाँ तथा शोध विद्यार्थी भी इनसे लाभ उठा रहे हैं।

इस संस्करण में सम्पादन का दायित्व निभाने में मेरे प्रशिष्य श्री तरुण मुनि भी जुट गये हैं और श्रीचन्द जी सुराना का सहयोग तो बराबर मिल ही रहा है। अंग्रेजी अनुवाद का कार्य किया है आगमों के ज्ञाता परम श्रद्धाशील सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन ने। उनको शास्त्रों का अच्छा ज्ञान है, भाषा पर भी अधिकार है और इतने विद्वान् होते हुए भी अपनी धर्म आराधना में संलग्न रहते हैं। बड़े विनयशील श्रावक हैं। उनके निःस्वार्थ सेवाभावी सहयोग से अनुवाद का काम तेजी से सम्पन्न हुआ। श्री सुरेन्द्र बोथरा जी ने प्रूफ संशोधन में बड़ी सजगता से योगदान दिया है। इस सचित्र आगममाला के कई आगमों का अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने किया है। श्रमणीसूर्या साध्वीरत्न उपप्रवर्तिनी डॉ. श्री सरिता जी म. का भी सहयोग मिलता ही रहा है। अनेक गुरुभक्त श्रावकों ने भी शास्त्र-सेवा के शुभ कार्य में उदार हृदय से सहयोग किया है। कुछ सज्जन तो मेरे बिना कुछ कहे अपने ही अन्तःकरण की प्रेरणा से सहयोग करने आगे बढ़ रहे हैं। मैं उन सबके प्रति अपना हार्दिक आभार तथा धन्यवाद प्रकट कर इस कार्य में उनके निरन्तर सहयोग की कामना करता हूँ। जिन-वाणी का प्रकाश घर-घर में फैले यही मेरी अन्तर भावना है।

—उपप्रवर्तक अमर मुनि

जैन स्थानक
शास्त्री नगर, दिल्ली
ज्ञान पंचमी

---

१. अभयकुमार से सम्बन्धित प्रसंग ज्ञातासूत्र, निरयावलिका आदि में हैं। विस्तृत जानकारी के लिए पाठक अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र, आगम समिति, ब्यावर द्वारा प्रकाशित आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. की प्रस्तावना देखें।

FOREWORD

SUBJECT OF *AGAMS*

The religious discourses of Bhagavan Mahavir, his teachings and the basic principles enunciated by him are compiled as *Agams*. Many topics are discussed therein. *Agams* contain detailed description about *Dravya,* soul, living beings, non-living things, *pudgal* (matter), *karma,* world, hell, heaven, sun, moon, oceans, mountains and a variety of other things. *Poorvas* contained knowledge about astrology, augury, *yantras, mantras, tantras,* also but they are not available now. The *Acharyas* have classified the *Agams* in four categories namely—*Dravyanuyog, Charankarananuyog, Dharmakathanuyog* and *Ganitanuyog.* In *Dravyanuyog* living beings (*jiva*), non-living things (*ajiva*), *karma* (the cause of bondage), *pudgal* (matter) and such like are discussed. *Charankarananuyog* contains the treatise about ascetic conduct. *Dharmakathanuyog* contains examples, anecdotes and stories in great number in order to explain the elements of *dharma. Ganitanuyog* describes topics relating to mathematics such as information about sun, moon, heaven, hell, oceans, mountains, etc.

The present scriptures *Upasak-dasha* and *Anuttaraupapatik-dasha* belong to *Dharmakathanuyog.* They contain life-sketches and examples in order to explain the practical aspect of religious conduct.

The basis of *Dharma* is conduct. *Dharma* is the life-force and conduct is its body. *Dharma* is cognisable only in the conduct. The essence of all the *Anga Sutras* is *Achar* (conduct).

Amongst eleven *Anga Sutras, Acharang Sutra* is the main *Agam* dealing with conduct. *Dashvaikalik* and *Uttaradhyayan* also contain description about conduct of a monk.

The second *Anga—Sutrakritang*—discusses knowledge about *tattvas* (the fundamentals) and the philosophy. In the fifth *Anga—Bhagavati,* the fundamentals (*tattvas*), conduct, *Dravya* are discussed and explained with examples. Thus, it contains topics relating to all the four *Anuyogas.*

The seventh *Anga—Upasak-dasha,* eighth *Anga—Antakrid-dasha* and ninth *Anga—Anuttaraupapatik-dasha* belong to *Dharmakathanuyog.* They describe ideal conduct of householders and monks and their loftiest austerities through religious stories. So they are a part of religious conduct.

In the thirty-two *Agams,* many discuss ascetic conduct but complete description about ideal conduct of a householder (*Shravakachar*) is available only in *Upasak-dasha.*

THE SUBJECT-MATTER OF *UPASAK-DASHA*

The life-style of an ascetic is based on the life-style of a *Shravak* (householder observing religious vows). The practice of ascetic conduct is very difficult. Therefore, it is not possible for everyone to become an ascetic. But the religious code of a householder is so simple and beneficial that everyone can follow it. Further, everyone desirous of attaining liberation must accept the prescribed code of a *Shravak.* A true *Shravak* is an ideal citizen. His life-style is based on morality and he follows the ideal of society and the nation, with an inclination towards religion. *Shravak* means an awakened soul.

In *Upasak-dasha Sutra,* there is a balanced, properly defined and scientific description of the vows of a *Shravak.* Simultaneously, it explains how he should lead life in the society. It is not possible for a householder to follow principles of non-violence, truth, non-stealing, celibacy and non-possession to their extreme limit. Therefore, he is in the need of such a restrained, balanced, social code of conduct in pursuit of which he could remain religious and also discharge his family and social responsibilities in an ideal manner. *Upasak + dasha* means *'Udatta-dasha'* of the follower (*Upasak*). In other words, ideal life-style of a householder. The scripture mentioning in detail, the code of conduct for *Shravak* is famous as *'Upasak-dasha'.*

It mentions the life-story of ten famous householders who were followers of Bhagavan Mahavir.

A question arises as to why out of one hundred fifty-nine thousand *Shravaks* of Bhagavan Mahavir only ten *Shravaks* were selected for this narration. A detailed study of this *Sutra* reveals that the reply to

this querry is evident in it. The ten *Shravaks* are prominent persons of different areas. They were prosperous and had unlimited means of leading a comfortable and luxurious life. Still they discarded the comforts and devoted their life in following religious code meticulously. It is not important that one possesses means of leading a comfortable, splendid life. The prominent fact is to voluntarily accept restraints. Herein lies the importance of discarding them. It is the ideal path of self-restraint. Thus, the ten *Shravaks* are the unique examples of self-restraint. Further, the said ten *Shravaks* were firm in their religious faith, courageous and they followed the religious code in letter and spirit till their last breath.

An adjective used for *Shravaks* is **'Aaog Paog Sampautte'.** It means that in business they were observing principles of morality, justice and ideal restraints. They were expert in looking after properly thousands of employees, servants both male and female and thousands of cattle. My view is that the restraints of a poor person are also self-restraint but that cannot serve as an ideal for others. Bhagavan Mahavir has himself said—

"Je ya Kante piye Bhoe laddhe Vippitthi Kuvvaee.
Saaheene Chayai Bhoe Se hu Chaai ti Vuchchaee."

It means one who voluntarily and without any pressure discards the beautiful, loveable and delightful means of enjoyment available to him is the true follower of restraints and renunciation. In the world, renunciation when one is well-to-do, charity when one is poor, celibacy when one is in youth, forgiveness when one is authority to punish, and observing noble conduct and restraints when one is rich are considered ideal. In the life-style of all the ten *Shravaks* such conduct is distinctly visible. So their life-sketch is narrated in this *Agam*.

MEANING OF *ANU-VRAT* (PRIMARY VOWS)

An ascetic observes principles of non-violence, truth and others to their extreme limit. So his vows are called *Maha-Vrat*. A *Shravak* keeps some exceptions while accepting the vows. He lays down the limitations upto which he would follow them. He then observes them

according to his inner strength within those limitations. So his vows are called *Anu-Vrat. Anu-Vrat* does not mean little vows. Vow is a vow. It is neither small nor big. It is a mental determination—a matter of faith in observing it truly. But the mental attitude to accept a vow does not arise unless one is detached from worldly enjoyments. A vow, whether small or big is great because it is inter-connected with firm state of determination, detached from worldly pleasures, and the objective of self-purification. But it appears in either of the two forms-great and small-based on the earlier life-style, moral strength and the period for which one wants to accept the restraints, the vows. A vow that does not permit any exception is a *Maha-Vrat*—The great vows and the vow which allows some exceptions is *Anu-Vrat.*

The vitality, strength, courage, determination, social and family related conditions of human beings are never identical. An ascetic rises above the socialistic pattern. But a householder has social, political, administrative and family related duties and limitations. Discharging such responsibilities, he accepts the vows with certain adjustments. He follows the religious conduct with a sense of discernment wherein he is able to discharge social and family responsibilities also.

Upasak-dasha Sutra mentions in detail the discerning code of conduct of a householder. While living in the society, it presents the examples of ideal moral conduct and religious behaviour.

METHOD OF ADJUSTMENT OF WEALTH

This *Sutra* mentions in detail the wealth of the *Shravaks.* Further, it describes how they intelligently allocate it for different purposes. The proper division of it is an ideal example of the judicious planning of the householder. A rich man of that period used to divide his wealth in three equal parts. He runs business with only one-third of his entire wealth. It was not the practice that by taking loan disproportionate to his capacity, one extended his business without considering that it could lead him to a precarious situation.

Due to this judicious approach, they were always care-free and completely safe. Whenever there was loss in business or in

agricultural production, they supplemented it with the money in their safe. Thus they never allowed their business to dwindle in such a situation. They never had to worry unnecessarily about their profession. They never had to undergo anxiety, worry, disrespect or contempt in their life. By keeping one-third of their total wealth always in the treasure, they could utilise it in distress or when they had to face an unprecedented situation. They discharged family responsibilities with one-third of their wealth. In their life, there was no outward show or disproportionate presentation of their riches. Their life-style was in accordance with their capacity. They always observed simplicity and balanced life-style. The guiding principle that one should spend within the limits of his income was always the cause of their happiness.

The life-story of Anand (and others) indicates that upto the time they were heading the social and family circle, they discharged their responsibilities in an ideal, praise-worthy manner and commanded respect of all. While observing religious practices, they properly looked after their family and also participated in all the activities of social uplift. When they noticed that their physical body is growing weak, their strength has gone down, and they face difficulty in properly discharging their responsibilities, they never remained attached to their rights and status. They rather handed over their responsibilities to their sons in the presence of social gathering and engaged themselves completely in spiritual practices. By handing over their entire wealth and rights, they became care-free. This life-style of *Shravaks* indicates that during the period spent in family life, they were not subservient to their desires and senses. Rather they were the masters of their senses from the very core of their heart. When they adopted the path of renunciation. They lived as masters of their self.

It is also evident from the life-sketches of the *Shravaks,* that while listening to the spiritual discourse of Bhagavan, spontaneously an inclination for renunciation arises in their mind. They then voluntarily limit their field of worldly enjoyment. They set limitation for their riches, status and articles of consumption. When a person

renounces, inspired by inner spontaneous feeling, he finds the same happiness in renunciation that he earlier had in worldly enjoyment. Renunciation based on inner will becomes a routine practice.

It is also clear from the life-style of Anand and others that there was no dearth of wealth, status, scope of worldly enjoyment, social status and the like in their life. When inspired by the spiritual discourse of Bhagavan, they accept the path of renunciation, they slowly and gradually renounce the articles of enjoyment and daily use. By following the path of self-restraint, one day they renounce all the worldly enjoyments. They become so much engrossed in austerities that they care little for their body or for their family. The *Shravaks* who were following an ostentatious life-style in earlier life, suddenly discard worldly amusements. Their physical body is reduced to a skeleton but they remain steadfast and firm in their spiritual practices. The gods come to test them and give them many troubles and turbulations. But they do not budge an inch from their spiritual practices. One who experiences happiness and ecstatic pleasure in renunciation, adopts that life-style keeping in mind the path of renunciation as his ideal.

IMPORTANT CHARACTERISTICS OF CONDUCT

In the life-story of *Shravaks,* the qualities of their conduct that find mention in the *Agam* are worth consideration. The wealth collected by discreet means, their judicious conduct, their moral behaviour, their self-restraints, their self-control is ideal.

This fact has been narrated in the *Agam* as **"Addhe Aparibhooe Medhipamanbhooe Chakkhubhooe."** This metaphor is worthy of deeper study. ***'Addhe'*** means that they had immense wealth and good traits. Their life was studded with morality and good conduct.

'Aparibhooe' means that nobody could surpass them. In business, in industry, in social and political circle, their status was so much influential that nobody could have the courage to insult or ignore them. They were never an instrument of disgrace, contempt, hatred or insult in the society. They lived throughout with honour, respect and

excellence. In all the fields namely society, business and *Dharma,* they set an ideal example. They were farsighted and had magnetic personality. As such they were **Medhipamanbhooe** and **Chakkhubhooe**. Their conduct was considered exemplary and upright. It is said that the path set up by great men is worthy of being followed. They were examples of this aphorism. Whatever they did was judicious, respectable and within the parameters of morality. They were the guides in the religious and social circle. As such they were **Chakkhubhooe**. They were giving true advice. They were good consultants and teachers. They encouraged good activities, important social works and persons having good qualities. **"Savva kajja Vaddhavae"**—They helped performing of good deeds. They encouraged persons of ideal moral conduct. These adjectives explaining the personal and social traits of the *Shravaks* indicate that they were worthy of emulation by the entire *Shravak* community.

RESPECT FOR THE WOMEN

The life-sketches of *Shravaks* clearly indicate that in that period, the women community commanded great respect. Women were considered symbol of basic strength, partner in religious activities, a friend, an advisor, and was bestowed full honour and respect. There was sweetness in their relations.

When Anand reaches home after listening to the spiritual discourse and accepting vows of the householder's conduct from Bhagavan Mahavir, he tells his wife Shivananda in a friendly voice—"I have accepted the vows of a householder from the Lord. If you are desirous of accepting these vows, you may also go there, have his *darshan,* listen to his spiritual discourse and accept the religious vows."

When Sakdalputra, who was earlier a great follower of Goshalak, changes his faith and becomes a follower of Bhagavan Mahavir, he also in an inspiring tone and not as a directive tells his wife Agnimitra—"I have found the spiritual discourse of Bhagavan Mahavir, his faith, his logic, his moral code, his arguments to be based on judicious principles. If you also want to listen to his spiritual

dialogue, you can also accept his faith." They gave complete independence to the women in acceptance of religious faith of their choice and always held them in respect.

THE CUSTOM OF SLAVERY

In that period, the tradition of keeping servants was common. Some persons had hundreds of servants—both male and female. But in the ideal code of conduct of *Shravaks,* it is mentioned that they were not cruel to the servants. They were not trading them. They were meticulously careful in looking after their servant community, the cattle, and the birds dependent on them. They discharged faithfully the duties towords their proper nourishment and safety. It was a taboo for the *Shravaks* to sell the servants.

In that period, the colonies in the town were not so congested. There were large gardens outside the town where the ascetics, who had renounced the household, used to come and stay. Their stay was only in the gardens at the outskirts of the towns.

Shravaks had independent *Paushadhshalas* of their own in order to perform spiritual practices. On the eighth, fourteenth and other important days in the fortnight, they used to go to a lonely place away from their home and engage themselves in spiritual practices.

The life-stories of the ten *Shravaks* point out that agriculture and cattle breeding were the primary professions during that period. This profession was considered highly respectable. Fifteen prohibited trades indicate that the professions involving violence, cruelty to others or the one encouraging social evils were prohibited for a *Shravak.* The ideal of a *Shravak* was a judicious living and trade based on moral conduct.

THE TURBULATIONS FACED BY SHRAVAKS : A DISPLAY OF THEIR MENTAL VIGOUR

"Gold is tested on a stone called *Kasauti.*" According to this quotation, a person treading the religious path of spiritual austerities, has to face disturbances, calamities and turbulations. So to reach the purest stage, gold has to face flames of fire. That gold which reaches

the highest stage of brightness after undergoing the fire-test is called *kundan*. A trainee who remains firm in faith at the time of unforeseen troubles and turbulations, attains his goal. One who dwindles once but again accepts the true path also reaches his goal.

Sufferings, unforeseen troubles and turbulations, sometimes are attractive and pleasing. Sometime they are ferocious and dreadful and bewilder the practitioner of spiritual practices.

Out of the ten *Shravaks*, the period of spiritual practices of four had been free from any disturbance or unforeseen trouble.

A god appears before *Shramanopasak* Kamdev and causes dreadful and ferocious troubles in order to inspire him to discard his religious faith. But he overcomes all such disturbances and troubles by remaining undaunted in his spiritual practices. Bhagavan Mahavir praised his courage while addressing monks and nuns.

Chulanipita was not disturbed when he saw brutal murder of his sons in his presence. But his subtle affection for his mother moved him and disturbed his mental state (when he heard that his mother is going to be killed). But the advice of his mother made him cautious again in his spiritual practices.

Shramanopasak Suradev was not disturbed by the treatment to his sons. No feeling of attachment arose in him for them. But the threat that his physical body shall be made a breeding pot of various diseases affected him. In his mind, there was latent feeling of attachment for his body and he felt disturbed due to that feeling of attachment. But he soon became cautious. He accepted his mistake, repented for it, observed penance and chastised his vows. Chullashatak had attachment of wealth in his sub-conscious mind while Sakdalputra was attached to his wife Agnimitra. The manner in which they underwent these tests indicates the latent weaknesses in them. They realised their mistakes and discarded them with a firm mental set-up. It appears that their test by gods was to remove the remote feelings of attachment in them.

Mahashatak faces a strange situation wherein his feelings of attachment are on test. By her sensual behaviour, his wife Revati

wants him to discard his spiritual vows. Mahashatak was not mentally disturbed by sexy behaviour. But he felt dejected at the unruly and shameless act of Revati. He then utters offending words. Revati feels terrified at his harsh, unpleasant prophecy. Bhagavan Mahavir makes him realise his mistake through Gautam Swami. Gautam inspires him to accept penance for his mistake in order to purify his religious vows. It is essential for a *Shravak* not to use harsh words for any one during the period of his spiritual practices.

In the life of sixth *Shramanopasak* Kundkaulik also, there is an incident when his firmness in religious faith was tested. The celestial being inspires him to discard his faith in efforts (*Purusharthvad*) and to accept faith in destiny (*Niyativad*) as propounded by Mankhali-putra Goshalak. But the learned Kundkaulik gives a befitting reply and thus exhibits his firm faith in the religious order, his knowledge of basic element of faith and their practice in his life.

One *Shravak* is advised by his mother and three by their wives. Bhagavan Mahavir himself appreciates the courage of Kamdev and knowledge of element of faith in Kundkaulik.

Thus, *Upasak-dasha Sutra* vividly narrates the civilisation and culture of that period. It describes the ideals of *Shravak,* the art, culture, trade and social behaviour of that period in a commendable and realistic manner .

SCIENTIFIC EXPLANATION OF ACCEPTANCE OF VOWS (AUSTERITIES)

This *Sutra* presents the religious vows of a householder in a very scientific and attractive manner. A vow is a firm mental determination in life. This determination exhibits the keenness of a human being and sharpens his outlook. The code of twelve vows is an ideal mode of *Shravak's* conduct. It contains the entire religious life-style of a householder.

The twelve vows have been divided in three categories—

(1) **Primary Vows (*Sheel-Vrat*)**—Five *Anu-Vrats* are called primary vows. *Sheel* means basic conduct. The main basis of good conduct are the five *Anu-Vrats.*

(2) Qualitative Vows (Guna-Vrat)—*Guna-Vrat* means those vows that make the inner qualities brighter and powerful. They inspire discipline, restraint and awareness in following the vows.

(3) Disciplinary Vows (Shiksha-Vrat)—The four disciplinary vows namely *Samayik* and others gratify the true life-style by renunciation, discipline, spiritual practices, charity, service and others. Thus, the practice of twelve vows presents a householder as a true follower of morality and religious faith while developing all facets of detachment, discipline, charity and service.

The life-story of ten *Shravaks* teaches us not only the way of life but also how we should accept death. When at the declining period of one's life, physical body becomes weak and death appears to be approaching, the religious practitioner should renounce all the amorous activities, the desires and the keenness to live longer. He should remain in an equanimous state and with a patient bent of mind he should prepare himself for discarding his physical body. The vow of *Samlekhana* is metaphysical perception higher than the state of living and the state of death. It is a path whereon one is not under fear of death, rather one overpowers death and becomes *Mrityunjay*—the conqueror of death. Thus, this *Upasak-dasha Sutra,* which teaches the unique and ideal methods of living and of dying, presents an ideal code of conduct for a householder.

ANUTTARAUPAPATIK-DASHA SUTRA

In the second part of this book is another *Agam*—*Anuttaraupapatik-dasha Sutra.* This title has three words—*Anuttar, Upapat* and *Dasha. Anuttar* means the art of reaching the unparallelled best level of life. Another meaning is the renunciation and detached way of life of those living beings who are going to be re-born in the highest heavenly abode. *Dasha* means state or conduct. Just as *Upasak-dasha* narrates the practices for self-realisation of ten *Shravaks,* this *Agam* describes the conduct of thirty-three monks who after adopting ascetic way, practiced stringent austerities, restraints, renunciation, compassion and meditation for self-purification.

This *Sutra* has three parts (*Vargs*). There are thirty-three chapters in all in the three *Vargs.* The description of austerities and related

spiritual practices of Dhanya *Anagar* is in detail and is thought-provoking while the description of the remaining ones is in brief.

By extremely austere religious practices the physical body of Dhanya *Anagar* had become weak, feeble and extremely vigourless. The state of each and every part of his body has been explained with examples. This description is thought-provoking. From literary point of view, this description is rich with illustrations and examples and is unique.

Another speciality of this scripture is that there is no mention of the life-style as householder of important personalities namely Dhanya Kumar and Abhay Kumar although their life as householder was extremely comfortable, respectable, full of worldly enjoyments and devoted to their worldly duties. Their richness and their life-style has been narrated in brief, just to acquaint the reader of how even while having facilities of worldly comforts in plenty, they renounced them and remained detached even towards care for their physical body. It appears that the purpose of the narrator of the scripture was primarily to narrate their austere life of renunciation. The description of their wealth and status was just to highlight their detached life-style. The description of worldly comforts available is just to show their renunciation to be of the highest order. As such, there is no mention of any noteworthy incident of their life as a householder.

Abhay Kumar is a famous and prominent character in Jain history, a firm believer and staunch follower of Bhagavan Mahavir. Besides being the bodyguard of king Shrenik he was also the prime minister of Magadh. Many incidents connected with his life find mention in Jain *Sutras*. In various scriptures also, the wonders of Abhay's intelligence, religious fervour and incidents of parental worship are to be found but here there is no description of these incidents. Here only his renunciation, his austerities, his detachment find mention. Both these *Sutras* have one message and inspiration—Importance of renunciation over enjoyment. Not to be a servant of lust for worldly pleasures, renouncing them by treating them as obstacles and training the body towards the goal of austerities renunciation and perseverence is the primary goal.

The commentary of Abhaydev Suri on *Upasak-dasha* and *Anuttaraupapatik-dasha* in Sanskrit is available. Further, many translations in Hindi and Gujarati have also been published. The first head of Shraman Sangh, Reverend Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M. has written detailed commentary on *Upasak-dasha Sutra* along with Sanskrit version and the literal meaning of each word. It has been published from Ludhiana (India) in 1964 A.D. (2021 V.). I have made use of that translation in my present work.

An excellent commentary has been written by Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M. on *Anuttaraupapatik-dasha Sutra*. It has been published from Lahore in 1936 A.D. by the office of Jain Shastra Mala. At present it is rarely available. Besides these, Agam Prakashan Samiti, Beawar (Rajasthan) has published Hindi translation of both the *Sutras*. I have consulted both for this work. However, for the original text I have relied on the version used by Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M.

The main source of inspiration to me in publication of *Agam* literature has been my reverend teacher, Bhandari Shri Padma Chand Ji M., Pravartak of North India. He has deep faith in *Jina-vani* (the words of *Tirthankars*) from the very core of his heart. He almost every day asks me to devote the entire life-span in publishing and preaching Jain Scriptures. It was his inspiration that brought out an awakening in my mind to publish an illustrated Hindi-English version of *Agams*. I then made a determination that I shall devote my entire life for propagation of scriptures. To give a practical shape to this determination, seven Sutras have been published so far in the form of nine books. Now both *Upasak-dasha* and *Anuttaraupapatik-dasha* are being published in one Book. I have received very encouraging response about the scriptures published so far. The readers are making adequate use of them. Many ascetics interested in scriptural study and research scholars are studying them.

My disciple Shri Tarun Muni provided his able assistance to me in editing this volume. Needless to say that help from Srichand Surana continues as it did in other volumes of this series. The work of English

translation was done by Shri Raj Kumar Jain who is having a good knowledge of the scriptures command on the language and despite being so knowledgeable, is busy in practicing religion. He is a very active *Shravak.* Due to his selfless service, the translation work was completed at a rapid pace. Shri Surendra Bothara has also contributed by going through the final proofs. He has translated many *Agams* of this series in English. Also the help of Mahasati Dr. Sarita Ji M. has been available at all times. Many followers of Guru Ji have contributed in Shastra service with a large heart. Some good samaritans have, even without my saying so, by the call of their inner self, have come forward to help. I express my deep gratitude and sincere thanks and hope that they will contribute thus in future also. The light of Jina knowledge should spread to each and every home—is my earnest desire.

Up-pravartak Amar Muni

Jain Sthanak
Shastri Nagar, Delhi
Jnan Panchami

---

1. The relevant account about Abhay Kumar in *Jnata Sutra, Niryavalika* and others. For further knowledge, the reader is advised to study the Preface of *Niryavalika Sutra* by Acharya Shri Devendra Muni Ji M. published by Agam Samiti, Beawar.

अनुक्रमणिका | CONTENTS

उपासकदशासूत्र (Upasak-dasha Sutra)

अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र (Anuttaraupapatik-dasha Sutra)

सचित्र

उपासकदशासूत्र

ILLUSTRATED

UPĀSAK-DASHĀ SŪTRA

आनन्द गाथापति : प्रथम अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ प्रथम अध्ययन में आनन्द गाथापति का वर्णन है। आनन्द वैशाली के निकटवर्ती बनिया गाँव-वाणिज्यग्राम निवासी एक धन-वैभव सम्पन्न सद्गृहस्थ था। उसके पूर्व जीवन के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु उसके वर्णन से इतना तो पता चलता ही है कि वह एक आदर्श जीवन-शैली सम्पन्न, विचारशील, वैभवशाली, समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक था। उसका मुख्य व्यवसाय कृषि तथा गौ-पालन प्रतीत होता है। वह धर्मरुचि वाला, सदाचारी और नीतिनिष्ठ गृहस्थ था। भगवान महावीर की देशना सुनकर उसने श्रावक धर्म के बारह व्रत ग्रहण किये और अपनी धर्मपत्नी शिवनन्दा (शिवानन्दा) को भी उस धर्माचार को ग्रहण करने की प्रेरणा दी। उसने जिस प्रकार व्रत मर्यादा की है और भोजन आदि सामग्री में जिस प्रकार के आगार आदि रखे हैं, उससे उसकी अत्यन्त परिष्कृत अभिरुचि और आरोग्य सम्बन्धी ज्ञान की झलक मिलती है।

✦ आनन्द द्वारा गृहीत बारह व्रतों की मर्यादा एक आदर्श आचार संहिता है। आगे के अन्य श्रावकों के लिए भी वही आचार-मर्यादा मानदण्ड स्वीकार की गई है तथा हजारों वर्ष बाद आज भी श्रावक व्रतों की मर्यादा में उसी शैली का अनुसरण किया जाता है।

✦ इसमें वर्णित पन्द्रह कर्मादानों का वर्णन श्रावक की अहिंसक करुणा-प्रधान जीवन-शैली का एक आदर्श विकल्प है। यह उस समय जितना महत्त्वपूर्ण था आज की स्थिति में व्यापार आदि के क्षेत्र में उसका महत्त्व और भी अधिक है। यदि श्रावक अन्तर प्रेरणापूर्वक इस प्रकार के हिंसा-प्रधान व्यापारों से अलिप्त रहता है तो वह एक आदर्श अहिंसक जीवन-शैली की आदर्श भूमिका प्रस्तुत कर सकता है।

✦ आनन्द श्रमणोपासक की व्रत आराधना, उसका पारिवारिक व्यवहार और अन्त में पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होकर एकान्त में श्रमण की भाँति निर्मल, शान्त, चित्तपूर्वक नियम, व्रत, तप एवं धर्म की आराधना वास्तव में ही गृहस्थ जीवन की एक उच्चतर भूमिका है, जिसका शाश्वत मूल्य आज भी उतना ही प्रासंगिक और मार्गदर्शक है।

✦ वास्तव में आनन्द श्रमणोपासक का यह वर्णन जैन श्रावक की आदर्श आचार संहिता का जीता जागता भाष्य है।

ANAND *GATHAPATI* : FIRST CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

✦ The first chapter deals with Anand, the landlord (*Gathapati*). Anand was a wealthy householder residing at Vanijyagram—a county near Vaishali. No details are available about his earlier life-style. But from the available data it can be adjudged that he had an ideal living, was considerate, well-to-do and most revered in the society. His main profession was agriculture and cattle-breeding. He was of good conduct, judicious and meticulous in observing morality. After listening to the discourse of Bhagavan Mahavir, he accepted the twelve vows and advised his wife Shivananda to follow suit. Thus, he limited his activities through the said vows and classified items of food, etc., that he could accept, indicate that he had intrinsic liking for such limitations and also had adequate knowledge of tips for a healthy life.

✦ The twelve vows accepted by Anand constitute an ideal code of conduct for a householder. The same code is followed by the *Shravaks* who figure later. Even today, though thousands of years, have passed, the same code of conduct and limitations are followed.

✦ Fifteen prohibited trades *(Karmadan)* mentioned in the code depict the ideal alternative adopted by a *Shravak* following non-violence and compassion. The importance of this code in trade and profession today is the same as it was in that period—rather its need has increased in the present set up. If a *Shravak* (a true Jain householder) willingly keeps himself aloof from such violence involving trades, he can serve as a beacon to the common man in leading proper non-violent life-style.

- Anand—by accepting the vows, following them in family dealings and at the fag end of his life, withdrawing himself from household responsibilities and adopting life-style similar to a monk in solitude presents the highest moral conduct of a householder. He follows this conduct with utmost piety, self-control and extreme liking for moral principles, vows, austerities and limitations. Such an ideal code of conduct has its importance even today in serving as a guide to the householder.
- In fact, the detailed description of Anand *Shramanopasak* is a living testimony of ideal life-style of a Jain *Shravak*.

आणंदे गाहावई : पढमं अज्झयणं
आनन्द गाथापति : प्रथम अध्ययन
ANAND *GATHAPATI* : FIRST CHAPTER

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं णयरी होत्था। वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए। वण्णओ।

१. उस काल–वर्तमान अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे के अन्त में, उस समय–जब आर्य सुधर्मा विद्यमान थे, चम्पा नाम की नगरी थी। नगरी के बाहर पूर्णभद्र यक्ष का चैत्य था। दोनों का वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

1. At that time when Acharya Sudharma was alive and in that period of the fourth wing of the *Avasarpini* time cycle, there was a famous city named Champa. There was a temple of Yaksha Purnabhadra at the outskirts of Champa. The detailed description of Champa city and the temple is in *Aupapatik Sutra.*

जम्बू स्वामी का प्रश्न और प्रस्तुत सूत्र का निर्देश

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मे समोसरिए जाव जंबू पज्जुवासमाणे एवं वयासी–"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स नायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते ! अंगस्स उवासगदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा–

(१) आणंदे, (२) कामदेवे य, (३) गाहावइ चुलणीपिया।

(४) सुरादेवे, (५) चुल्लसयए, (६) गाहावइ कुंडकोलिए।

(७) सद्दालपुत्ते, (८) महासयए, (९) नंदिणीपिया, (१०) सालिहीपिया॥

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

२. उस काल तथा उस समय आर्य सुधर्मा स्वामी चम्पा नगरी में पधारे। उनकी उपासना करते हुए जम्बू स्वामी ने पूछा–"भगवन् ! मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने छठे अंगसूत्र–ज्ञाताधर्मकथा का जो भाव बताया है उसे मैं सुन चुका हूँ। भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने सातवें अंगसूत्र–उपासकदशा का क्या भाव बताया है ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया–"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने सातवें अंगसूत्र–उपासकदशा के दस अध्ययन बताये हैं। वे इस प्रकार हैं–

(१) आनन्द, (२) कामदेव, (३) गाथापति चूलनीपिता, (४) सुरादेव, (५) चुल्लशतक, (६) गाथापति कुंडकौलिक, (७) सकडालपुत्र, (८) महाशतक, (९) नन्दिनीपिता, और (१०) शालिहीपिता।"

पुनः जम्बू स्वामी ने पूछा–"भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने सप्तम अंगसूत्र–उपासकदशा के जो दस अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या तात्पर्य है ?"

QUERY OF JAMBU SWAMI AND BRIEF OF THIS *SUTRA*

2. At that time during that period, Acharya Sudharma Swami arrived at Champa. Then Jamboo Swami respectfully inquired—"Bhante ! I have grasped the meaning of sixth *Anga Sutra—Jnata Dharmakatha* as explained by Bhagavan Mahavir. Now please tell me what is the meaning of the seventh *Anga Sutra—Upasak-dasha* ?"

Sudharma Swami said—"Jamboo ! Bhagavan Mahavir has narrated the seventh *Anga Sutra—Upasak-dasha* in ten chapters captioned as under—

(1) Anand, (2) Kamdev, (3) *Gathapati* Chulanipita, (4) Suradev. (5) Chullashatak, (6) *Gathapati* Kundakaulik, (7) Sakadalputra, (8) Mahashatak, (9) Nandinipita, and (10) Shalihipita."

Again, Jamboo Swami said—"Bhagavan ! Out of the ten chapters of seventh *Anga Sutra—Upasak-dasha* explained by Bhagavan Mahavir, what is the meaning of the first chapter ?"

वाणिज्यग्राम और आनन्द गाथापति

३. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था। वण्णओ। तस्स णं वाणियगामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूइपलासए नाम चेइए होत्था। तत्थ णं वाणियगामे नयरे जियसत्तू राया होत्ता वण्णओ। तत्थ णं वाणियगामे आणंदे नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए।

३. सुधर्मा स्वामी बोले–जम्बू ! उस काल और उस समय–जब भगवान महावीर विद्यमान थे, वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उस वाणिज्यग्राम नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा–ईशानकोण में दूतिपलाश नामक चैत्य था। वाणिज्यग्राम नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगर में आनन्द नामक गाथापति रहता था। वह धनाढ्य यावत् अपरिभूत अर्थात् अत्यन्त प्रभावशाली और लोकों द्वारा सम्मानित था।

VANIJYAGRAM AND ANAND *GATHAPATI*

3. Sudharma Swami said—Jambu ! During that period of time when Bhagavan Mahavir was present, there was a town named Vanijyagram. In the north-east corner of Vanijyagram there was Dootipalash temple. King Jitshatru ruled Vanijyagram. Anand *Gathapati* lived in that town. He was wealthy, highly respected, influential and very popular among the masses.

आनन्द की धन-सम्पदा का वर्णन

४. तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थर पउत्ताओ, चत्तारि वया, दस गोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

४. आनन्द गाथापति के पास चार करोड़ सुवर्ण (सोने के सिक्के) निधान अर्थात् खजाने में रखे थे, चार करोड़ व्यापार में लगे हुए थे और चार करोड़ घर के वैभव,

धनधान्य, भूमि, पशु आदि तत्सम्बन्धी सामान में लगे हुए थे। इस प्रकार उसके पास बारह करोड़ सुवर्ण थे। इसके अतिरिक्त उसके पास चार व्रज—गोकुल थे। प्रत्येक व्रज में दस हजार गायें थीं।

WEALTH OF ANAND

4. Anand *Gathapati* had forty million gold coins in store, forty million in business, forty million worth in agriculture, cattle farming, including household articles. Thus, his total wealth was worth one hundred twenty million gold coins. In addition he had four herds having ten thousand cows each.

विवेचन—सूत्र ३ में आया 'गाथापति' शब्द जैन परिभाषा का मुख्य शब्द है। प्राचीन समय में धन-वैभव सम्पन्न गृहस्थ को गाथापति कहते थे, जिनके व्यापार, गौ-पालन तथा खेती आदि कार्य होता था।

सूत्र ४ में 'सुवर्ण' शब्द सोने के सिक्कों का सूचक है। यह उस समय की मुद्रा के रूप में प्रचलित था। भगवान महावीर के बहुत समय बाद तक भारत में सोने के सिक्के चलते थे। बाद में शक आदि विदेशी शासकों ने इसे 'दीनार' तथा मुसलमान बादशाहों के समय में यह सिक्का 'मोहर' या 'अशरफी' कहा जाता था। उसके बाद भारत में सोने के सिक्कों का प्रचलन बन्द हो गया।

आनन्द गाथापति के पास दस-दस हजार गायों के चार गोकुल भी थे। इससे अनुमान होता है उसके पास कृषि योग्य भूमि भी विपुल परिमाण में होगी। जिससे पशुधन का पालन भी होता और उसका खेती में उपयोग भी किया जाता था।

Explanation—The word *'Gathapati'* appearing in *Sutra* 3 is a Jain metaphor. In good old days, a wealthy householder was called *Gathapati*. He was usually engaged in trading, agriculture and cattle farming.

In *Sutra* 4, the word 'suvarn' indicates gold coin. It was prevalent as currency in those days. For a pretty long time even after Bhagavan Mahavir, gold coins were used in India in trading. Later, during the Saka period it was called 'deenar' and during the Muslim period the 'mohar' or 'asharafi'. Later, such coins were stopped as medium of exchange.

Anand *Gathapati,* the noble, had four *gokuls* (cattle farms) of ten thousand cows each. This fact shows that he must have had a large piece of land fit for agriculture. That land was used for agriculture and cattle farming.

५. से णं आणंदे गाहावई बहूणं राईसर जाव सत्थवाहाणं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु य कुडुम्बेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे; सयस्स वि य णं कुडुंबस्स मेढी, पमाणं, आहारे, आलंबणं, चक्खू, मेढीभूए जाव सव्व कज्जवड्ढावए यावि होत्था।

५. आनन्द गाथापति से नगर के राजा, सेनापति, सार्थवाह, ईश्वर-ऐश्वर्यशाली आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रत्येक बात में परामर्श लिया करते थे। विविध कार्यों, योजनाओं, मन्त्रणाओं, कौटुम्बिक समस्याओं, बहुत-सी गोपनीय बातों, अनेक प्रकार के रहस्यों, विचारणीय विषयों, निर्णयों तथा लेन-देन आदि से सम्बन्ध रखने वाले व्यवहारों में उससे पूछते रहते थे और उसकी सम्मति को महत्त्वपूर्ण मानते थे। वह अपने कुटुम्ब परिवार का भी स्तम्भ के समान आधारभूत था, उसका आलम्बन अर्थात् सहारा था और चक्षु अर्थात् पथ-प्रदर्शक एवं 'मेढी' अर्थात् केन्द्रीय स्तम्भ के समान था। इतना ही नहीं, वह समस्त कार्यों को आगे बढ़ाने वाला था। वह परिवार तथा समाज के विकास व संवर्धन में तत्पर रहता था।

5. Anand, the noble, was consulted by the king, the chief of the traders, the rich and the respectable elite of the town in all important matters. They used to take his advice in various matters, plans, family problems, secret plans, intricate subjects and the matters relating to trade and mutual dealings. His advice was considered of primary importance. He was the most important person even in his family. He was the supporting citadel of the family and the guide for them. He was the central figure. Not only this, he was progressive in all activities. He was always engaged in the development of his family and also of the society.

६. तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स सिवनन्दा (सिवानन्दा) नामं भारिया होत्था, अहीण जाव सुरूवा। आणंदस्स गाहावइस्स इट्ठा, आणंदेणं गाहावइणा सद्धिं अणुरत्ता, अविरत्ता, इट्ठे सद्दरूवे जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

६. आनन्द गाथापति की शिवानन्दा नामक पत्नी थी। वह सर्वांग परिपूर्ण उत्तम लक्षणों से युक्त तथा सुन्दरी थी। आनन्द को अत्यन्त प्रिय थी। उसके प्रति अनुरक्त–अनुराग रखने वाली, मधुरभाषिणी तथा अविरक्त–प्रतिकूल होने पर भी कभी रुष्ट नहीं होती थी। आनन्द के साथ इच्छानुकूल शब्द, रूप आदि पाँच प्रकार के मनुष्य-जन्म सम्बन्धी कामभोगों का उपभोग करती हुई जीवन यापन कर रही थी।

['काम' का अर्थ है–जिन विषयों का एक साथ अनेक लोग आनन्द ले सकते हैं। 'भोग' का अर्थ है–जहाँ भोग्य वस्तु भिन्न-भिन्न होती हैं, जैसे–भोजन, शय्या आदि।]

6. Shivananda was the wife of Anand *Gathapati*. She was well-built, beautiful and treasure of all good traits. Anand loved her very much. She had great respect for Anand. She was sweet tempered and never lost equanimity even in adverse situation. She was enjoying family life with Anand fully grasping the love bestowed through five sense organs.

[*'Kaam'* means that situation which can be enjoyed by one many times. In *'bhog'*, the things enjoyed are varied, *e.g.,* food, bed, etc.]

७. तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं कोल्लाए नामं सन्निवेसे होत्था। रिद्धत्थिमिय जाव पासादीए; दरसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे।

७. वाणिज्यग्राम के बाहर (नजदीक) ईशानकोण में कोल्लाक नामक सन्निवेश अर्थात् उपनगर था। वह ऋद्ध–धनधान्य आदि से सम्पन्न, स्तिमित–तस्कर आदि के उपद्रवों से रहित, प्रासादीय–चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय–देखने योग्य, अभिरूप–शोभा से युक्त, तथा प्रतिरूप–अलौकिक छवि वाला था।

7. At the outskirts of Vanijyagram in the north-east there was a county called Kollak. That county was **(Riddha)**—prosperous, **(Stimit)**—safe from the outrage of bandits,

(Prasadiya)—pleasant, **(Darshaniya)**—worthy of a visit, **(Abhiroop)**—beautiful, and **(Pratiroop)**—of exquisite grandeur.

विवेचन–सूत्रकार ने 'रिद्ध, त्थिमिय, समिद्ध' ये तीन पद दिये हैं, इनके द्वारा नगर का समस्त वर्णन कर दिया है। विशाल भवनों से नगर की शोभा बढ़ती है। किन्तु वही नगर समृद्धिशाली हो सकता है, जो निर्भय हो अर्थात् जहाँ राजा, तस्कर आदि किसी प्रकार का भय न हो। शास्त्रों में भय के अनेक प्रकार बताये हैं–राजभय, तस्करभय, जलभय, अग्निभय, वनचरभय तथा जनता के असन्तोष का भय आदि। निर्भय नगर चतुर्मुखी उन्नति करता है।

Explanation—In the *Sutra,* the beauty of the county is described in three words—**'Riddha, Sthimiya, Samiddha'.** The sky scrappers make a city important but only that city can be prosperous where there is no fear of disproportionate taxes, no fear of robbers, etc. In scriptures many types of fears have been mentioned namely fear of king, fear of bandits, fear of water (floods), fear of fire, fear of wild animals and fear of agitations. A city free of such fears makes progress in all spheres.

आनन्द के स्वजन सम्बन्धियों का वर्णन

८. तत्थ णं कोल्लाए सन्निवेसे आणंदस्स गाहावइस्स बहुए मित्तणाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए।

८. उस कोल्लाक सन्निवेश में आनन्द गाथापति के बहुत से मित्र, ज्ञातिजन, स्वजाति बन्धु, आत्मीय–माता-पिता, पुत्र आदि स्वजन, सम्बन्धी–श्वसुर, मामा आदि तथा परिजन–दास-दासी आदि निवास करते थे। वे भी सम्पन्न तथा सुखी थे।

DETAIL OF ANAND'S RELATIVES AND DEPENDENTS

8. Many friends, near relatives, families closely connected from paternal and maternal side, families belonging to the same clan, sub-caste as that of Anand lived in Kollak county. His servants including domestic help also lived there. They were also well-to-do and happy.

९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए। परिसा निग्गया। कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता जाव पज्जुवासइ।

९. उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार करते हुए वाणिज्यग्राम नगर के बाहर दूतिपलाश चैत्य में पधारे। परिषद् वन्दना करने को निकली। कूणिक के समान जितशत्रु राजा भी अपनी सेना व परिवार के साथ निकला और भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ।

9. At that time during the course of his wanderings from one village to the other, Bhagavan Mahavir once arrived at the outskirts of Vanijyagram and stayed at Dootipalash temple. The citizens came out of the town to pay their obeisance to the Lord. King Jitshatru also came out with his army and family members, like king Kunik and stood in waiting before the Lord.

आनन्द का भगवान के दर्शनार्थ जाना

१०. तए णं से आणंदे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे "एवं खलु समणे जाव विहरइ, तं महप्फलं, जाव गच्छामि णं। जाव पज्जुवासामि" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ण्हाए, सुद्धप्पा मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए, अप्पमहग्घाभरणालंकिय सरीरे सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सकोरेंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्स वग्गुरा परिक्खित्ते पायविहारचारेणं वाणियग्गामं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव दूइपलासे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ।

१०. आनन्द गाथापति ने राजा आदि प्रमुख नगर-जनों को भगवान की वन्दना के लिए जाते देखकर जाना कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगर के बाहर उद्यान में ठहरे हुए हैं। उसके मन में विचार आया कि मैं भी भगवान के दर्शनार्थ जाऊँ और विधिपूर्वक उपासना करूँ, इससे महान् फल की प्राप्ति होगी। ऐसा विचार कर स्नान किया, शुद्ध एवं सभा में प्रवेश करने योग्य वस्त्र पहने, संख्या तथा भार में अल्प, परन्तु

बहुमूल्य आभूषण शरीर पर धारण किये। इस भाँति सुसज्जित होकर वह अपने घर से निकला। कोरंट (सफेद) पुष्पों की माला से युक्त छत्र धारण किया और अनेक पुरुषों से घिरा हुआ, पैदल ही चलता हुआ वाणिज्यग्राम नगर के बीच में से गुजरता हुआ, दूतिपलाश चैत्य में जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दना तथा नमस्कार किया, यथाविधि पर्युपासना करने लगा।

ANAND'S DEPARTURE TO HAVE *DARSHAN* OF THE LORD

10. After seeing the king and the elite going to pay homage to Bhagavan, Anand learnt that Bhagavan Mahavir was camping in the garden outside the town. He thought of going to the Lord to have the holy darshan and pay his obeisance in the prescribed manner as it results in great benefit. He then took his bath, dressed himself according to the occasion, decorated his body with a few but very costly ornaments and came out of his house. He held an umbrella having garlands of Korant (white) flowers. Surrounded by his social circle, he passed through Vanijyagram on foot and reached Dootipalash temple where Bhagavan Mahavir was staying. After reaching there, he paid his benediction to the Lord three times and uttered in honour of the Lord as prescribed in scriptures.

धर्मकथा-श्रवण

११. तए णं समणे भगवं महावीरे आणंदस्स गाहावइस्स, तीसे य महइ-महालियाए परिसाए जाव धम्म कहा। परिसा पडिगया, राया य गओ।

११. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने आनन्द गाथापति तथा उस महती परिषद् को धर्म उपदेश किया। धर्म प्रवचन सुनकर परिषद् चली गई और जितशत्रु राजा भी चला गया।

[भगवान की धर्मकथा का विस्तृत वर्णन रायपसेणियसूत्र तथा औपपातिकसूत्र आदि में देखना चाहिए।]

LISTENING TO THE RELIGIOUS DISCOURSE

11. Bhagavan Mahavir gave his religious discourse for the benefit of Anand *Gathapati* and the large congregation. After listening the discourse the congregation dispersed and king Jitshatru also left.

[The detailed account of the religious discourse can be seen in *Raipasaniya Sutra* and *Aupapatik Sutra*.]

आनन्द की धर्मरुचि

१२. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव एवं वयासी-"सद्दहामिणं भंते ! णिग्गंथे पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु, जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-सेट्ठि-सेणावई सत्थवाहप्पभिइआ मुण्डा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

"अहासुहं, देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

१२. तब आनन्द गाथापति भगवान महावीर की धर्मदेशना सुनकर हर्षित एवं प्रसन्न होकर भगवान की वन्दना करके इस प्रकार कहने लगा-"भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, विश्वास करता हूँ, वह मुझे अच्छा लगता है। भगवन् ! यह ऐसा ही है जैसा आपने कहा। निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, यथार्थ है, तथ्य है, मुझे अभीप्सित है, अभिप्रेत है। हे देवानुप्रिय ! आपके पास जिस प्रकार राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह घर छोड़कर, मुण्डित होकर अनगार बने हैं किन्तु मैं उस प्रकार मुण्डित होकर प्रव्रजित होने में समर्थ नहीं हूँ। इसलिए मैं आपके पास पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत मूलक बारह प्रकार का श्रावक धर्म ग्रहण करना चाहता हूँ।"

आनन्द गाथापति के इस प्रकार कहने पर भगवान महावीर ने कहा–"देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो उसी प्रकार करो। विलम्ब मत करो।"

RELIGIOUS INCLINATION AND DEEP CURIOSITY OF ANAND

12. After listening to the religious discourse of Bhagavan Mahavir, Anand *Gathapati's* joy knew no bounds. He bowed to the Lord and said—"Bhante ! I have full faith in the discourse. It fully appeals to me. I grasp its contents meticulously. O Lord ! All the facts are exactly the same as narrated by your honour. *Nirgranth Pravachan* (the discourse by you—The Unattached) is true, real and factual. It touches my heart, is pleasant and acceptable to me. O, honoured by gods ! Many kings, chiefs, respectable nobles, householders have left their families and adopted monkhood at your feet. But I am not courageous enough to adopt monkhood. However, I wish to undertake twelve vows of the householder *(Shravak)* that include five *Anu Vrats* and seven *Shiksha Vrats* (disciplinary vows)."

In reply to Anand *Gathapati,* Bhagavan Mahavir said—"O blessed by the Angels ! You do what you wish to do. But never delay in putting into practice the noble things."

विशेष शब्दों के अर्थ–ईश्वर–ऐश्वर्यशाली। तलवर–राजा के अंगरक्षक का विशेष सम्मान प्राप्त। माडम्बिक–गाँवों का मुखिया, ग्राम-प्रधान या अधिकारी। कौटुम्बिक–परिवार के प्रमुख व्यक्ति।

Explanation of important words—Ishwar—well-to-do. **Talwar**—bodyguards of the king. **Madambik**—head of cluster of villages. **Kautumbik**—the head of the family.

आनन्द का श्रावक व्रत ग्रहण

१३. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइ, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा।

आनन्द श्रावक द्वारा व्रत ग्रहण ACCEPTANCE OF HOUSEHOLDER'S CODE BY ANAND

चित्र परिचय १

Illustration No. 1
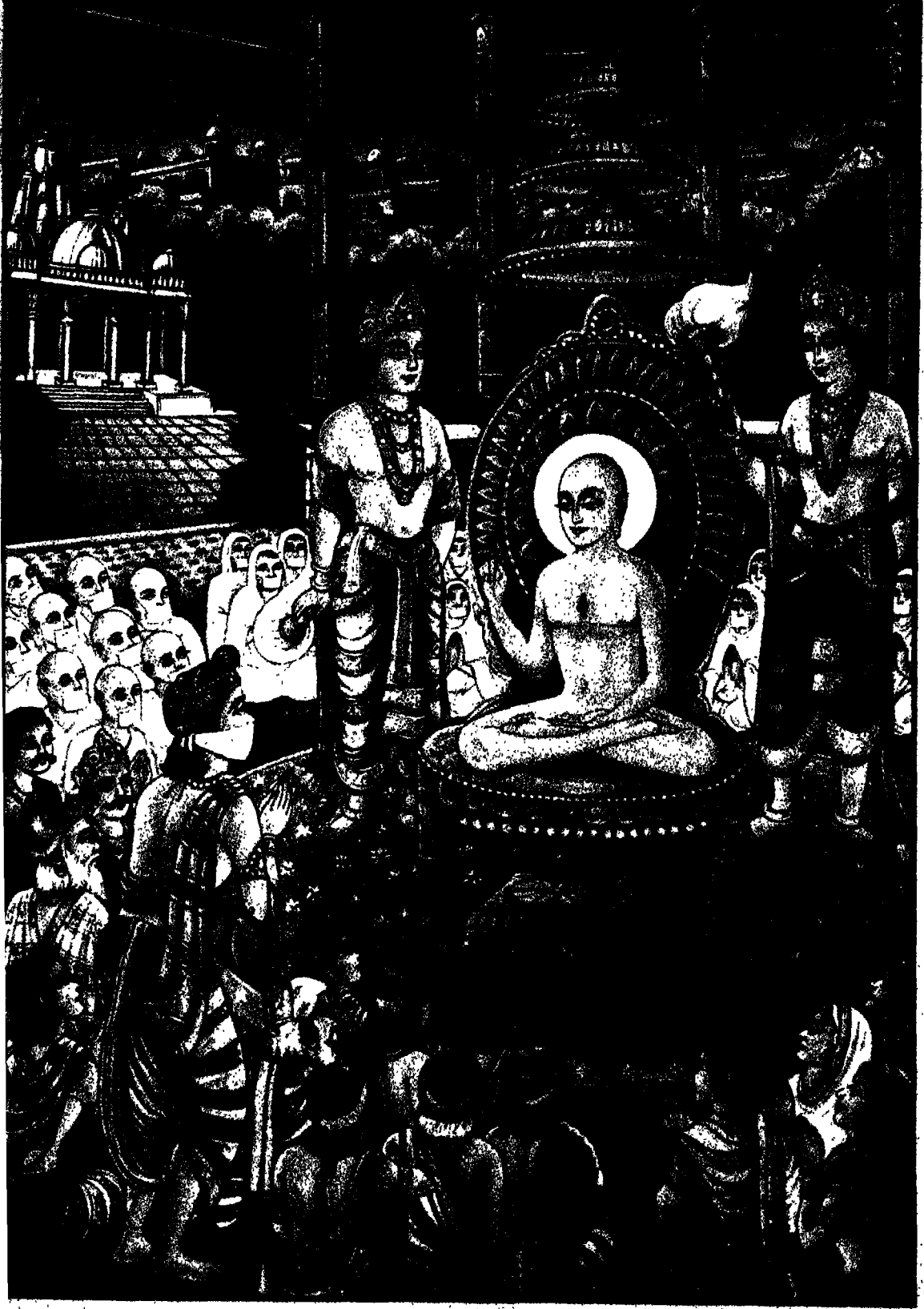
आनन्द का श्रावक धर्म ग्रहण

किसी समय भगवान महावीर वाणिज्यग्राम के दूतिपलाश चैत्य में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर गाथापति आनन्द वन्दना करने गया। उसने सचित्त वस्तुओं को दूर छोड़कर उत्तरासंग–दुपट्टे को मुँह पर लगाकर विधिपूर्वक वन्दना कर धर्म उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसने भगवान से कहा–"भंते ! आप द्वारा प्ररूपित यह श्रावक धर्म मुझे रुचिकर और कल्याणकारी लगा है। इसलिए मैं आपसे पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म ग्रहण करना चाहता हूँ।"

भगवान ने कहा–"देवानुप्रिय ! जिससे तुमको सुख हो वैसा करो। विलम्ब (प्रमाद) मत करो।"

–उपासकदशा, अ. १, सूत्र १०-११

ACCEPTANCE OF HOUSEHOLDER'S CODE BY ANAND

Once Bhagavan Mahavir came to Dyutipalash garden in Vanijyagram. After hearing about it, Anand *Gathapati* went there to have *darshan* of Bhagavan. He left animate articles at a distance, covered his mouth with a cloth, bowed to Bhagavan in prescribed manner honouring him and listened his spiritual discourse. He then said to Bhagavan—"Bhante ! I have liked the code of householder as propounded by you. I feel my welfare in it. So I wish to accept five primary vows and seven disciplinary vows."

Bhagavan replied—"O beloved of the angels ! You do that in which you find happiness. But do not be lethargic in such matters."

—Upasak-dasha, Ch. 1, Sutra 10-11

१३. तब आनन्द गाथापति ने श्रमण भगवान महावीर के पास व्रतों में मुख्य प्रथम व्रत के रूप में स्थूल प्राणातिपात अर्थात् स्थूल हिंसा का दो करण (करना-कराना) तथा तीन योग (मन, वचन, काया) से परित्याग किया। उसने निश्चय किया कि "मैं जीवन पर्यन्त मन, वचन और शरीर से स्थूल प्राणातिपात न स्वयं करूँगा और न दूसरों से कराऊँगा।"

ACCEPTANCE OF HOUSEHOLDER'S VOWS BY ANAND *GATHAPATI*

13. Then Anand *Gathapati* solemnly affirmed before Bhagavan Mahavir that he won't undertake gross violence *(Sthul Pranatipat)* with two *karanas* (doing it himself or getting it done) through three *yogas* (mind, speech and action). This was the first vow accepted by Anand *Gathapti* before the Lord. He decided that "he shall not undertake violence on gross living creatures during his entire remaining life with thought, word or deed nor shall he get the violence done through somebody."

विवेचन—परित्याग कई प्रकार से किया जाता है। किसी कार्य को हम स्वयं नहीं करते, किन्तु दूसरे से कराने या अन्य व्यक्ति द्वारा स्वयं करने पर उसके अनुमोदन का त्याग नहीं करते। इस दृष्टि से जैनधर्म में ४९ भंग अर्थात् प्रकार बताये गये हैं। करना, कराना तथा अनुमोदन करना, ये तीन करण हैं और मन, वचन तथा काय के रूप में तीन योग हैं। इनके विविध विकल्पों से ४९ भंग बनते हैं। (देखें पच्चीस बोल का चौबीसवाँ बोल) सर्वोत्कृष्ट त्याग तीन करण, तीन योग से होता है, इस प्रकार का त्याग समस्त सांसारिक प्रवृत्तियों से निवृत्त मुनि के लिए ही सम्भव है। श्रावक साधारणतया दो करण (करना-कराना) और तीन योग से व्रत स्वीकार करता है।

थूलगं पाणाइवायं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति स्थावर जीव हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के त्रस जीव हैं। स्थूल हिंसा से तात्पर्य है त्रस जीवों की हिंसा। आनन्द श्रावक ने भगवान से यह व्रत ग्रहण किया कि निरपराधी चलने-फिरने वाले प्राणियों की मैं हिंसा नहीं करूँगा, इसलिए उसने दो करण और तीन योग से मोटी हिंसा का परित्याग किया।

Explanation—A vow has many stages according to its implications. We may not do some deed ourselves but we do not refrain from getting it done through some body or appreciating

someone who has done it. Keeping these stages of a vow, Jainism describes a vow in 49 different levels. Doing ourself, getting it done and appreciating the wrongs done are the three *karanas;* activities of mind, word and deed are the three *yogas.* The permutation and combination of three *karanas* and three *yogas* leads to 49 *Bhangas* (stages, shades) (for details see twenty fourth item in the table of twenty five *Bol*). The highest stage of this vow is when it is undertaken with three *karanas* and three *yogas.* This is possible only for a monk completely detached from all family bondage. The householder can ordinarily take this vow in two *karanas* and three *yogas.*

Thulagan Panaivayan—Earth bodied, water bodied, fire bodied, air bodied, vegetable bodied living beings are called *Sthavar* and two sensed to three sensed creatures are *Tras.* Gross violence means violence on *tras* creatures. Anand took the vow in presence of Bhagavan that he shall not do any violence to mobile beings who have not done any harm to him. He, therefore, took the vow of not undertaking gross violence through two *karanas* and three *yogas.*

१४. तयाणंतरं च णं थूलगं मुसावायं पच्चक्खाइ, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

१४. उसके पश्चात् आनन्द ने स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान इस प्रकार किया–"मैं जीवन पर्यन्त मन, वचन और काय से स्थूल मृषावाद का प्रयोग न स्वयं करूँगा और न दूसरों से कराऊँगा।"

14. Thereafter Anand accepted the vow that he shall never utter gross falsehood **(Sthul Mrishavad).** He undertook that "throughout his life he shall never make grossly false statements mentally, through words or through deeds nor shall he get any such statement made through someone."

१५. तयाणंतरं च णं थूलगं अदिण्णादाणं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

१५. इसके बाद आनन्द ने स्थूल अदत्तादान अर्थात् चोरी का प्रत्याख्यान किया कि "मैं यावज्जीवन दो करण, तीन योग से अर्थात् मन से, वचन से और काय से स्थूल चोरी न करूँगा और न कराऊँगा।"

15. Next Anand took the vow of not accepting *Adattadan*—a thing which is not willingly given to him by its owner. He undertook the vow that "throughout his life through two *karanas* and three *yogas,* viz., through mind, word or deed he shall neither commit gross theft nor get it done."

१६. तयाणंतरं च णं सदारसंतोसीए परिमाणं करेइ, नन्नत्थ एक्काए सिवानंदाए भारियाए, अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खामि।

१६. फिर उसने स्वदार-सन्तोष व्रत के अन्तर्गत मैथुन की मर्यादा स्वीकार की कि "शिवानन्दा नामक अपनी विवाहित पत्नी के अतिरिक्त मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

16. Next Anand took the vow of remaining contented with his wife (Shivananda). He accepted the vow that "he shall have sex only with his wife Shivananda and none else."

१७. तयाणंतरं च णं इच्छाविहिपरिमाणं करेमाणे हिरण्णसुवण्णविहि परिमाणं करेइ, नन्नत्थ चउहिं हिरण्णकोडीहिं निहाणपउत्ताहिं, चउहिं वुड्ढिपउत्ताहिं, चउहिं पवित्थरपउत्ताहिं, अवसेसं सव्वं हिरण्ण सुवण्णविहिं पच्चक्खामि।

१७. तदनन्तर इच्छाविधि का परिमाण करते हुए आनन्द ने हिरण्य सुवर्ण (सोने की मुद्रा) की मर्यादा इस प्रकार की–"निधान में रखे चार करोड़ स्वर्ण, व्यापार में प्रयुक्त चार करोड़ स्वर्ण तथा घर एवं घर के उपकरणों में प्रयुक्त चार करोड़ स्वर्ण–इस प्रकार बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के अतिरिक्त सुवर्ण संग्रह का परित्याग करता हूँ।"

17. Later, limiting the desire, Anand set limit for possession of gold coins as under—"I shall keep forty million gold coins in my treasure, forty million in trade and forty

million in the household—Thus, I give up all that is in excess of said one hundred and twenty million gold coins."

१८. तयाणंतरं च णं चउप्पयविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ चउहिं वएहिं दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अवसेसं सव्वं चउप्पयविहिं पच्चक्खामि।

१८. इसके पश्चात् चतुष्पद अर्थात् पशुधन सम्बन्धी मर्यादा की–"प्रत्येक में दस हजार गौओं वाले ऐसे चार गोकुलों के सिवाय अन्य पशु संग्रह का परित्याग करता हूँ।"

18. He, then, limited his cattle wealth—"to four *gokuls* of ten thousand cows each and declared that he shall never keep in his possession more than that."

१९. तयाणंतरं च णं खेत्त-वत्थुविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ पंचहिं हलसएहिं नियत्तण-सइएणं हलेणं अवसेसं सव्वं खेत्तवत्थुविहिं पच्चक्खामि।

१९. तदनन्तर क्षेत्रवास्तु विधि का परिमाण किया–"सौ बीघा भूमि का एक हल, इस प्रकार के पाँच सौ हलों के अतिरिक्त शेष क्षेत्रवास्तु का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

19. Further, he decided that "he shall never keep in his ownership more than 500 plough-land where each plough-land consists of 500 *bighas* of agricultural land (24 *bighas* = 5 acres)."

२०. तयाणंतरं च णं सगडविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ पंचहिं सगडसएहिं दिसायत्तिएहिं, पंचहिं सगडसएहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं सगडविहिं पच्चक्खामि।

२०. उसके पश्चात् बैलगाड़ियों का परिमाण किया जिसमें पाँच सौ शकट यात्रा के लिए और पाँच सौ शकट माल ढोने के रखे। इसके अतिरिक्त अन्य शकट रखने का परित्याग किया।

20. Regarding carts for carrying on trading he fixed a limit of 500 bullock-carts for travel and 500 carts for carrying merchandise.

२१. तयाणंतरं च णं वाहणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ चउहिं वाहणेहिं दिसायत्तिएहिं, चउहिं वाहणेहिं संवाहणिएहिं, अवसेस सव्वं वाहणविहिं पच्चक्खामि।

२१. तदनन्तर वाहनों–नौकाओं अर्थात् जलयानों का परिमाण किया–चार माल ढोने की तथा चार यात्रा की नौकाओं के सिवाय अन्य नौकाओं के रखने का प्रत्याख्यान किया।

21. He also limited the possession of boats to four for travel and four for carrying goods.

विवेचन–उक्त सूत्रों पर टीका करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या की है। जैसे–

चतुष्पद–पशुधन, गाय, बैल ही नहीं, अपितु घोड़े आदि पशु भी समझना चाहिए। गाय की मुख्यता के कारण यह गौधन कहा गया है। आनन्द ने दस-दस हजार गायों के चार गोकुल अर्थात् चालीस हजार गायों से अधिक गोधन (पशुधन) रखने की मर्यादा की थी।

खेत्त-वत्थु–'खेत्त' का अर्थ खेती योग्य भूमि है। 'वत्थु' शब्द के वस्तु तथा वास्तु दो रूप बनते हैं। वस्तु का अर्थ है–बर्तन, पलँग आदि रोजाना काम में आने वाला सामान। वास्तु का अर्थ है–भूमि, रहने का मकान आदि।

निवर्तन–भूमि के एक विशेष माप को कहते हैं। प्राचीनकाल में हल चलाते हुए जहाँ से बैल वापस मुड़ता उतनी भूमि का माप एक 'निवर्तन' माना जाता था। इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार दो सौ हाथ लम्बी-चौड़ी अर्थात् २०० × २०० = ४०,००० वर्ग हाथ भूमि को एक 'निवर्तन' कहा जाता था। ऐसे सौ निवर्तनों की भूमि को एक हल की भूमि अर्थात् एक बीघा माना जाता था।

शकट विधि में उसने पाँच सौ गाड़ियाँ बाहर यात्रा के लिए तथा पाँच सौ गाड़ियाँ माल ढोने के लिए रखी थीं। एक हजार गाड़ियाँ तथा इसी प्रकार दो प्रकार की नौकाओं की मर्यादा की। चार नौकाएँ यात्रा के लिए तथा चार नौकाएँ माल ढोने के लिए अर्थात् कुल आठ नौकाएँ उसके पास थीं। इससे पता चलता है कि आनन्द जल एवं स्थल दोनों मार्गों से व्यापार करता था।

भूमि आदि के परिमाण में पाँचवाँ व्रत तथा वाहन आदि के परिमाण से छठा दिशा-परिमाण व्रत ग्रहण करने की सूचना मिलती है।

Explanation—Acharya Shri Atmaram Ji M. has explained important words appearing in the *Sutra* as under—

Chatushpad—Four-legged animals. It included not only cattle, cow, bullocks but also horses. Since cow was most prominent among them, it was called *godhan* (wealth of cows).

Khetta-Vatthu—*'Khetta'* means agricultural land. *'Vatthu'* has two meanings—*Vastu* and *Vaastu*. *'Vastu'* means utensils, beds and household of daily use. *'Vaastu'* means vacant land, house, residential building.

Nivartan—It is a measure of land. In old days, the measurement upto the place from where the ox driven plough turns, was known as one *'nivartan'*. In English Dictionary, 200 *haath* long and 200 *haath* wide, *i.e.*, 40,000 sq. *haath* land was called *'nivartan'*. 100 *nivartan* land was equal to one *bigha*.

In case of bullock-carts, Anand had kept 500 carts for travel and 500 for carrying goods. Similarly, he had kept two types of big boats—four for travel and four for carrying goods. These facts indicate that he traded by land route and also by waterways.

Limiting the land, etc., informs of the fifth vow and limiting the carriers, etc., informs of the sixth vow of limiting the directions for movements.

(१) उद्द्रवणिका विधि

२२. तयाणंतरं च णं उवभोग-परिभोगविहिं पच्चक्खाएमाणे, उल्लणिया विहिपरिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगाए गंध-कासाईए, अवसेसं सव्वं उल्लणियाविहिं पच्चक्खामि।

२२. इसके बाद आनन्द गाथापति ने उपभोग-परिभोग विधि का प्रत्याख्यान ग्रहण करते हुए उद्द्रवणिका विधि का अर्थात् स्नान के पश्चात् भीगे शरीर को पोंछने के काम में आने वाले अंगोछे-तौलिए आदि का परिमाण किया। **गन्धकषाय**—सुगंधित और लाल रंग के तौलिए के अतिरिक्त अन्य सबका प्रत्याख्यान किया।

(1) WIPING WITH TOWELS

22. Later, Anand *Gathapati* limiting the things of single use and repeated use *(Upbhog-Paribhog pariman)*, set a limit for towels used to wipe the body after bath. ***Gandhkashaya***—He decided to keep only fragrant red towel and nothing else for this purpose.

विवेचन—आचार्य अभयदेवसूरि ने 'उपभोग' का अर्थ किया है—जो वस्तुएँ केवल एक बार काम में आती हों, जैसे—भोजन, पानी आदि। जो वस्तु बार-बार काम में आती हों, उन्हें 'परिभोग' कहा जाता है, जैसे—वस्त्र, पात्र, शय्या आदि। उपभोग-परिभोग में २६ प्रकार की वस्तुएँ गिनाई गई हैं, जिनकी चर्चा यहाँ पर है—

Explanation—Acharya Abhayadev Suri has explained *'Upbhog'* as articles of single use, *e.g.*, food, water. *'Paribhog'* are those articles that can be repeatedly used, *e.g.*, clothes, bed. Twenty six articles are mentioned in *Upbhog-Paribhog* as under—

(२) दन्तधावन विधि

२३. तयाणंतरं च णं दंतवणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं अल्ललट्ठी महुएणं, अवसेसं दंतवणविहिं पच्चक्खामि।

२३. इसके पश्चात् आनन्द ने दन्तधावन विधि का परिमाण किया और एक हरी मधुयष्टि अर्थात् मुलहठी के अतिरिक्त अन्य दाँतौन का परित्याग किया।

(2) BRUSHING TEETH

23. Anand limited teeth cleaning to the use of Madhuyashti, *i.e.*, Mulahathi stick or green stick of sweet taste.

(३) फल विधि

२४. तयाणंतरं च णं फलविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं खीरामलएणं, अवसेसं फलविहिं पच्चक्खामि।

२४. तदनन्तर फल विधि का परिमाण किया और क्षीरामलक-दूधिया आँवले के अतिरिक्त अन्य सब फलों का प्रत्याख्यान किया।

(3) WASHING THE HAIR

24. Anand limited the use of fruits (herbs) to only fresh milky pulp of seedless *Aamalas*.

विवेचन-'क्षीरामलक' शब्द का अर्थ है दूधिया आँवला, जिसमें गुठली नहीं पड़ी हो। प्राचीन समय में इसका प्रयोग सिर एवं आँखें आदि धोने के लिए किया जाता था। यह खाने के उपयोग का नहीं, केवल बाल, आँखें आदि धोने में ही काम आता था।

Explanation—*'Ksheeramalak'* means seedless *Aamala*. In olden days it was used only to wash hair and eyes. It was not used as food.

(४) अभ्यङ्गन विधि

२५. तयाणंतरं च णं अब्भंगणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ सयपाग सहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अवसेसं अब्भंगणविहिं पच्चक्खामि।

२५. उसके बाद आनन्द ने अभ्यङ्गन विधि अर्थात् मालिश के काम में आने वाले तेलों का परिमाण किया-"मैं शतपाक तथा सहस्रपाक तेलों को छोड़कर अन्य सब मालिश के तेलों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(4) MASSAGING

25. Anand limited his massage to *Shatpak* and *Sahasrapak* oils only.

विवेचन-आचार्य अभयदेवसूरि की व्याख्या अनुसार-**द्रव्यशतस्य सतकं क्वाथशतेन सह यत्पच्यते कार्षापणशतेन वा तच्छतपाकम्, एवं सहस्रपाकमपि।** जिस तेल को सौ द्रव्यों के साथ सौ बार पकाया जाता है अथवा जिसका मूल्य सौ कार्षापण (एक प्रकार का सिक्का) है, उसे शतपाक कहते हैं। इसी प्रकार सहस्रपाक का अर्थ भी समझना चाहिए।

Explanation—According to Acharya Abhayadev Suri the oil that contains 100 ingredients and was boiled 100 times is called *Shatpak*. Its cost was 100 coins. Similarly, *Sahasrapak* contained 1,000 ingredients and was boiled 1,000 times before it was ready for use.

(५) उद्वर्तन विधि

२६. तयाणंतरं च णं उव्वट्टणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं सुरहिणा गंधट्टएणं, अवसेसं उव्वट्टणविहिं पच्चक्खामि।

२६. तदनन्तर उसने उबटनों का परिमाण किया–"मैं एक सुगंधित गंधाटक–गेहूँ आदि के आटे से बने हुए सुगन्धित उबटन के अतिरिक्त अन्य सबका प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(5) PASTE BEFORE BATH

26. He further limited the pastes to be used for cleansing before taking bath. He decided that "he shall use only fragrant *gandhatak* (paste prepared with wheat flour) and none else."

(६) स्नान विधि

२७. तयाणंतरं च णं मज्जणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ अट्ठहिं उट्टिएहिं उदगस्स घडेहिं, अवसेसं मज्जणविहिं पच्चक्खामि।

२७. इसके अनन्तर स्नान विधि का परिमाण किया–"पानी से भरे हुए आठ औष्ट्रिक घड़ों के (ऊँट के आकार का पात्र अर्थात् जिसका मुँह सँकरा, गर्दन लम्बी और पेट बड़ा हो) अतिरिक्त स्नान के लिए जल के उपयोग का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(6) BATHING

27. He set limitation on bathing. He decided that "he shall use not more than eight camel-shaped pitchers (pitchers with long camel type neck) full of water for his bath."

(७) वस्त्र विधि

२८. तयाणंतरं च णं वत्थविहिं परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं खोमजुयलेणं, अवसेसं वत्थविहिं पच्चक्खामि।

२८. इसके अनन्तर वस्त्र विधि–पहनने के वस्त्रों का परिमाण किया–"मैं अलसी अथवा कपास के बने हुए दो सूती वस्त्रों के सिवाय अन्य वस्त्रों के पहनने का परित्याग करता हूँ।"

(7) LIMITATION OF DRESS

28. He also set a limit to clothes of daily use. He decided that "he shall use only two types of clothes—those made of cotton or linseed *(Alsi)* and no more."

विवेचन–'क्षोम' शब्द का अर्थ कपास या अतसी (अलसी) आदि से बना हुआ वस्त्र है। यहाँ कपास समझना चाहिए। 'युगल' शब्द का अर्थ है दो या जोड़ा ऐसा प्रतीत होता है। उन दिनों 'धोती' के रूप में अधोवस्त्र तथा 'चद्दर' या 'दुपट्टा' आदि के रूप में उत्तरीय वस्त्र पहनने का रिवाज था।

Explanation—*'Kshom'* means cloth made of cotton or linseed. *'Yugal'* means two. It appears that in those days *'dhoti'* was used to cover lower part of the body and *'chaddar'* or *'dupatta'* (sheet of cloth) to cover the upper part.

(८) विलेपन विधि

२९. तयाणंतरं च णं विलेवणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ अगरु-कुंकुम-चंदणमादिएहिं, अवसेसं विलेवणविहिं पच्चक्खामि।

२९. इसके अनन्तर विलेपन विधि अर्थात् लेप करने की वस्तुओं का परिमाण किया–"अगुरु (अगर), कुंकुम, चन्दन के अतिरिक्त अन्य सब विलेपन द्रव्यों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(8) LIMITATION OF PERFUMES

29. He decided to limit the articles used for make up. He took a vow that "he shall use only sandalwood paste *Agaru* and *Kunkum* for this purpose."

(९) पुष्प विधि

३०. तयाणंतरं च णं पुप्फविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं सुद्धपउमेणं, मालइ कुसुमदामेणं वा, अवसेसं पुप्फविहिं पच्चक्खामि।

३०. तदनन्तर पुष्प विधि का परिमाण इस प्रकार किया–"मैं श्वेत कमल तथा मालती के फूलों की माला के सिवाय अन्य फूलों के धारण अथवा सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(9) USE OF GARLANDS

30. He set a limit to flower garlands. He decided that "he shall use only white lotus or jasmine flowers in garlands to wear."

(१०) आभरण विधि

३१. तयाणंतरं च णं आभरणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ मट्ठ-कण्णेज्जएहिं नाम मुद्दाए य, अवसेसं आभरणविहिं पच्चक्खामि।

३१. तब उसने आभरण विधि का प्रत्याख्यान किया-"मैं शुद्ध सोने के कुण्डल (बिना चित्र वाले) तथा अपने नाम वाली मुद्रिका (अँगूठी) के सिवाय अन्य आभूषणों का परित्याग करता हूँ।"

(10) USE OF ORNAMENTS

31. He further limited the ornaments for personal use. He decided that "he shall use only ear-rings *(Kundal)* of pure gold bearing no pictures and the ring bearing his name."

(११) धूप विधि

३२. तयाणंतरं च णं धूवणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ अगरु तुरुक्क धूवमादिएहिं, अवसेसं धूवणविहिं पच्चक्खामि।

३२. तत्पश्चात् उसने धूपन विधि का परिमाण किया-"मैं अगुरु, लोबान, धूप आदि के सिवाय अन्य धूप के काम आने वाली वस्तुओं का परित्याग करता हूँ।"

(11) USE OF INCENSE

32. He decided to limit the use of incense to the extent that he shall use only *agaru, loban* and *dhoop* and none else.

(१२) भोजन विधि

३३. तयाणंतरं च णं भोयणविहि परिमाणं करेमाणे, पेज्जविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगाए कट्ठपेज्जाए, अवसेसं पेज्जविहिं पच्चक्खामि।

३३. तत्पश्चात् आनन्द ने भोजन विधि का परिमाण इस प्रकार किया–"मैं सर्वप्रथम काष्ट पेय वस्तुओं में मूँग अथवा घी में तले चावलों से बने हुए एक पेय विशेष के अतिरिक्त अन्य पेय पदार्थों का परित्याग करता हूँ।"

(12) LIMITATION ON DRINKS

33. Further, Anand limited food as under. He decided that in beverages, he shall take only a special drink prepared from *Moong* or rice roasted in ghee.

(१३) भक्ष्य विधि

३४. तयाणंतरं च णं भक्खविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेहिं घय पुण्णेहिं खण्डखज्जएहिं वा, अवसेसं भक्खविहिं पच्चक्खामि।

३४. इसके बाद उसने भक्ष्य विधि–पक्वान्नों का परिमाण किया–"मैं (घेवर घृतपूर्ण) तथा खाजे (खण्ड खाद्य) के सिवाय अन्य पक्वान्नों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(13) LIMITATION ON SWEETS

34. He decided that "he shall take only *Ghevar* and *Khaje* and none else."

(१४) ओदन विधि

३५. तयाणंतरं च णं ओयणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ कलमसालि ओयणेणं, अवसेसं ओयणविहिं पच्चक्खामि।

३५. इसके बाद ओदन विधि का परिमाण किया–"मैं कलम जाति के, धान के चावलों के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के चावलों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(14) LIMITATION ON TYPES OF RICE USED IN FOOD

35. He also decided that "he shall take rice only of *kalam* category in food."

(१५) सूप विधि

३६. तयाणंतरं च णं सूवविहिं परिमाणं करेइ। नन्नत्थ कलायसूवेण वा, मुग्गमाससूवेण वा, अवसेसं सूवविहिं पच्चक्खामि।

३६. तदनन्तर सूप विधि अर्थात् दालों के उपयोग का परिमाण किया—"मैं मटर, मूँग तथा उड़द की दाल के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार की दालों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(15) LIMITATION ON POTTAGES

36. He decided that "he shall have only pottages made of *Urad* and *Moong* pulses throughout his life and none else."

(१६) घृत विधि

३७. तयाणंतरं च णं घयविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ सारइएणं गोघयमंडएणं, अवसेसं घयविहिं पच्चक्खामि।

३७. तदनन्तर घृत विधि का परिमाण किया—"मैं शरद ऋतु के उत्तम दानेदार गौघृत के अतिरिक्त अन्य घृतों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(16) USE OF *GHEE*

37. He decided that "he shall use only clarified butter prepared in winter from cow's milk and none else."

विवेचन—कहा जाता है, शरद ऋतु का बना घी सर्वोत्तम होता है। इस घी को अच्छी प्रकार तपाकर छाछ निकालकर वर्षभर रखने से खराब नहीं होता। आयुर्वेद के अनुसार गौघृत जितना पुराना होता है उतना ही अच्छा होता है। औषधियों में पुराना गौघृत ही प्रयोग में लिया जाता है।

Explanation—It is said that clarified butter prepared in winter is the best. It is thoroughly warmed up and the whey is completely removed. It does not get spoilt in full one year. According to Ayurveda, the *ghee* prepared from cow's milk improves in quality with the period of storage. In medicines, old *ghee* is generally used.

(१७) शाक विधि

३८. तयाणंतरं च णं सागविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ वत्थुसाएण वा, चुच्चुसाएण वा, तुंबसाएण वा, सुत्थियसाएण वा, मंडुक्कियसाएण वा, अवसेसं सागविहिं पच्चक्खामि।

३८. इसके बाद आनन्द ने शाक विधि का परिमाण किया–"मैं बथुआ, चुचु, घीया (लौकी), सौवस्तिक (सूआ पालक) और मण्डूकिक (भिण्डी) के सिवाय अन्य सागों का परित्याग करता हूँ।"

(17) VEGETABLES

38. Anand set a limit to vegetables. He decided that "he shall take only *Bathua*, *Chuchu*, gourd, spinach and lady finger."

(१८) माधुरक विधि

३९. तयाणंतरं च णं माहुरयविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं पालंगामाहुरएणं, अवसेसं माहुरयविहिं पच्चक्खामि।

३९. उसके पश्चात् माधुरक विधि (गुड़, चीनी आदि से बनी वस्तुओं) का परिमाण किया–"मैं पालंगा माधुर (वृक्ष विशेष) के गोंद से बनाए मधुर पदार्थ के अतिरिक्त अन्य मीठे का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(18) FRITTERS

39. He limited the fritters to plain fritters or gourd fritters.

(१९) जेमन विधि

४०. तयाणंतरं च णं जेमणविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ सेहंबदालियंबेहिं, अवसेसं जेमणविहिं पच्चक्खामि।

४०. इसके बाद जेमन (वे पदार्थ जो स्वाद के लिए खाये जाते हैं, जैसे–चाट आदि) व्यंजन विधि का परिमाण किया–"मैं काजी बड़े तथा दालिकाम्ल–खटाई पड़े मूँग आदि के पकौड़ों के सिवाय अन्य व्यंजन–चटकीले पदार्थों का परित्याग करता हूँ।"

(19) JEMAN—ARTICLES USED ONLY FOR TASTE

40. He decided that "he shall use only *Kanji Bare* and *Pakauras* prepared from *Moong* mixed with tamarind."

(२०) पानीय विधि

४१. तयाणंतरं च णं पाणियविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ एगेणं अंतलिक्खोदएणं, अवसेसं पाणियविहिं पच्चक्खामि।

४१. इसके बाद पानीय विधि का, पीने के पानी का परिमाण किया–"एकमात्र वर्षा के पानी के सिवाय अन्य सब प्रकार के पानी का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

(20) DRINKING WATER

41. He decided that he shall have only rain water for drinking.

(२१) ताम्बूल विधि

४२. तयाणंतरं च णं मुहवासविहि परिमाणं करेइ। नन्नत्थ पंचसोगंधिएणं तंबोलेणं, अवसेसं मुहवासविहिं पच्चक्खामि।

४२. तत्पश्चात् उसने मुखवास विधि का परिमाण किया–"मैं पाँच सुगन्धित पदार्थों (इलायची, लौंग, कपूर, दालचीनी तथा जायफल) से युक्त ताम्बूल (पान) के सिवाय मुख को सुगन्धित करने वाले बाकी सब पदार्थों का परित्याग करता हूँ।"

(21) TAMBOL

42. He decided that as breath-freshner he shall use betel leaf having not more than five spices, viz., camphor, nutmeg, cloves, cinnamon and cardamom.

अनर्थदण्ड विरमण व्रत

४३. तयाणंतरं च णं चउव्विहं अणट्ठादंडं पच्चक्खाइ। तं जहा–अवज्झाणायरियं, पमायायरियं, हिंसप्पयाणं, पावकम्मोवएसे।

४३. तत्पश्चात् आनन्द ने भगवान महावीर से कहा–"मैं अपध्यानाचरित–दुर्ध्यान (आर्त्त-रौद्र ध्यान) करना, प्रमादाचरित–विकथा आदि प्रमाद का आचरण करना, हिंस्र-प्रदान–हिंसक शस्त्रास्त्रों का वितरण तथा पापकर्म का उपदेश करना इन चार अनर्थदण्डों का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

VOW OF DISCARDING UNNECESSARY VIOLENCE

43. Later, Anand told Bhagavan Mahavir—"I segregate myself from evil thoughts, *i.e.,* brooding and violent thoughts, the idle talks (*Vikatha*—talk about women, food, dirty administration and the land), the distribution of arms and weapons."

अतिचार वर्णन

सम्यक्त्व के अतिचार

४४. इह खलु आणंदाइ ! समणे भगवं महावीरे आणंदं समणोवासगं एवं वयासी–एवं खलु, आणंदा ! समणोवासएणं अभिगय-जीवाजीवेणं जाव अणइक्कमणिज्जेणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा–(१) संका, (२) कंखा, (३) विइगिच्छा, (४) परपासंडपसंसा, (५) परपासंडसंथवे।

४४. इसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने श्रमणोपासक आनन्द को सम्बोधित किया–"आनन्द ! जीवाजीव आदि पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले तथा धर्म से विचलित न होने वाले और मर्यादा में स्थिर रहने वाले श्रमणोपासक को सम्यक्त्व के पाँच मुख्य अतिचार अवश्य जान लेने चाहिए परन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार इस प्रकार हैं–(१) शंका, (२) कांक्षा, (३) विचिकित्सा, (४) परपाषण्ड प्रशंसा, और (५) परपाषण्ड संस्तव।"

DESCRIPTION OF *ATICHAR*—PARTIAL TRANSGRESSION

ATICHARS OF *SAMYAKTVA* (RIGHT FAITH)

44. Later, Bhagavan Mahavir said—"Anand ! There are five primary *atichars* (a peculiarly Jain coinage that means partial transgressions unknowingly done or attempt to

transgress the vow) relating to Right Faith. A *Shramanopasak* (true disciple who understands the real concept of living and non-living beings, who does not dwindle in his faith, who is very keen to observe the limitations he has set for himself) must properly understand these transgressions but should not allow their entry in his conduct. The said five *atichars* (partial transgressions) are as under—(1) Doubt, (2) Worldly desires—desire of sense related pleasures, (3) Repulsion of sick or deformed, (4) Appreciating wrong believers, (5) Deeper contact with those following wrong faith."

विवेचन—इस सूत्र में आदर्श श्रमणोपासक की दो मुख्य विशेषताओं का सूचन किया है–अभिगय–वह जीव-अजीव आदि नवतत्त्वों का ज्ञाता हो, तथा अणइक्कमणिज्जे–किसी भी देव, दानव, मानव कृत भय–प्रलोभन के कारण धर्म से विचलित नहीं होता है।

अतिचार का अर्थ है–अनजान में लगा दोष। व्रत में किसी प्रकार की दुर्बलता या मलिनता आना। यदि जानबूझकर कोई दोष सेवन किया जाता है तो वह अनाचार कहलाता है।

(१) संका (शंका)–इसका अर्थ है सन्देह अर्थात् आत्मा, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप आदि जिन तत्त्वों का प्रतिपादन सर्वज्ञदेव ने किया है, उनके अस्तित्व में सन्देह होना। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है–क्या व्यक्ति को धार्मिक बातों के सम्बन्ध में ऊहापोह नहीं करना चाहिए? मन में सन्देह उत्पन्न होने पर उसे किसी विषय में ऊहापोह या जिज्ञासा करना चाहिए अथवा नहीं? इसका उत्तर यह है कि संशय निवारण के लिए ऊहापोह करने में और शंका में पर्याप्त भेद है। यदि मन में जिज्ञासा उत्पन्न होने पर विश्वास डाँवाडोल हो जाता है तो वह शंका है, विश्वास को दृढ़ रखते हुए प्रश्नोत्तर करना शंका नहीं है। उससे तो विश्वास में उत्तरोत्तर दृढ़ता आती है। भगवान महावीर के प्रधान शिष्य श्री गौतम स्वामी श्रद्धा की दृष्टि से सर्वोच्च माने गये हैं। किन्तु उनके लिए भी भगवतीसूत्र में बार-बार आया है कि मन में संशय उत्पन्न हुआ और निराकरण के लिए वे भगवान के पास गये। गौतम का संशय जिज्ञासारूप था, शंकारूप नहीं। उपनिषदों में भी मनन अर्थात् युक्तिपूर्वक विचार को आवश्यक माना गया है। किन्तु वह तर्क ऐसा नहीं होना चाहिए, जिससे मूल विश्वास को आघात पहुँचे। जहाँ तर्क और श्रद्धा में परस्पर विरोध हो, वहाँ श्रद्धा को कायम रखते हुए अपनी बुद्धि की मर्यादा को समझना चाहिए और यही मानना चाहिए कि बुद्धि अज्ञान या पूर्व के जमे हुए विश्वासों के कारण उस सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं कर रही है।

(२) कंखा (कांक्षा)–किसी प्रकार की बाह्य आडम्बर अथवा अन्य प्रलोभनों से आकृष्ट होकर किसी अन्य मत की ओर झुकाव होना।

(३) विइगिच्छा (विचिकित्सा)–धर्मानुष्ठान के फल में संदेह करना।

(४) परपासंडपसंसा (परपाषण्ड प्रशंसा)–वर्तमान में पाखण्ड शब्द का अर्थ है ढोंग अथवा मिथ्या आडम्बर और पाखण्डी का अर्थ है ढोंगी। किन्तु प्राचीन समय में यह शब्द निन्दावाचक नहीं था। उस समय इसका अर्थ था मत या सम्प्रदाय। यहाँ भी वही अर्थ है। परपासंड का अर्थ है–जैनधर्म को छोड़कर अन्य मतों के अनुयायी। उनकी प्रशंसा करने का अर्थ है–अपने विश्वास में कमी या अस्थिरता।

(५) परपासंडसंथवे (परपाषण्ड संस्तव)–संस्तव का अर्थ है परिचय या सम्पर्क।

Explanation—In this *Sutra,* two specialities of a true disciple *(Shramanopasak)* are described—**Abhigaya**—he is well-versed in nine basic elements, viz., living beings, non-living beings, etc. **Anaikkamanijje**—he does not dwindle from his faith due to any fear or attraction offered by angel, Satan or human being.

Atichar means wrongs committed unknowingly. Any shakiness or lethargy in following his vow. In case it is committed knowingly, it is called *Anachar* (breaking of the vow).

(1) Scepticism (Shanka)—It means doubt. In other words, it denotes the doubt in existence of things ascertained by the Lord as they are *(tattvas)* namely soul, hell, heaven, merits, demerits, etc. Here the question arises—Should a person not consider the religious concepts from different angles ? In case there is any doubt in the mind, should he not go deep to study it from different points of view to clear his doubts and to fully grasp its true meaning. Reply to this query is that there is a great difference in scepticism and deeper research to remove doubt. In case the thought activity about any concept makes the faith shaky, it is Scepticism *(Shanka)*. If questioning is done without an iota of weakness in faith, it is not Scepticism. It rather strengthens the faith. Gautam Swami the first disciple of Bhagavan Mahavir was considered one having extremely firm faith in Mahavir. Even about him it is mentioned in *Bhagavati Sutra* that whenever he

had even the slightest doubt about any utterance or the concept, he came to the Lord to remove his misgivings. Gautam's doubt was based on becoming more clear about the concept, it was not sceptical. In *Upanishads* also contemplation—understanding based on logic was considered necessary. But that logic should not be such that shakes the very faith. When there is controversy between logic and faith, one should understand the limitation of his knowledge keeping his faith firm in the Lord. He should understand that his mind is not able to grasp the subtle concept due to pervert knowledge or wrong beliefs of the earlier life-span.

(2) Kankha—Inclination towards wrong faith due to some worldly grandeur or attraction.

(3) Viigichha—Doubt in fruit of religious activities.

(4) Parpasand Pasansa—At present, the word *pakhand* is used to denote unreal or deceitful presentation and *Pakhandi* is one who has deceitful faith. But in good old days, this word did not have any disgusting meaning. It simply meant religion—*Sampradaya*, a particular religious approach. Here also it has the same meaning. *Parpasand* means the followers of faith other than Jainism. To appreciate them means lowering down one's faith or shakiness in one's faith.

(5) Parpasand Santhave—*Sanstava* means conduct or acquaintance.

अहिंसा व्रत के अतिचार

४५. तयाणंतरं च णं थूलगस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं, पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा—बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए।

४५. इसके बाद श्रमणोपासक को स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत के पाँच मुख्य अतिचार जानने चाहिए, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—(१) बन्ध—पशु आदि को निर्दयतापूर्वक कठोर बंधन से बाँधना। (२) वध—क्रोध, द्वेषवश

घातक प्रहार करना। (३) छविच्छेद–अंग काट देना या तोड़ देना। (४) अतिभार–सामर्थ्य से अधिक भार लादना या अति श्रम लेना। (५) भक्तपानव्यवच्छेद–अपने आश्रित प्राणियों के भोजन और पानी को रोकना या समय पर न देना।

ATICHAR (PARTIAL TRANSGRESSIONS) OF VOW OF *AHIMSA* (NON-VIOLENCE)

45. Thereafter a *Shramanopasak* (a lay disciple) must know five partial transgressions of his vow of *Sthool Pranatipat Viraman Vrat* (the vow of not committing gross violence to mobile living beings). But he should not taint his conduct with these transgressions. They are—**(1) Bandh**—angrily or carelessly tying an animal or human being. **(2) Vadh**—angrily or carelessly beating or hitting an animal or human being with sharp weapon. **(3) Chhavichhed**—mutilating a part of the body. **(4) Atibhar**—to compel an animal or human being to carry load disproportionate to his capacity or to take work from them more than the settled norm. **(5) Bhaktapanvyavachhed**—not to serve food or distribute wages in time or to stop serving food or wages to those engaged in work.

सत्य व्रत के अतिचार

४६. तयाणंतरं च णं थूलगस्स मुसावायवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा–सहसा अब्भक्खाणे, रहसा अब्भक्खाणे, सदार-मंत-भेए, मोसोवएसे, कूड-लेह-करणे।

४६. तत्पश्चात् स्थूल मृषावादविरमण व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) सहसाभ्याख्यान–किसी पर बिना विचारे मिथ्या आरोप लगाना। (२) रहोऽभ्याख्यान–किसी के रहस्य या गोपनीय बात को प्रकट करना। (३) स्वदारमन्त्रभे–पति या पत्नी के सम्बन्ध की गोपनीय बातें प्रकट करना। (४) मृषोपदेश–किसी को गलत सलाह देना या मिथ्या उपदेश देना। (५) कूटलेखकरण–खोटा या झूठा लेख लिखना अर्थात् दूसरे को धोखा देने के लिए जाली दस्तावेज बनाना।

अहिंसा व्रत के पाँच अतिचार   FIVE TRANSGRESSIONS OF THE VOW OF NON-VIOLENCE

चित्र परिचय २

Illustration No. 2
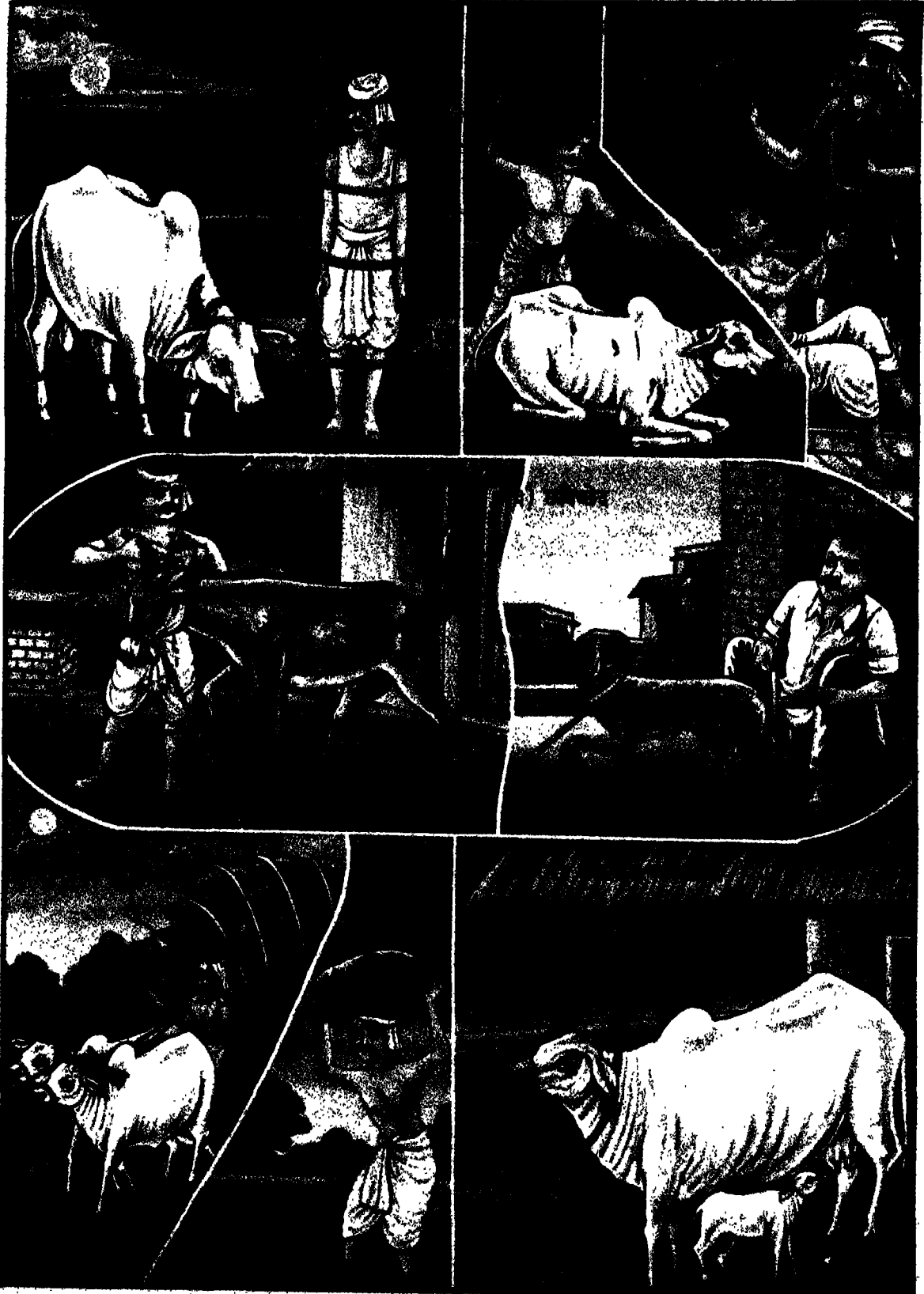
अहिंसा व्रत के पाँच अतिचार

श्रमणोपासक आनन्द ने अहिंसा अणुव्रत ग्रहण करके उसके पाँच अतिचारों का भी त्याग किया जो श्रावक के लिए आचरण योग्य नहीं हैं। पाँच अतिचार इस प्रकार हैं–

(१) **बन्ध**–पशु अथवा दास आदि को निर्दयतापूर्वक कठोर बंधनों से बाँधना।

(२) **वध**–पशुओं अथवा आश्रित मनुष्यों पर क्रूरतापूर्वक घातक प्रहार करना।

(३) **छविच्छेद**–क्रोध, क्रूरता, स्वार्थवश अथवा मनोरंजन के लिए पशु-पक्षियों का अंग-विच्छेदन करना। जैसे–गधों के कान आदि काटना; कुत्तों के कान, पूँछ आदि काटना।

(४) **अतिभार**–पशु, नौकर या मजदूर आदि पर निर्दयतापूर्वक, स्वार्थ के वशीभूत होकर उनकी शक्ति से ज्यादा भार लादना। जैसे–बैलों पर अधिक बोझा लादना, मजदूर पर बहुत भार लादना।

(५) **भक्त-पान-व्यवच्छेद**–अपने आश्रित मूक पशुओं व नौकर आदि के खान-पान में बाधा डालना। उन्हें भूखा-प्यासा रखना। जैसे–गाय, बैल, बछड़ों आदि के मुँह पर छींका लगा देना, नौकरों की वृत्ति काटना।

--उपासकदशा, अ. १, सूत्र ४५

FIVE TRANSGRESSIONS OF THE VOW OF NON-VIOLENCE

After accepting *Ahimsa Anuvrat, Shramanopasak* Anand also discarded its five transgressions that are not worthy of performance by a *Shravak*. These five transgressions are as under—

(1) To tie down—To tie down an animal, servant and the like mercilessly and tightly.

(2) To kill or to seriously hurt—To cause fatal wound to animals or dependent human beings in a cruel manner.

(3) To clip parts of the body—To cut down a part of the body of animals or birds in a fit of anger, cruelty, selfishness or just for assessments. To partly cut ears etc. of donkeys. To cut partially ear, tail of a dog.

(4) To overload—To carry load on an animal, servant or labourer disproportionate to their strength in a selfish and cruel manner.

(5) To delay serving of food or wages—To cause hinderance in provision of food to dependent animals, servants and the like. To keep them hungry or thirsty. To tie a covering on the mouth of cows, bullocks, calves and the like. To deduct wages of the employees.

—Upasak-dasha, Ch. 1, Sutra 45

PARTIAL TRANSGRESSION OF VOW OF SPEAKING THE TRUTH

46. Further, one should know but not adopt five partial transgressions of *Sthool Mrishavad Viraman Vrat*—the vow of not telling lie. They are as under—(1) **Sahasabhyakhyan**—to declare one guilty without studying all facts. (2) **Rahoabhyakhyan**—divulging the secret talk. (3) **Svadaramantrabhe**—divulging the secret talk between husband and wife. (4) **Mrishopadesh**—preaching false doctrines. (5) **Kootlekhkaran**—forgery, *i.e.,* to prepare false document in order to deceive others.

विवेचन—स्थूल मृषावाद के ये पाँच अतिचार हैं। इनके साथ ही मृषावाद सम्बन्धी प्रसंगों की चर्चा में बताया गया है कि निम्न प्रसंगों में असत्य भाषण करना सत्य व्रत का दोष माना गया है। जैसे—

(१) कन्यालीक—विवाह सम्बन्धों के प्रसंग में कन्या (या वर) वे विषय में उनके दोषों को छिपाना या गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बताना।

(२) गवालीक—पशुओं के लेन-देन में असत्य भाषण करना।

(३) भूम्यलीक—भूमि के सम्बन्ध में असत्य कथन करना।

(४) न्यासापहार—किसी की धरोहर को हड़प लेना या संस्थाओं के हिसाब में हेरा-फेरी करना।

(५) कूटसाक्षी—झूठी गवाही देना।

(६) संधिकरण—षड्यंत्र आदि रचना।

यह सभी कार्य सत्य व्रत के आराधक के लिए त्याज्य हैं।

Explanation—These are the five partial transgressions of *Sthool Mrishavad*. Simultaneously it is mentioned that in the context of incidents relating to falsehood that false statements in the following matters transgress the limitations of the vow of Truth. As—

(1) **Kanyaleek**—In matrimonial matters, concealing the demerits of the girl (or boy) or to amplify his or her merits disproportionately.

(2) Gavaleek—To make false statements about the quality of animals in their trading.

(3) Bhumyaleek—To make false statement about the quality of land (at the time of settling a deal).

(4) Nyasapahar—Unconscientious dealing by means of speech. To defraud one of his deposits, to make fraudulent entries in the accounts of institutions.

(5) Kootsakshi—To depose falsely as witness.

(6) Sandhikaran—To make a plan to deceive others.

All these are to be completely avoided by one who undertakes the vow of Truth.

अस्तेय व्रत के अतिचार

४७. तयाणंतरं च णं थूलगस्स अदिण्णादाणवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा–तेणाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्ध-रज्जाइक्कमे, कूडतुल्ल-कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे।

४७. तदनन्तर श्रमणोपासक को स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) **स्तेनाहृत**–चोर के द्वारा लाई हुई वस्तु को स्वीकार करना। (२) **तस्कर प्रयोग**–व्यवसाय के रूप में चोरों का उपयोग करना। (३) **विरुद्ध राज्यातिक्रम**–विरोधी राजाओं द्वारा निषिद्ध सीमा का उल्लंघन करना अर्थात् परस्पर विरोधी राज्यों ने जो सीमा निश्चित कर रखी है, उसे लाँघकर दूसरे की सीमा में प्रवेश करना। इसका "राजविरुद्ध कार्य करना" ऐसा अर्थ भी किया जाता है। (४) **कूटतुला-कूटमान**–तोलने-मापने में खोटा व्यवहार करना। (५) **तत्प्रतिरूपक व्यवहार**–संमिश्रण के द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से नकली वस्तु को असली के रूप में चलाना।

ATICHARS (PARTIAL TRANSGRESSIONS) OF THE VOW OF *ASTEYA* (NOT TO STEAL)

47. Thereafter, a *Shramanopasak* should clearly understand but not adopt five partial transgressions of *Sthool Adattadan Viraman Vrat* (the vow of not accepting any gross

article without the consent of its owner). They are as follows—(1) **Stenahrit**—receiving stolen property. (2) **Taskar Prayog**—abetment of theft. (3) **Viruddh Rajyatikram**—illegal traffic of goods to alien enemies, smuggling goods, it also means to do an act prohibited by the government. (4) **Kootatula-kootamaan**—use of false weights and measures in business. (5) **Tatpratiroopak Vyavahar**—adulteration, to pass on a lower quality thing as that of good quality.

विवेचन—अदत्तादान का अर्थ है बिना दी हुई वस्तु लेना। अन्य व्रतों के समान यहाँ भी श्रमणोपासक स्थूल अदत्तादान का त्याग करता है। शास्त्रों में स्थूल अदत्तादान के नीचे लिखे अनेक रूप बताए हैं–

(१) सेंध लगाकर चोरी करना। (२) बहुमूल्य वस्तु को बिना पूछे उठाना। (३) पथिकों को लूटना। गाँठ खोलकर या जेब काटकर किसी की वस्तु निकालना। इसी प्रकार ताला खोलकर या तोड़कर दूसरे की वस्तु लेना। डाके डालना। गाय, पशु, स्त्री आदि को चुराना। राजकीय कर की चोरी करना। व्यापार में बेईमानी करना आदि। सभी स्थूल चोरी के अन्तर्गत हैं।

Explanation—*Adattadan* means to take away a thing not offered by its owner. Like other vows, a *Shramanopasak* accepts this vow also. In scriptures, the following types of *Sthool Adattadan* are mentioned—

(1) Stealing by breaking in. (2) To take away a costly article without informing the owner. (3) To rob travellers. To pick-pocket. To steal by opening or breaking open locks. To rob in day light. To steal cow, cattle, women, etc. To avoid payment of taxes, custom duty. To use dishonest means in trade. All of them fall in the category of *Sthool* stealing.

स्वदार-सन्तोष व्रत के अतिचार

४८. तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा—इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अणंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे।

४८. तदनन्तर श्रमणोपासक को स्वदार-सन्तोष व्रत के पाँच अतिचार जानने चाहिए। उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) **इत्वरिक परिगृहीतागमन**–कुछ समय के लिए पत्नी के रूप में स्वीकार की हुई अथवा अल्पवयस्का स्त्री के साथ सहवास करना। (२) **अपरिगृहीतागमन**–अपरिगृहीता अर्थात् वेश्या, कन्या, विधवा आदि अविवाहिता स्त्री के साथ सहवास करना। (३) **अनङ्गक्रीड़ा**–अप्राकृतिक मैथुन। (४) **परविवाहकरण**–अपनी सन्तान एवं स्वाश्रित कुटुम्बियों के अतिरिक्त अन्य स्त्री-पुरुषों के विवाह सम्बन्ध कराना तथा दूसरों को व्यभिचार में प्रवृत्त करना। (५) **कामभोगतीव्राभिलाषा**–कामभोग या विषयतृष्णा की उत्कट अभिलाषा रखना।

ATICHAR (PARTIAL TRANSGRESSIONS) OF THE VOW OF MONOGAMY—REMAINING MATRIMONIALLY SATISFIED WITH HIS WIFE/HUSBAND

48. Further, a *Shramanopasak* (lay householder disciple) must know partial transgressions of the vow of remaining sexually satisfied with his wife/husband and not allow them in his conduct. They are—**(1) Itvarik Parigrihitagaman**—intercourse with a woman accepted as wife for a limited period or intercourse with one's own wife who is yet not ripe in age for such purpose. **(2) Aparigrihitagaman**—intercourse with a prostitute, a virgin, a widow, etc. **(3) Anangkreeda**—unnatural amorous dalliance with other women. **(4) Parvivahkaran**—to arrange marriage of people who are not of one's own family or of families dependent on him. **(5) Kaambhogteevrabhilasha**—excessive indulgence in sexual pleasures.

विवेचन–श्रावक का प्रथम अहिंसा व्रत मानवता से सम्बन्ध रखता है। दूसरा और तीसरा व्रत व्यवहार-शुद्धि से और चौथा सामाजिक सदाचार से सम्बन्धित है। यह व्रत दो प्रकार से अङ्गीकार किया जाता था–(१) स्वदार (स्व-पत्नी) सन्तोष के रूप में, तथा (२) परदार-विवर्जन के रूप में। स्वदार-सन्तोष के रूप में व्यक्ति अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त अन्य समस्त स्त्रियों का परित्याग करता है और परदार-विवर्जन के रूप में दूसरे की विवाहिता स्त्री के साथ सम्पर्क न करने का निश्चय करता है। आनन्द श्रावक ने प्रथम प्रकार को स्वीकार किया।

Explanation—The first vow of Ahimsa is related to humanistic behaviour. The second and third vows are for purification of daily

conduct. The fourth vow relates to socialistic behaviour. This vow is accepted in two forms—(1) To remain contented with one's wife (or husband), and (2) To avoid completely sex with others being contented with one's own wife, he detaches himself from such contact with the entire remaining women-folk. By detachment from others' women, he decides not to develop relation with the married women of others. Anand accepted this vow in the first form.

इच्छापरिमाण व्रत के अतिचार

४९. तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा—खेत्त-वत्थु पमाणाइक्कमे, हिरण्ण-सुवण्ण पमाणाइक्कमे, दुपय-चउप्पय पमाणाइक्कमे, धण-धन्न पमाणाइक्कमे, कुविय पमाणाइक्कमे।

४९. इसके बाद श्रमणोपासक को इच्छापरिमाण व्रत के पाँच अतिचार जानने चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) **क्षेत्र-वास्तु प्रमाणातिक्रम**–खेत और गृह सम्बन्धी भूमि की मर्यादा का उल्लंघन। (२) **हिरण्य-सुवर्ण प्रमाणातिक्रम**–सोना-चाँदी आदि मूल्यवान धातुओं की मर्यादा का उल्लंघन। (३) **द्विपद-चतुष्पद प्रमाणातिक्रम**–दास-दासी तथा पशु सम्बन्धी मर्यादा का उल्लंघन। (४) **धन-धान्य प्रमाणातिक्रमण**–मणि, मुक्ता एवं स्वर्ग आदि धन तथा गेहूँ, चावल आदि धान्य सम्बन्धी मर्यादा का उल्लंघन। (५) **कुप्य प्रमाणातिक्रम**–वस्त्र, पात्र, शय्या, आसन आदि गृहोपकरण सम्बन्धी मर्यादा का उल्लंघन।

PARTIAL TRANSGRESSIONS (*ATICHAR*) OF THE VOW OF LIMITING WORLDLY POSSESSIONS

49. Thereafter, a *Shramanopasak* must know five partial transgressions of the vow of limiting worldly possessions and not to allow himself to be subservient to them. They are—**(1) Kshetra-Vastu Pramanatikram**—transgressing the limits of fields, houses or land for residential house. **(2) Hiranya-Suvarna Pramanatikram**—partial transgression of costly metals

such as gold and silver. (3) **Dvipad-Chatushpad Pramanatikram**—transgressing the limits fixed for possession of servants, cattle and animals. (4) **Dhan-Dhanya Pramanatikram**—partial transgression of limit of jewellery, currency and grain. (5) **Kupya Pramanatikram**—partial transgression of limits of clothes, metallic utensils, beds and household articles.

दिक्व्रत के अतिचार

५०. तयाणंतरं च णं दिसिव्वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा—उड्ढदिसि पमाणाइक्कमे, अहोदिसि पमाणाइक्कमे, तिरियदिसि पमाणाइक्कमे, खेत्त-वुड्ढी, सइअंतरद्धा।

५०. इसके पश्चात् दिक्व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—(१) **ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रम**—ऊर्ध्व दिशा सम्बन्धी मर्यादा का उल्लंघन। (२) **अधोदिक् प्रमाणातिक्रम**—नीचे की दिशा सम्बन्धी मर्यादा का उल्लंघन। (३) **तिर्यक्दिक् प्रमाणातिक्रम**—तिरछी दिशाओं से सम्बन्ध रखने वाली मर्यादा का उल्लंघन। (४) **क्षेत्रवृद्धि**—व्यापार आदि प्रयोजन के लिए मर्यादित क्षेत्र से आगे बढ़ना। (५) **स्मृत्यन्तर्धान**—दिशा मर्यादा की स्मृति न रखना।

PARTIAL TRANSGRESSION OF THE VOW OF LIMITING MOVEMENTS (FOR BUSINESS) IN DIFFERENT DIRECTION

50. Further, the *Shravak* should know partial transgressions of the vow of *Disha Vrat*—the vow of limiting movements. They are as under—(1) **Urdhva Dik Pramanatikram**—going beyond the limit kept for going up, *i.e.*, going higher than the limit in the vow. (2) **Adho Dik Pramanatikram**—in passion or negligence to go down lower than one's limit in the vow. (3) **Tiryak Dik Pramanatikram**—in passion or negligence to go in other eight level directions beyond one's limit in the vow. (4) **Kshetra Vriddhi**—to increase in one direction and decrease in the other the boundaries of the distance which is

the limit in the vow. **(5) Smrityantardhan**—failure of memory regarding the limit in the vow.

विवेचन–आनन्द ने जब व्रत ग्रहण किये उस समय कहा–"मैं बारह प्रकार का श्रावक धर्म ग्रहण करता हूँ।" किन्तु व्रत ग्रहण के प्रसंग में पाँच अणुव्रत ग्रहण का ही उल्लेख है। वहाँ दिक्व्रत तथा शिक्षाव्रतों का उल्लेख क्यों नहीं है? इस प्रश्न के उत्तर में टीकाकार का स्पष्टीकरण है कि सामायिक आदि शिक्षाव्रत एक नियत काल के लिए ग्रहण किये जाते हैं, जबकि अणुव्रत यावज्जीवन के लिए। इस कारण वहाँ इनका उल्लेख नहीं हुआ होगा। उस समय दिक्व्रत भी ग्रहण नहीं किया होगा। किन्तु बारह व्रतों का उल्लेख होने से यह व्रत भी इसी में समझ लेना चाहिए।

स्मृत्यन्तर्धान में व्रत की मर्यादा विस्मृत होना या उसमें संशय होना दोनों सम्मिलित समझना चाहिए।

Explanation—When Anand took the vows, he said—"I accept the twelve vows." But in details of the vows there is mention of only five *Anu Vrats*. There is no mention of *Dik Vrats* and *Shiksha Vrats* (the disciplinary vows). The commentator has replied to this as under—The *Shiksha Vrats* namely *Samayik,* etc., are for a limited period, while *Anuvrats* are accepted for the entire life. So they *(Shiksha Vrats)* might not have been mentioned. At that time *Dik Vrats* might not have been specifically accepted. However, as the number of vows is clearly mentioned as Twelve, they should be considered as those including the *Shiksha Vrats* (supporting vows).

उपभोग-परिभोग व्रत के अतिचार (कर्मादान)

५१. तयाणंतरं च णं उवभोग-परिभोगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–भोयणओ य कम्मओ य, तत्थ णं भोयणओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा–सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया।

कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइं, तं जहा–(१) इंगालकम्मे, (२) वणकम्मे, (३) साडीकम्मे, (४) भाडीकम्मे,

(५) फोडीकम्मे, (६) दंतवाणिज्जे, (७) लक्खावाणिज्जे, (८) रसवाणिज्जे, (९) विसवाणिज्जे, (१०) केसवाणिज्जे, (११) जंतपीलणकम्मे, (१२) निल्लंछणकम्मे, (१३) दवग्गिदावणया, (१४) सर-हद-तलाय सोसणया, (१५) असईजण पोसणया।

५१. तदनन्तर उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत का कथन है। वह दो प्रकार का है–(१) भोजन की अपेक्षा, और (२) कर्म की अपेक्षा से। भोजन सम्बन्धी उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं–(१) **सचित्ताहार**–सचित्त अर्थात् मर्यादा से अतिरिक्त सजीव वस्तु खाना। (२) **सचित्त प्रतिबद्धाहार**–सजीव के साथ सटी या लगी हुई वस्तु खाना। (३) **अपक्वौषधिभक्षणता**–कच्ची वनस्पति अर्थात् कच्चे फल शाक आदि खाना। (४) **दुष्पक्वौषधिभक्षणता**–पूरी न पकी हुई वनस्पति खाना। (५) **तुच्छौषधिभक्षणता**–तुच्छ अर्थात् ऐसी वनस्पति या फल, जिसमें खाने का भाग कम हो, व्यर्थ फेंकने का भाग अधिक हो। ये पाँच अतिचार भोजन सम्बन्धी हैं। (वृत्तिकार ने रात्रि-भोजन को भी इसमें गिना है।)

कर्म सम्बन्धी उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के पन्द्रह कर्मादान श्रमणोपासक को जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) **अंगार कर्म**–कोयले बनाना तथा जिनमें कोयला जलाने का अधिक उपयोग करना पड़े, ऐसा व्यापार करना। (२) **वन कर्म**–वन काटने का व्यापार। (३) **शाकटिक कर्म**–गाड़ी बगैरह बनाने तथा बेचने का व्यापार। (४) **भाटी कर्म**–गाड़ी बगैरह भाड़े पर चलाने का व्यापार। (५) **स्फोटी कर्म**–जमीन खोदने तथा पत्थर आदि फोड़ने का व्यापार। (६) **दन्त वाणिज्य**–हाथी दाँत (या चर्म) आदि का व्यापार। (७) **लाक्षा वाणिज्य**–लाख बनाने का व्यापार। (८) **रस वाणिज्य**–मदिरा आदि मादक रसों का व्यापार। (९) **विष वाणिज्य**–विविध प्रकार के विषों का व्यापार। (१०) **केश वाणिज्य**–केशों का व्यापार। (११) **यन्त्रपीड़न कर्म**–घानी, कोल्हू आदि चलाने का व्यापार। (१२) **निर्लाञ्छन कर्म**–बैल आदि को बधिया करने का व्यापार। (१३) **दावाग्निदापन**–क्षेत्र साफ करने आदि के लिए जंगल में आग लगाने का व्यापार। (१४) **सरोहद-तड़ाग शोषण**–सरोवर, झील तथा तालाब आदि को सुखाने का व्यापार। (१५) **असतीजन पोषण**–वेश्यादि दुराचारिणी स्त्रियाँ, अपराधी तत्त्वों अथवा शिकारी कुत्ते, बिल्ली आदि हिंसक प्राणियों को रखकर व्यभिचार हिंसा अथवा शिकार आदि का व्यापार करना। (विस्तार के लिए आचार्य श्री आत्माराम जी म. कृत हिन्दी टीका, पृ. ६७-७२ देखें।)

चित्र परिचय ३

Illustration No. 3
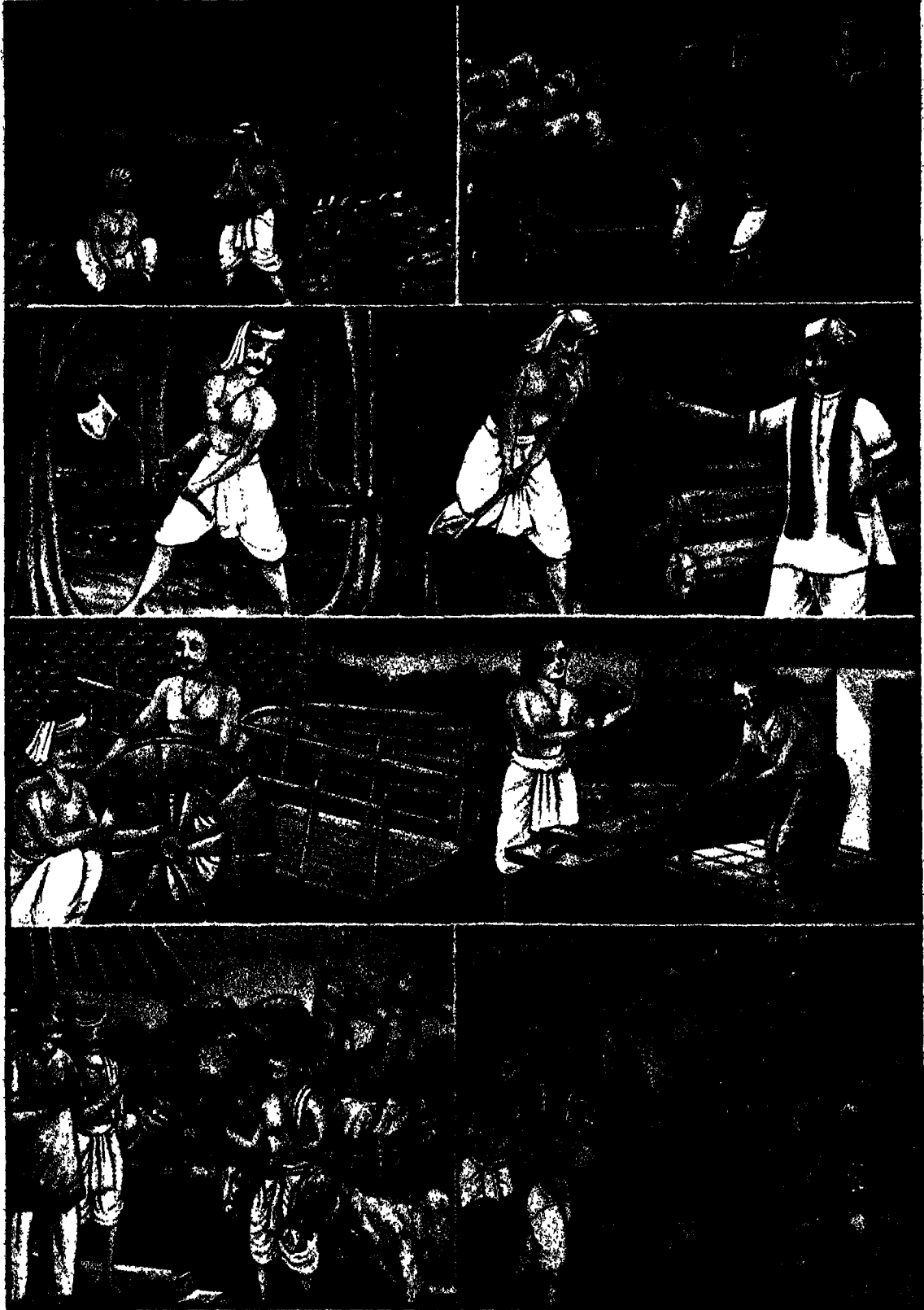
पन्द्रह कर्मादान (१)

सातवें उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के अन्तर्गत श्रमणोपासक आनन्द ने पन्द्रह कर्मादानों के सेवन का प्रत्याख्यान किया। पन्द्रह कर्मादान क्रमशः इस प्रकार हैं–

(१) **अंगार कर्म**–जिन कार्यों में अग्नि, ईंधन और कोयले का अधिक प्रयोग होता हो वे अंगार कर्म हैं। जैसे–ईंटों का भट्टा लगाना तथा सीमेंट का कारखाना आदि।

(२) **वन कर्म**–बड़े-बड़े वृक्ष कटवाना, जंगल साफ करने का ठेका लेना आदि।

(३) **शकट कर्म**–सवारी या माल ढोने के लिए अनेक प्रकार के वाहन बनाना, बेचना।

(४) **भाड़ी कर्म**–बैल, ऊँट, खच्चर आदि पशुओं को भाड़े पर देने का व्यापार करना।

(५) **स्फोटन कर्म**–पत्थर फोड़ना, खानें खोदना आदि व्यवसाय।

–उपासकदशा, अ. १, सूत्र ५१

FIFTEEN PROHIBITED TRADES (1)

Anand *Shramanopasak* discarded fifteen professional activities while accepting the seventh vow of limiting the articles of use (*Upbhog-Paribhog Pariman Vrat*). Those fifteen trades are as under—

(1) Angar karm—Such trades wherein fire, fuel or coal is mostly used is called *Angar karm.* To start a brick-kiln or cement factory fall in this category.

(2) Van karm—To get cut big trees. To obtain contract of clearing the forest.

(3) Shakat karm—To manufacture and sell different types of carts and carriages for carrying passengers or goods.

(4) Bharee karm—To under trade of giving bullocks, camels, mules and the like on hire.

(5) Sphotan karm—Profession of mining, stone quarry.

—Upasak-dasha, Ch. 1, Sutra 51

PARTIAL TRANSGRESSIONS OF VOW OF LIMITING ARTICLES OF USE

51. Thereafter, there is mention of *Upbhog-Paribhog Pariman Vrat*—the vow of limiting articles of direct consumption and repeated use. This vow is in respect of two matters—(1) Relating to food, (2) Relating to *Karma* (profession). There are five partial transgressions relating to food articles—**(1) Sachittahar**—to consume living things such as green vegetables beyond the fixed limits. **(2) Sachitta Pratibaddhahar**—to take adjuncts of a living thing, *e.g.,* using gum. **(3) Apakva-aushadhi Bhakshanata**—to take unboiled or raw vegetables and fruits. **(4) Dushpakva-aushadhi Bhakshanata**—to consume a parboiled vegetable. **(5) Tuchchha-aushadhi Bhakshanata**—to consume such vegetable or fruit wherein waste matter is more than the eatable. These are five transgressions relating to food. Taking meals after sunset is also included in it.

In *Upbhog-Paribhog Pariman Vrat,* there are fifteen transgressions relating to profession *(Karma)* known as fifteen *karmadan*. They should also be well understood and never followed in life. They are—**(1) Angar Karma**—to prepare charcoal or undertake such profession wherein charcoal is mainly used. **(2) Van Karma**—occupation involving cutting down forest—profession involving taking wood sleepers from forests. **(3) Shakatic Karma**—profession of preparing bullock-carts and their sale. **(4) Bhati Karma**—profession of renting out bullock-carts. **(5) Sphoti Karma**—mining and stone-blasting. **(6) Dant Vanijya**—profession of ivory and animal-skin business. **(7) Laksha Vanijya**—profession involving preparation of lac. **(8) Ras Vanijya**—business of wine and such like intoxicants. **(9) Vish Vanijya**—dealing in various types of poisons in trade. **(10) Kesh Vanijya**—dealing in hair (of animals or men and women). **(11) Yantra Peedan**

Karma—profession of preparing oil with bullock-driven machines and of preparing such machines. **(12) Nirlanchhan Karma**—to sterilise the bullocks, horses, etc. **(13) Davagnidapan**—profession of setting fire in forest for getting them cleaned. **(14) Sarohrad tadag Shoshan**—profession of drying up lakes, tanks. **(15) Asatijan Poshan**—bringing up women for immoral purpose and rearing hunting dogs and other such animals for professional hunting (for details refer to Tika by Acharya Shri Atmaram Ji. M., p. 67-72).

अनर्थदण्ड व्रत के अतिचार

५२. तयाणंतरं च णं अणट्ठदंडवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा–कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते।

५२. इसके बाद श्रमणोपासक को अनर्थदण्डविरमण व्रत के पाँच अतिचार जानने चाहिए, इनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) **कन्दर्प**–कामोत्तेजक बातें या चेष्टाएँ अथवा विचार करना। (२) **कौत्कुच्य**–भांडों की तरह विकृत चेष्टाएँ करना। (३) **मौखर्य**–झूठी शेखी बघारना अथवा बिना विवेक की व्यर्थ बातें करना। (४) **संयुक्ताधिकरण**–हथियार आदि अन्य हिंसक साधनों को एकत्रित करना। (५) **उपभोग-परिभोगातिरेक**–उपभोग-परिभोग की वस्तुओं का अनावश्यक संग्रह करना।

PARTIAL TRANSGRESSION (*ATICHAR*) OF PURPOSELESS ACTIVITIES (*ANARTH DAND*)

52. Further, a *Shramanopasak* must know and avoid five partial transgressions of *Anarth Dand Viraman Vrat*. They are—**(1) Kandarp**—sexual talk, amorous activities. **(2) Kautkuchya**—conducting oneself like a buffoon. **(3) Maukharya**—boasting or careless indecent talk. **(4) Sanyuktadhikaran**—to collect arms and weapons. **(5) Upbhog-Paribhogatirek**—to collect articles of direct consumption and repeated consumption much more than the actual requirement.

चित्र परिचय ४

Illustration No. 4

पन्द्रह कर्मादान (२)

(६) दंत वाणिज्य–हाथियों के दाँत आदि का व्यापार करना। दाँतों के लिए हाथियों की नृशंस हत्या होने के कारण यह क्रूर व्यापार है।

(७) लाक्षा वाणिज्य–लाख बनाने का व्यापार करना। इसके लिए असंख्य कृमियों की उत्पत्ति और विनाश किया जाता है।

(८) रस वाणिज्य–शराब की भट्टियाँ चलाना। मादक रस बनाना तथा उनका बेचना।

(९) विष वाणिज्य–साँप आदि जहरीले जीवों का विष निकालकर बेचना। हिंसक शस्त्रों का व्यापार भी इसी में सम्मिलित है।

(१०) केश वाणिज्य–इसका मुख्य अभिप्राय है चमरी गाय आदि के बाल प्राप्त करने के लिए उनकी हिंसा करके बालों का व्यवसाय करना। इन बालों से चँवर बनते हैं।

–उपासकदशा, अ. १, सूत्र ५१

FIFTEEN PROHIBITED TRADES (2)

(6) Trade of ivory—To deal in tusks of elephants. To obtain ivory and the tusk of the elephants, they are brutally killed. So this profession involves violence.

(7) Trade of shellac—To manufacture shellac innumerable creatures are produced and later killed to obtain it.

(8) Trade in intoxcicants—To run distillery for manufacturing wine. To manufacture intoxicating drinks and to deal in them.

(9) Trade of poisons—To collect venom of snakes and other poisonous animals and to sell it. Dealing in arms and ammunitions also falls in this category.

(10) Hair-trade—To kill wild cows in order to obtain their hair. They are used in preparing costly brooms and whisks.

—Upasak-dasha, Ch. 1, Sutra 51

तेल

चित्र परिचय ५

Illustration No. 5
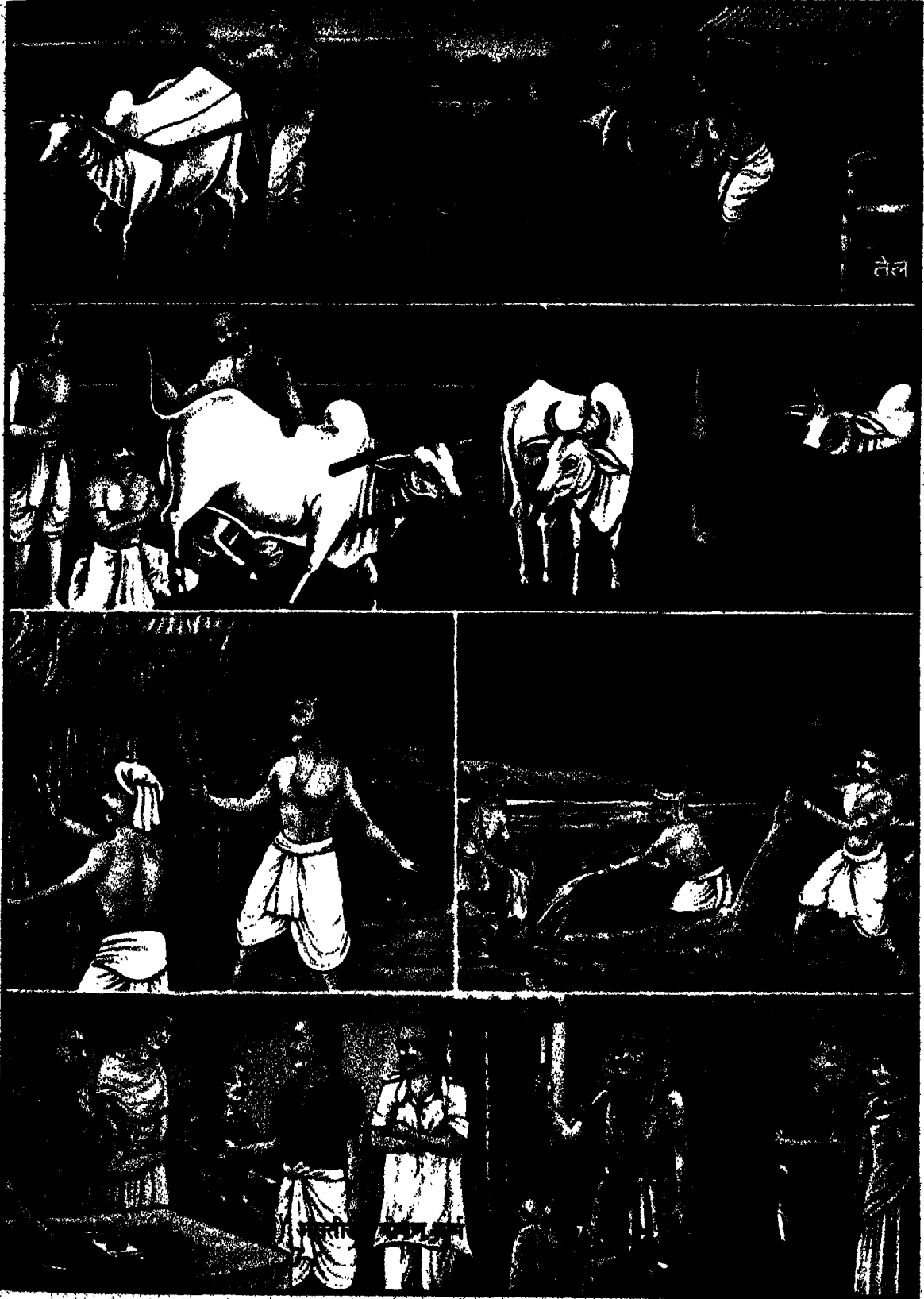
पन्द्रह कर्मादान (३)

(११) **यंत्रपीड़न कर्म**–तिल, सरसों आदि तिलहनों से घाणी द्वारा तेल निकालने का व्यवसाय।

(१२) **निर्लांछन कर्म**–बैल, भैंसा आदि पशुओं को नपुंसक बनाने का व्यवसाय।

(१३) **दावाग्निदापन**–वन में आग लगाने का धंधा करना। यह धंधा अत्यन्त क्रूर कर्म है।

(१४) **सर-ह्रद-तड़ाग शोषण**–सरोवर, झील आदि जल स्थानों को सुखाने का धंधा।

(१५) **असतीजन पोषण**–व्यभिचार के लिए वेश्या आदि का प्रेषण-पोषण करने का धंधा। हत्याएँ, अपहरण आदि करवाने के लिए, बदमाशों, हत्यारों आदि की सहायता करना। भाड़े पर रखना।

–उपासकदशा, अ. १, सूत्र ५२

FIFTEEN PROHIBITED TRADES (3)

(11) Setting up oil mill—The trade of extracting oil from sesame and mustard seeds and others through animal driven apparatus.

(12) To make impotent—Profession of making ox, he-buffalo and others impotent.

(13) Davagni-dapan—Trade of setting fire in the forest. This profession involves high degree of cruelty.

(14) Sar, hrad, tadag shoshan—Profession of drying up tanks, lakes, ponds and others.

(15) Supporting immoral trade—To support prostitutes for immoral traffic. To help bad characters in killings, abductions, etc. To engage such persons on wages.

—Upasak-dasha, Ch. 1, Sutra 52

सामायिक व्रत के अतिचार

५३. तयाणंतरं च णं सामाइयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा–मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइअकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्सकरणया।

५३. तत्पश्चात् श्रमणोपासक को सामायिक व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिए परन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं-(१) **मनोदुष्प्रणिधान**–मन से दुश्चिन्तन करना। (२) **वचोदुष्प्रणिधान**–वचन से कठोर कर्कश शब्द बोलना। (३) **कायदुष्प्रणिधान**–काया से हिंसाजन्य व्यवहार करना। (४) **सामायिक का विस्मृत होना** अथवा सामायिक की अवधि का ध्यान न रखना। (५) **अनवस्थित सामायिक करण**–अव्यवस्थित रीति से सामायिक करना।

PARTIAL TRANSGRESSIONS (*ATICHAR*) OF THE *SAMAYIK VRAT* (THE VOW OF PRACTICING EQUANIMITY)

53. Thereafter, a *Shramanopasak* should know five partial transgressions relating to *Samayik Vrat* and be cautious about them in practice of *Samayik* (equanimity). They are—(1) **Mano-dush-pranidhan**—ill thoughts. (2) **Vacho-dush-pranidhan**—to speak in harsh tone. (3) **Kaya-dush-pranidhan**—to do violent activities. (4) To forget the time-period of *Samayik* or not to remember when he should complete the *Samayik*. **(5) Anawasthit Samayik Karan**—to do *Samayik* in an indiscreet manner.

देशावकाशिक व्रत के अतिचार

५४. तयाणंतरं च णं देसावगासियस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा–आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापोग्गलपक्खेवे।

५४. इसके पश्चात् श्रमणोपासक को देशावकाशिक व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिए, परन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं-(१) **आनयन**

प्रयोग–मर्यादित क्षेत्र के बाहर से कोई वस्तु मँगाना। (२) प्रेष्य प्रयोग–मर्यादित क्षेत्र की सीमा के बाहर काम के लिए किसी व्यक्ति को भेजना। (३) शब्दानुपात–मर्यादित क्षेत्र से बाहर किसी प्रकार का शाब्दिक संकेत करके दूसरों से काम कराना। (४) रूपानुपात–मर्यादित क्षेत्र सीमा से बाहर हाथ, मुँह, आँख आदि के इशारे से काम कराना। (५) बहिःपुद्गलप्रक्षेप–मर्यादित क्षेत्र से बाहर कंकड़ आदि कोई वस्तु फेंककर इशारा करके काम करवाना।

PARTIAL TRANSGRESSIONS OF *DESHAVAKASHIK VRAT* (THE VOW OF FURTHER LIMITING THE MOVEMENTS IN DIFFERENT DIRECTION FOR TRADE)

54. Further, a *Shramanopasak* must know five partial transgressions of *Deshavakashik Vrat* and avoid. They are— **(1) Aanyan Prayog**—to ask for a thing from a place beyond the set limits. **(2) Preshya Prayog**—to send a person beyond the limits set in the vow. **(3) Shabdanupat**—to point out through speech directing one to perform some activity at a place beyond the limits fixed in the vow. **(4) Roopanupat**—to get the work done at a place beyond the limits by pointing out with hand, facial expression, etc. **(5) Bahiya Pudgal Prakshep**—to point out by throwing small brickbat or shingal that such a work be performed at a place which is beyond the limits adopted in the vow.

विवेचन—इस दशम व्रत का नाम देशावकाशिक व्रत है। इसका अर्थ है–अमुक निश्चित समय विशेष के लिए क्षेत्र की मर्यादा करना और इससे बाहर किसी प्रकार की सांसारिक प्रवृत्ति न करना। यह व्रत छठे दिक्व्रत का संक्षेप है, दिक्व्रत में दिशा सम्बन्धी मर्यादा यावज्जीवन या लम्बे समय के लिए की जाती है। देशावकाशिक व्रत में मर्यादा साधना के रूप में दिन-रात के लिए या न्यूनाधिक समय के लिए की जाती है। इस प्रकार हर रोज कुछ समय विशेष के लिए अन्य व्रतों की भी मर्यादा या साधना करना इसी व्रत में सम्मिलित है। इससे कुछ समय विशेष के लिए चित्त की चंचलता रोकने तथा व्रतों का अभ्यास करने की स्थिरता आती है। साधक समय-समय पर अपनी प्रवृत्तियों को मर्यादित करने का अभ्यास करता रहे इससे जीवन में अनुशासन तथा दृढ़ता आती है। समय विशेष के लिए की गई समस्त मर्यादाएँ इसके अन्तर्गत हैं।

Explanation—The title of the tenth vow is *Deshavakashik Vrat*. It means—to limit the place of activity for certain period and not to do any worldly activity beyond that place during the said period. This vow further reduces the limits of the sixth *Dik Vrat*. In *Dik Vrat* the limits are fixed for the entire life. In *Deshavakashik Vrat,* the limits are specified for twenty four hours or for certain specified period. The daily practice of reducing the life long limits in other vows for that particular day or for certain hours is also included in this vow. This practice inhibits the vibrant mind and brings steadfastness in practice of the vows. An aspirant should practice it frequently in order to limit his activities. This practice brings discipline and firmness in the life-style. The limits for specific period constitute this vow.

५५. तयाणंतरं च णं पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा-(१) अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासंथारे, (२) अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जासंथारे, (३) अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी, (४) अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी, (५) पसोहोवासस्स सम्मं अणणुपालणया।

५५. तदनन्तर श्रमणोपासक को पौषधोपवास के पाँच अतिचार जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे अतिचार इस प्रकार हैं-(१) **अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्यासंस्तारक**-बिना देखे-भाले अथवा अच्छी तरह देखे-भाले बिना शय्या का उपयोग करना। (२) **अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित शय्यासंस्तारक**-बिना पूँजे अथवा अच्छी तरह पूँजे बिना शय्यादि का उपयोग करना। (३) **अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चारप्रस्रवण भूमि**-बिना देखे अथवा अच्छी तरह देखे बिना शौच या लघु शंका के स्थानों का उपयोग करना। (४) **अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चारप्रस्रवण भूमि**-बिना पूँजे अथवा अच्छी तरह पूँजे बिना शौच एवं लघु शंका के स्थानों का उपयोग करना। (५) **पौषधोपवास का सम्यग् अननुपालन**-पौषधोपवास को विधिपूर्वक न करना।

55. Further, the *Shramanopasak* must know and avoid five partial transgressions of *Paushadhopvas*. They are—**(1) Apratilekhit-dushpratilekhit Shayya Sanstarak**—to prepare bedding without looking at it properly or looking

at it carelessly. **(2) Apramarjit-dushpramarjit Shayya Sanstarak**—to prepare bedding without clearing with the saintly broom or clearing with the broom in an improper hasty manner. **(3) Apratilekhit-dushpratilekhit Uchchar Prasravan Bhumi**—to use toilets without seeing them in advance or after seeing them in haste and in a careless manner. **(4) Apramarjit-dushpramarjit Uchchar Prasravan Bhumi**—to use toilets without clearing them in advance or after clearing them in advance in haste or in improper careless manner. **(5)** not to observe the vow in prescribed manner.

विवेचन—पौषध के दो अर्थ हैं-धर्म का पोषण करने वाली क्रिया अथवा उपाश्रय या धर्म स्थान, धार्मिक क्रिया करने के स्थान को पौषधशाला कहते हैं। उपवास का अर्थ है अशन, पान, खादिम तथा स्वादिम रूप चार प्रकार के आहार का त्याग करना। इस व्रत में उपवास के साथ सावद्य प्रवृत्तियों का भी त्याग किया जाता है और सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक दिन-रात आठ प्रहर के लिए घर से सम्बन्ध त्याग कर व्रतधारी अपने सोने, बैठने तथा शौच एवं लघु शंका आदि के लिए भी स्थान निश्चित कर लेता है। इस व्रत के अतिचारों में प्रथम चार का सम्बन्ध मर्यादित भूमि तथा शय्या-आसनादि की देखरेख से है। पौषध के समय में शारीरिक क्रियाओं में सावधानी, जिसे यतना कहते हैं बरतना चाहिए, ताकि प्रमाद या असावधानीवश किसी जीव की विराधना न हो।

इस व्रत में चार बातों का त्याग किया जाता है-

(१) अशन, पान आदि चारों आहारों का।

(२) शरीर का सत्कार-वेशभूषा, शृंगार, स्नानादि का।

(३) अब्रह्मचर्य का।

(४) समस्त सावद्य व्यापार का।

जैन परम्परा में द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी तथा चतुर्दशी को पर्व तिथियाँ हैं। उनमें भी अष्टमी और चतुर्दशी के दिन विशेष रूप से धर्माराधना की जाती है। पौषधोपवास व्रत भी प्रायः इन्हीं तिथियों में किया जाता है।

Explanation—*Paushadh* has two meanings—an activity that strengthens the practice of *dharma*; or *upashraya* or place of

worship. *Paushadhshala* is the place where religious activities are conducted. *Upavas* means avoiding four types of intakes, viz., foods, drinks, sweeteners. The activities involving violence are also discarded with this vow. The householder leaves his connection and his residence from sunrise for twenty four hours, *i.e.*, upto sunrise on the following day and firmly decides the place for his stay, sleep, toilet, etc. The first four partial transgressions of this vow relate to the selected place and bedding etc. the care to be observed in their context. During the time-period of this vow extreme care is to be observed in respect of physical activities. It is to be ensured that no living being is hurt due to carelessness or scanty care.

Four activities are avoided in this vow—

(1) Four types of intakes *(Ahar)*—foods, drinks, sweets, tasty articles.

(2) The adoration of the body by bathing, attractive dresses, decorative items.

(3) Sexual activities (non-celibacy).

(4) All activities involving violence to any of the six types of living beings.

In Jainism, the second, fifth, eighth, eleventh and fourteenth day of the fortnight are considered as important days. Special importance is given to the eighth and fourteenth day of the fortnight for observance of religious activities. Ordinarily, *Paushadhopvas* is observed on these days.

यथासंविभाग व्रत के अतिचार

५६. तयाणंतरं च णं अहासंविभागस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा। तं जहा–सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपेहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिया।

५६. तत्पश्चात् श्रमणोपासक को यथासंविभाग व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) सचित्त-

निक्षेपण–सुपात्र को दान न देने के विचार से भोजन सामग्री को सचित्त वस्तुओं में रख देना। (२) सचित्तपिधान–सचित्त वस्तुओं से ढक देना। (३) कालातिक्रम–समय बीतने पर त्यागियों को भिक्षादि के लिए आमन्त्रित करना। (४) परव्यपदेश–दान नहीं देने की नीयत से अपनी वस्तु को दूसरे की बताना। (५) मत्सरिता–ईर्ष्यापूर्वक या प्रतिस्पर्द्धावश दान देना।

THE PARTIAL TRANSGRESSIONS (*ATICHAR*) OF THE VOW OF SHARING WITH OTHERS (*YATHASAMVIBHAG*)

56. Thereafter, the *Shramanopasak* should know five partial transgressions of the vow of right distribution with others. They are as follows—**(1) Sachitta-nikshepan**—to keep the food in containers containing life with a view to avoid giving it to the deserving person in charity. **(2) Sachitta-pidhan**—to cover it with things containing living organism. **(3) Kalatikram**—neglecting the appointed time of *Bhiksha* (food-deliverance). **(4) Parvyapdesh**—to state that the present food belongs to someone else with the intention of avoiding it to be given to the mendicant. **(5) Matsarita**—to give in charity with a feeling of jealousy.

विवेचन—'यथासंविभाग व्रत' का दूसरा नाम 'अतिथिसंविभाग व्रत' भी है। संविभाग का अर्थ है–मुनि आदि चारित्र सम्पन्न योग्य पात्र के लिए अपने अधिकार के अन्न, पान, वस्त्र आदि में से यथा शक्ति विभाजन करना अर्थात् उसे देना यथासंविभाग या अतिथिसंविभाग व्रत है। इसके अतिचारों में मुख्य बात दान न देने की भावना है। इस भावना से प्रेरित होकर किसी प्रकार की टालमटोल करना इस व्रत का अतिचार है।

Explanation—The other name of the vow of right distribution is *Atithi Samvibhag*—to share with the guest. *Samvibhag* means—to divide (or share) the food, beverages, clothes, etc., in one's authority with a saint or monk of discreet conduct. In other words, to offer one's articles to others. The main factor in these partial transgressions is the feeling of not giving in charity. Under the influence of such a feeling, to avoid giving in any manner is a partial transgression *(Atichar)* of this vow.

५७. तयाणंतरं च णं अपच्छिम मारणांतिय संलेहणाझूसणा राहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा–(१) इहलोगासंसप्पओगे, (२) परलोगासंसप्पओगे, (३) जीवियासंसप्पओगे, (४) मरणासंसप्पओगे, (५) कामभोगासंसप्पओगे।

५७. इसके पश्चात् श्रमणोपासक को अपश्चिम-मारणांतिक-संलेखना-झोषणा आराधना के पाँच अतिचार जानने चाहिए, परन्तु उनका आचरण कभी न करें। वे इस प्रकार हैं–(१) इस लोक सम्बन्धी सुखों की कामना, (२) परलोक सम्बन्धी सुखों की कामना, (३) **जीविताशंसाप्रयोग**–प्रलोभन या भयवश जीवन की कामना, (४) **मरणाशंसाप्रयोग**–शारीरिक वेदना या प्रतिकूलता से डरकर मरने की कामना, (५) **भोगाशंसाप्रयोग**–इस लोक या परलोक सम्बन्धी कामभोगों की कामना।

जैनधर्म के अनुसार यह मानव जीवन आत्म-विकास का अमूल्य अवसर है। साधु हो या सद्गृहस्थ हो, जब तक शरीर द्वारा धर्मानुष्ठान होता रहे तब तक उसकी उचित सार सँभाल करता है। जब रोग अथवा अशक्ति के कारण शरीर धर्म क्रियाएँ करने में असमर्थ हो जाये, अथवा बुढ़ापा आदि के कारण मन में दुर्बलता आने लगे, शरीर की अक्षमता बढ़ने लगे तो उस समय यही उचित है कि शान्ति एवं दृढ़ता के साथ शरीर के संरक्षण की चिंता छोड़ दी जाए। इसके लिए साधक भोजन का त्याग कर देता है और पवित्र स्थान में जाकर आत्म-चिन्तन करता हुआ शान्तिपूर्वक आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर होता है।

इस व्रत को 'संलेखना' कहा जाता है। जिसका अर्थ है कषायों को तथा शरीर को तप आदि द्वारा क्षीण करते हुए सांसारिक व्यापारों को समेटना। सूत्र में इसके दो विशेषण हैं–**'अपश्चिमा'** और **'मारणान्तिकी'**। 'अपश्चिमा' का अर्थ है–अन्तिम अर्थात् जिसके पीछे जीवन का कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। 'मारणान्तिकी' का अर्थ है–मृत्युपर्यन्त चलने वाली साधना। इस व्रत में ऐहिक तथा पारलौकिक समस्त कामनाओं का परित्याग कर दिया जाता है, इतना ही नहीं, जीवन-मृत्यु की आकांक्षा भी छोड़ दी जाती है। इस अवस्था में साधक शान्तचित्त होकर केवल आत्म-चिन्तन में लीन रहता है।

संलेखना में जीने और मरने की आकांक्षा भी नहीं रहती। चित्त शान्ति और तटस्थवृत्ति संलेखना का प्राण तत्त्व है, इसमें किसी प्रकार का आवेग या उन्माद नहीं रहता। इस प्रकार की आत्म-आलोचना और आत्म-शुद्धिपूर्वक मृत्यु को जैनदर्शन में 'पण्डितमरण' कहते हैं।

THE PARTIAL TRANSGRESSIONS (*ATICHAR*) OF THE VOW OF *SAMLEKHANA*

57. Later, a *Shramanopasak* must know but not adopt five partial transgressions of the vow of *Apashchim-maranantik-Samlekhana-Jhosana* (the vow undertaken when the person is almost near his death and in order to cleanse his soul of all the wrong activities committed in the past by recalling them distinctly, repenting for them). They are as under—**(1)** to desire comforts concerning the present life. **(2)** to desire comforts in the next life. **(3) Jeevitashansha Prayog**—to desire further life out of attraction or fear. **(4) Maranashansa Prayog**—to desire end of his life due to physical pain or fear of unaccommodating environment. **(5) Bhogashansa Prayog**—to desire worldly comforts including sexual fulfilment relating to the present or the next world.

According to Jainism, the human life is a unique opportunity for self-uplift. Whether one is a monk or a true householder, he takes due care of his body only upto the time he is able to perform religious activities properly. When due to illness or weakness, the body becomes unable to perform religious activities, or the mind becomes weak due to old age and the capacity of the body starts decreasing fast, it is proper for him to cooly and firmly avoid care for the body. He then stops taking food, selects a proper clean place and moves ahead on the path of self-realisation calmly meditating on it in a steadfast manner.

This vow is known as *Samlekhana*. In other words, it means curtailing worldly activities by weakening the passions and the physical body through austerities *(tap)*. There are two adjectives in this *Sutra—'Apashchima'* and *'Maranantiki'*. *'Apashchima'* means last, *i.e.,* after which there is no other worldly activity to be performed. *'Maranantiki'* means the activity to be performed till the last breath. In this vow all the desires relating to the present world and the next world are discarded. Not only this—even the desire of living and the desire of death has also to be avoided. In this state one goes deep in meditation about 'self' with a tranquil mind.

In *Samlekhana,* there is no desire of living or dying. Peaceful mind and impartial behaviour are the basic elements of *Samlekhana*. There is no zeal or passion in this state. In Jain Philosophy, the self-repentance and peaceful death in such a pure state is known as *'Pandit Maran'*.

आनन्द द्वारा सम्यक्त्व-ग्रहण

५८. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–"नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि चेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेण आलवित्तए वा संलवित्तए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं, गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं, देवयाभिओगेणं, गुरुनिग्गहेणं, वित्तिकंतारेणं।"

कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुञ्छणेणं, पीठ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए–

संलेखना में जीने और मरने की आकांक्षा भी नहीं रहती। चित्त शान्ति और तटस्थवृत्ति संलेखना का प्राण तत्त्व है, इसमें किसी प्रकार का आवेग या उन्माद नहीं रहता। इस प्रकार की आत्म-आलोचना और आत्म-शुद्धिपूर्वक मृत्यु को जैनदर्शन में 'पण्डितमरण' कहते हैं।

THE PARTIAL TRANSGRESSIONS (*ATICHAR*) OF THE VOW OF *SAMLEKHANA*

57. Later, a *Shramanopasak* must know but not adopt five partial transgressions of the vow of *Apashchim-maranantik-Samlekhana-Jhosana* (the vow undertaken when the person is almost near his death and in order to cleanse his soul of all the wrong activities committed in the past by recalling them distinctly, repenting for them). They are as under—**(1)** to desire comforts concerning the present life. **(2)** to desire comforts in the next life. **(3) Jeevitashansha Prayog**—to desire further life out of attraction or fear. **(4) Maranashansa Prayog**—to desire end of his life due to physical pain or fear of unaccommodating environment. **(5) Bhogashansa Prayog**—to desire worldly comforts including sexual fulfilment relating to the present or the next world.

According to Jainism, the human life is a unique opportunity for self-uplift. Whether one is a monk or a true householder, he takes due care of his body only upto the time he is able to perform religious activities properly. When due to illness or weakness, the body becomes unable to perform religious activities, or the mind becomes weak due to old age and the capacity of the body starts decreasing fast, it is proper for him to cooly and firmly avoid care for the body. He then stops taking food, selects a proper clean place and moves ahead on the path of self-realisation calmly meditating on it in a steadfast manner.

This vow is known as *Samlekhana*. In other words, it means curtailing worldly activities by weakening the passions and the physical body through austerities *(tap)*. There are two adjectives in this *Sutra—'Apashchima'* and *'Maranantiki'*. *'Apashchima'* means last, *i.e.,* after which there is no other worldly activity to be performed. *'Maranantiki'* means the activity to be performed till the last breath. In this vow all the desires relating to the present world and the next world are discarded. Not only this—even the desire of living and the desire of death has also to be avoided. In this state one goes deep in meditation about 'self' with a tranquil mind.

In *Samlekhana,* there is no desire of living or dying. Peaceful mind and impartial behaviour are the basic elements of *Samlekhana*. There is no zeal or passion in this state. In Jain Philosophy, the self-repentance and peaceful death in such a pure state is known as *'Pandit Maran'*.

आनन्द द्वारा सम्यक्त्व-ग्रहण

५८. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–"नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि चेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेण आलवित्तए वा संलवित्तए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं, गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं, देवयाभिओगेणं, गुरुनिग्गहेणं, वित्तिकंतारेणं।"

कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुञ्छणेणं, पीठ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए–

–त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठाइं आदियइ, आदिइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ, वंदित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दुइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव वाणियग्गामे नयरे, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिवनंदा भारियं एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिए ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते से वि य धम्मे मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।"

५८. इस प्रकार आनन्द गाथापति ने श्रमण भगवान महावीर के पास पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार किया। भगवान को वन्दना नमस्कार करके वह बोला–"भगवन् ! आज से मुझे निर्ग्रन्थ संघ से इतर संघ वालों के अन्ययूथिक देवों को, अन्ययूथिकों द्वारा परिगृहीत चैत्यों को वन्दना नमस्कार करना नहीं कल्पता है तथा उनके बिना बुलाए अपनी ओर से बोलना, उनको धर्मबुद्धि से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य देना तथा उनके लिए इसका आग्रह करना नहीं कल्पता है। परन्तु राजा के अभियोग बलात् आग्रह से, गण संघ के आग्रह से, बलवान के आग्रह से, देवता के तथा गुरुजन माता-पिता आदि के आग्रह के कारण तथा वृत्तिकान्तार–आजीविका के लिए संकट उपस्थित होने पर यदि कभी ऐसा करना पड़े, तो आगार है।"

निर्ग्रन्थ श्रमणों को प्रासुक-एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध, भैषज्य देकर उनका सत्कार करते हुए विचरण करना कल्पता है। मेरा यह आचार है।

उक्त रीति से आनन्द ने अभिग्रह धारण किया। फिर भगवान से प्रश्न पूछे, उनका समाधान प्राप्त किया। समाधान प्राप्त करके भगवान के पास से उठकर दूतिपलाश चैत्य से बाहर निकला और वाणिज्यग्राम में स्थित अपने घर पहुँचा। वहाँ आकर अपनी धर्मपत्नी शिवानन्दा से इस प्रकार बोला–"देवानुप्रिये ! आज मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना है। वह मुझे अतीव इष्ट एवं रुचिकर लगा। देवानुप्रिये ! तुम

भी जाओ, उनकी वन्दना करो, यावत् पर्युपासना करो और श्रमण भगवान महावीर से पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहस्थ का धर्म स्वीकार करो।"

ACCEPTANCE OF *SAMYAKTVA* (RIGHT FAITH) BY ANAND

58. Thus, Anand *Gathapati* accepted five partial vows *(Anu Vrat)* and seven supporting vows *(Shiksha Vrat)*—the twelve vows of a *Shravak* from Bhagavan Mahavir. He greeted the Lord respectfully and said—"Bhagavan ! From today onwards, it shall not be within my field of reverence to worship the gods of other faiths, the temples and the idols of other religions. It shall also be not my duty to invite members of other faith for food, drinks, sweets, etc., and repeatedly requesting them to accept such articles or a religious act. But in case I have to perform such an act under orders of the king or by the commands of the priesthood, or by the command of any powerful man, or by the command of my elders, or by the exigencies of living, it shall not be transgression of my vow."

It shall be permissible for me to offer proper food, drink, sweets, tasty articles, clothes, pots, blankets, foot-pad, bed, bedding, medicines respectfully to *Nirgranth* members for their use. Such shall be my conduct."

Anand adopted the restraints in this manner. He then sought certain clarification from Bhagavan and after satisfactory explanation from Bhagavan Mahavir, he came out from *Dootipalash* temple and went to his house in Vanijyagram. Then he said to his wife Shivananda—"O beloved of the angels ! Today I listened to the religious discourse of Bhagavan Mahavir. I liked it very much. O dear ! You also go there, greet the Lord and accept final partial vows and such supporting vows—in all the twelve vows of a householder from Bhagavan Mahavir."

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में तीन बातें कही गई हैं-(१) आनन्द द्वारा व्रत ग्रहण का उपसंहार। (२) सम्यक्त्व का ग्रहण। (३) घर आकर पत्नी को व्रत ग्रहण करने की प्रेरणा।

श्रावक के बारह व्रतों में प्रथम पाँच अणुव्रत, फिर सात शिक्षाव्रत हैं। शिक्षाव्रतों में ६, ७, ८ तीन को गुणव्रत तथा शेष चार को शिक्षाव्रत कहा है। गुणव्रत का अर्थ है-पाँच मूल व्रतों के गुणों की वृद्धि करने में सहायक। शिक्षाव्रत एक प्रकार का त्याग, दान आदि का अभ्यास क्रम है इसलिए उन्हें शिक्षाव्रत कहा है। सम्यक्त्व व्रत के ग्रहण में चैत्य शब्द तथा अन्ययूथिक शब्द पर व्याख्या करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने बताया है-चैत्य शब्द यहाँ भगवान के ज्ञान या जैन साधु का वाचक है न कि जिन मन्दिर या प्रतिमा का। अन्ययूथिक शब्द जैनदर्शन के सिवाय अन्य दर्शन व उनके आचार में आस्था रखने वाले, जैन श्रमणों से भिन्न वेश-भूषा वाले साधुओं का सूचक है। उनको धर्मबुद्धि या गुरुबुद्धि से दान देना, वन्दना करना, उनके साथ परिचय व सम्पर्क रखना, सम्यक्त्व को दूषित कर सकता है। किन्तु लोकाचार व शिष्टाचारवश सद्व्यवहार रखना तो प्रत्येक सामाजिक का कर्त्तव्य है। आनन्द ने अपनी पत्नी को धर्म ग्रहण करने के लिए प्रेरणा दी है, किन्तु उसे आदेश नहीं दिया। यह उसकी धार्मिक उदारता का परिचायक है।

Explanation—In the present *Sutra*, three things are mentioned—(1) final touch to the acceptance of vows by Anand, (2) acceptance of *Samyaktva*—right faith, (3) to encourage the wife to accept the vows of a householder.

Out of twelve vows of a householder, the first five are *Anu Vrat* (partial vows) and seven are supporting vows *(Shiksha Vrat)*. The sixth, seventh and eighth vows are called *Gun Vrat* and remaining four as *Shiksha Vrat* (supporting vows). *Gun Vrat* means those vows that help in increasing the quality of the basic partial vows *(Anu Vrat)*. *Shiksha Vrat* is the practice of giving charity, avoidance of comforts, etc. So they are supporting vows. While commenting on the words *Chaitya* and *Anya-yoothik* in the vows of right faith *(Samyaktva)*, Acharya Shri Atmaram Ji has said—"The word *Chaitya* here denotes the perfect knowledge of the Lord or the Jain Sadhu. It does not denote the Jain temple or the Jain idol. *Anya-yoothik* means the monks other than Jain

monks who have faith in a philosophy other than Jainism and their conduct, dress, etc., to offer charity to such monks as *guru* (the teacher) can spoil the right faith. But it is the duty of every society to observe proper behaviour pleasing to the society and to participate in said activities." Anand encouraged his wife to accept the religious code of conduct. But did not issue a specific order. It indicates his religious broad-mindedness.

५९. तए णं सा सिवनंदा भारिया आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ तुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–"खिप्पामेव लहुकरण" जाव पज्जुवासइ।

५९. आनन्द गाथापति के वचन सुनकर, शिवानन्दा अतीव हर्षित हुई, प्रसन्न हुई, (दर्शनों के लिए तैयार हुई) कौटुम्बिक पुरुषों को बोली–"तुम शीघ्र ही लघुकरण रथ अर्थात् जिसमें शीघ्र चलने वाले बैल जुते हुए हों ऐसा धार्मिक कार्यों में काम आने वाला रथ तैयार करके लाओ, मुझे भगवान महावीर के दर्शनार्थ जाना है।" इस प्रकार वह भगवान के पास पहुँची और वन्दना करके उनकी पर्युपासना करने लगी।

59. After listening to the words of her husband Anand *Gathapati,* Shivananda was overjoyed, prepared herself for having *darshan* of the Lord and asked her family servant—"You prepare early the chariot drawn by fast moving bullocks and inform me as I have to go to Bhagavan Mahavir there." She reached there, greeted the Lord and respectfully worshipped him.

६०. तए णं समणे भगवं महावीरे सिवनंदाए तीसे य महइ जाव धम्मं कहेइ।

६०. तब भगवान महावीर ने शिवानंदा तथा उपस्थित उस विशाल सभा को धर्म का उपदेश दिया।

60. Then Bhagavan Mahavir gave a religious discourse to Shivananda and the large gathering present there.

६१. तए णं सा सिवनंदा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

६१. तब शिवानन्दा ने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना तथा उसे हृदय में धारण करके अतीव प्रसन्न हुई। उसने भी यथाविधि गृहस्थ धर्म ग्रहण किया और उसी धार्मिक रथ पर सवार होकर जिस ओर से आई थी उसी ओर लौट गई।

61. Shivananda listened to the discourse, accepted its contents and felt extremely pleased. She also accepted the vows of the householder and then returned in the same chariot.

गौतम स्वामी का आनन्द के विषय में प्रश्न

६२. "भंते !" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीर वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–"पहूणं भंते ! आणंदे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए ?"

"नो तिणट्ठे समट्ठे।"

गोयमा ! आणंदेणं समणोवासए बहूइं वासाइं समणोवासगपरियायं पाउणिहिइ, पाउणित्ता जाव सोहम्मेकप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिइ। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थणं आणंदस्स वि समणोवासगस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

६२. तब गणधर गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार किया और पूछा–"भन्ते ! क्या आनन्द श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित एवं प्रव्रजित होने में समर्थ हैं ?"

भगवान ने उत्तर दिया–"गौतम ! ऐसा सम्भव नहीं है। आनन्द श्रमणोपासक अनेक वर्षों तक श्रावक धर्म का पालन करेगा और अन्त में आयुष्य पूर्ण कर सौधर्मकल्प देवलोक के अरुणाभ विमान में उत्पन्न होगा। वहाँ बहुत से देवताओं की चार पल्योपम की आयु स्थिति होती है। आनन्द की आयु भी चार पल्योपम होगी।"

[विशेष–देवलोकों का विस्तृत वर्णन प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय पद तथा भगवतीसूत्र आदि से जानना चाहिए।

पल्योपम काल के अति दीर्घकालिक परिमाण विशेष का द्योतक है। अनुयोगद्वारसूत्र, सूत्र ३६९ से इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।]

QUERY OF GAUTAM SWAMI ABOUT ANAND

62. Then Ganadhar Gautam greeted Bhagavan Mahavir and said—"Bhante ! Is Anand in a position to get his head clean-shaved and adopting monkhood at your feet ?"

Mahavir replied—"Gautam ! It is not possible. Anand shall follow the religious conduct of a householder for many years. After completing his life-span, he shall be re-born in Arunabh abode of Saudharma Devalok. There the life-span of the gods is four *palyopam*. Anand shall also have that much life-span."

[The details about various *devaloks* can be seen in the second passage of *Prajnapana Sutra* and in *Bhagavati Sutra*.

Palyopam denotes a period of innumerable years. Its detailed description can be seen in *Anuyog dvar Sutra, 369*.]

भगवान महावीर का प्रस्थान

६३. तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ बहिया जाव विहरइ।

६३. तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी अन्य जनपदों में विहार कर गये और धर्मोपदेश देते हुए विचरने लगे।

DEPARTURE OF BHAGAVAN MAHAVIR

63. After some time, Bhagavan Mahavir left for other areas and wandered delivering religious discourses to the people.

६४. तए णं से आणंदे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

६४. तब आनन्द जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक बन गया और साधु-साध्वियों को प्रासुक आहार आदि का दान देते हुए धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगा।

64. Now Anand had become well-educated about nine elements including living beings and non-living beings. He led a religious life giving permissible food etc. to monks and nuns strictly according to rules.

६५. तए णं सा सिवनन्दा भारिया समणोवासिया जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ।

६५. तदनन्तर शिवानन्दा भार्या भी श्रमणोपासिका बन गई और साधु-साध्वियों को शुद्ध, अन्न, जल आदि बहराती हुई धार्मिक जीवन बिताने लगी।

65. Shivananda, his wife, had also become a *Shramanopasika* (a true householder disciple) and started leading a religious life offering pure food, water and other articles to monks strictly according to their code of conduct.

आनन्द द्वारा धर्माराधना का संकल्प

६६. तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सीलव्वय गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दससंवच्छराइं वइक्कंताइं। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरावट्टमाणस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-'एवं खलु अहं वाणियगामे नयरे बहूणं राईसर जाव सयस्सवि य णं कुडुंबस्स जाव आधारे, तं एएणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं कल्लं जाव जलंते विउलं असणं ४, जहा पूरणो, जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता तं मित्त जाव जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता, कोल्लाए सन्निवेसे

नायकुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तिए।'

एवं संपेहइ, संपेहित्ता कल्लं विउलं तहेव जिमिय भुत्तुत्तरागए तं मित्त जाव विउलेणं पुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकारेण सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं सद्दावेइ, सद्दावेइत्ता एवं वयासी-"एवं खलु पुत्ता ! अहं वाणियगामे बहूणं राईसर जहा चिंतियं जाव विहरित्तए। तं सेयं खलु मम इदाणिं तुमं सयस्स कुडुंबस्स आलंबणं ठवेत्ता जाव विहरित्तए।"

६६. तदनन्तर आनन्द श्रावक को अनेक प्रकार से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास आदि के द्वारा अपनी अन्तरात्मा को संस्कारित-परिष्कारित करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। पन्द्रहवें वर्ष के मध्य एक दिन पूर्व रात्रि के अपर भाग में, आधी रात के बाद धर्म जागरणा करते हुए उसके मन में ऐसा चिन्तन एवं संकल्प उठा कि 'मैं वाणिज्यग्राम नगर में अनेक राजा-ईश्वर एवं स्वजनों का आधार तथा आलम्बनभूत हूँ। वे अनेकानेक कार्यों में मेरी सलाह लेते हैं। इस विक्षेपकारी कार्य बहुलता के कारण मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास अङ्गीकृत धर्म-शिक्षा का पूर्ण रूप से पालन नहीं कर पा रहा हूँ। अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर विपुल अशन-पानादि तैयार कराकर मित्र एवं परिवारादि को भोजन कराकर पूरण सेठ के समान (वर्णन-भगवतीसूत्र) उन सबके समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर मित्रों एवं ज्येष्ठ पुत्र की अनुमति लेकर कोल्लाक सन्निवेश में ज्ञातकुल की पौषधशाला का प्रतिलेखन कर श्रमण भगवान महावीर के पास स्वीकृत धर्मप्रज्ञप्ति का यथाविधि पालन करूँ।'

आनन्द ने इस प्रकार विचार कर दूसरे दिन मित्रवर्ग तथा परिवार को आमन्त्रित किया और पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और विपुल अशन-पान आदि के द्वारा उनका सत्कार-सम्मान किया। तत्पश्चात् उन सबके सामने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया, बुलाकर कहा-"पुत्र ! मैं वाणिज्यग्राम नगर में राजा, ईश्वर, आत्मीयजनादि का आधारभूत हूँ, मेढ़ीभूत हूँ, आलम्बन रूप हूँ। अनेकानेक कार्यों में सलाह आदि देता हूँ। अतः व्यस्तता के कारण मैं भगवान महावीर द्वारा कथित धर्मप्रज्ञप्ति का सम्यक् रूप में पालन नहीं कर सकता। अतः मेरे लिए यह उचित है कि मैं अब तुमको कुटुम्ब के पालन-पोषणादि का भार सौंपकर एकान्त में जाकर धर्मानुष्ठान करूँ।"

DETERMINATION OF ANAND ABOUT RELIGIOUS PRACTICES

66. Anand spent fourteen years following the partial vows (*Anu Vrat*), vows increasing quality of the partial vows (*Gun Vrat*), the supporting vows (*Shiksha Vrat*) and observing restraints including *Paushadhopvas*. During the fifteenth year, in the fag end of the night, while meditating as prescribed in religion, he thought—'I am the most sought after consultant to many kings, leaders, elite of the society. They take my advice in several matters of importance. In view of the time spent in such activities, I am unable to meticulously follow the supporting vows (*Shiksha Vrat*) accepted by me at the feet of Bhagavan Mahavir. So it is proper for me to bestow all my responsibilities upon my eldest son in the presence of my family members, social circle and friends after offering them a grand feast like Puran, the wealthy (described in *Bhagavati Sutra*). Thereafter, with the consent of my eldest son and friends, I should properly clean the *Paushadshala* (the place of religious worship in Kollak country belonging to Jnat clan and strictly observe the accepted religious code of conduct.'

After clearly meditating on this thought, Anand invited all the members of his family and the friends the following day. He welcomed them with flowers, clothes, incense, garlands, food and beverages. Thereafter, he called his eldest son in their presence and said—"Son ! I am honoured in Vanijyagram town by the king, the elite and the social circle. I am consulted by them. As such, due to such time-consuming activities, I cannot properly follow the code of conduct accepted by me before Bhagavan Mahavir. Therefore, it is proper for me to hand over to it you the social responsibilities and follow the religious code in solitude."

६७. तए णं जेट्ठे पुत्ते आणंदस्स समणोवासयस्स 'तह' ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

६७. तब ज्येष्ठ पुत्र ने आनन्द श्रमणोपासक के उक्त कथन को 'तथास्तु' 'जैसी आपकी आज्ञा' कहते हुए विनय के साथ स्वीकार किया।

67. The eldest son accepted the suggestion of his father respectfully saying—"As it pleases your goodself."

६८. तए णं से आणंदे, समणोवासए तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेइ, ठवित्ता एवं वयासी–"मा णं, देवाणुप्पिया ! तुब्भे अज्जप्पभिइं केइ ममं बहुसु कज्जेसु जाव आपुच्छउ वा, पडिपुच्छउ वा, ममं अट्ठाए असणं वा उवक्खडेउ वा उवकरेउ वा।"

६८. तब श्रमणोपासक आनन्द ने अपने मित्रों व जाति बंधुओं के समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में अपने स्थान पर स्थापित किया। उत्तरदायित्व सौंप दिया। फिर उपस्थितजनों से कहा–"महानुभावो ! आज से आप कोई भी मुझे घर-परिवार सम्बन्धी कार्यों व मंत्रणाओं के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं पूछेंगे, न ही परामर्श लेंगे तथा मेरे लिए किसी प्रकार का अशन-पान आदि तैयार नहीं करेंगे, न ही मेरे पास लायेंगे।"

68. Then Anand *Shramanopasak* seated his eldest son in the presence of his family members, friends and social circle at his seat of responsibility. He then addressed the gathering—"O beloved ones, the respected ones ! From today onward, kindly do not consult me in family matters and social problems. Please do not ask for my advice in any such matters. Also do not prepare any food or drinks for me nor bring such things to me."

आनन्द का निष्क्रमण

६९. तए णं से आणंदे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त नाइं आपुच्छइ, २ त्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, २ त्ता वाणियगामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, २ त्ता जेणेव कोल्लाए-सन्निवेसे, जेणेव नायकुले जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता

पोसहसालं पमज्जइ, २ त्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, २ त्ता दब्भ-संथारयं संथरइ, संथरित्ता दब्भ-संथारयं दुरूहइ, २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए दब्भ-संथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

६९. तदनन्तर आनन्द श्रमणोपासक ने बड़े पुत्र तथा मित्र ज्ञातिजनों की अनुमति ली और अपने घर से प्रस्थान किया। वाणिज्यग्राम नगर के बीच होता हुआ, जहाँ कोल्लाक सन्निवेश था, जहाँ ज्ञातकुल की पौषधशाला थी वहाँ पहुँचा। पौषधशाला का मार्जन करके उच्चार-प्रस्रवण (शौच तथा लघु शंका) भूमि की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् दर्भ-कुश का संस्तारक–बिछौना लगाया, उस पर स्थित हुआ। स्थित होकर पौषध स्वीकार कर भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म-शिक्षा के अनुसार आराधना करने लगा।

THE EXIT OF ANAND

69. Thereafter, Anand *Shramanopasak* took permission of his eldest son, friends and the members of his clan and left his house. He passed through Vanijyagram city and reached the *Paushadhshala* of Jnat family in Kollak suburb. He thoroughly inspected the *Paushadhshala,* the land earmarked for toilets, etc. Then he spread a bedding of dry grass and seated himself on it. He then accepted the *Paushadh Vrat* and started practising it according to prescribed rules.

आनन्द द्वारा प्रतिमा ग्रहण

७०. तए णं से आणंदे समणोवासए उवासगपडिमाओ उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, आराहेइ।

७०. तदनन्तर आनन्द श्रमणोपासक उपासक प्रतिमाएँ स्वीकार करके विचरने लगा। उसने पहली उपासक प्रतिमा को यथासूत्र–सूत्र के अनुसार, यथाकल्प–प्रतिमा की आचार मर्यादा के अनुसार, यथामार्ग–विधि के अनुसार, यथातथ्य–भाव के

अनुसार स्वीकार किया, पालन किया, अतिचाररहित पालन कर शोधन किया, कीर्तन किया। तीर्ण किया–आदि से अन्त तक पूर्ण किया, तथा आराधन किया।

ACCEPTANCE OF POATIMAS BY ANAND

70. Thereafter Anand accepted the eleven *Pratimas* (the special restraints) of a householder. He accepted the first *Pratima* according to scriptures, the code of observance and strictly in letter and spirit. He observed it meticulously without allowing even partial transgressions. He took keen interest in its observance and wilfully, with a quiet and happy inclination, followed it till its completion.

७१. तए णं से आणंदे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं जाव आराहेइ।

७१. आनन्द श्रावक ने तत्पश्चात् दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा की क्रमशः आराधना की।

71. Thereafter Anand observed the second, the third, the fourth, the fifth, the sixth, the seventh, the eighth, the ninth, the tenth and the eleventh *Pratima* of householder in succession.

विवेचन–उपरोक्त दो सूत्रों में आनन्द श्रमणोपासक द्वारा प्रतिमा ग्रहण का वर्णन है। प्रतिमा का प्रचलित अर्थ प्रतीक या प्रतिबिम्ब भी होता है, किन्तु यहाँ प्रतिमा एक आदर्श साधना का उच्च मापदण्ड है। जैन परिभाषा में प्रतिमा एक प्रकार का व्रत या अभिग्रह है, जिसमें आत्म-शुद्धि के लिए धार्मिक क्रियाओं का विशेष रूप से अनुष्ठान किया जाता है। प्रत्येक प्रतिमा में किसी एक क्रिया को लक्ष्य में रखकर सारा समय उसी के चिन्तन, मनन, अनुष्ठान एवं आत्मसात् करने में लगाया जाता है। प्रतिमाएँ ग्यारह हैं। इनकी आराधना एक, दो यों क्रमशः की जाती है। ऐसा नहीं होता कि श्रावक एक प्रतिमा को पूर्ण कर जब आगे की प्रतिमा स्वीकार करता है तो पिछली प्रतिमा के नियम छोड़ देता है। अपितु पिछली प्रतिमा में स्वीकृत नियमों को पालता हुआ, आगे की प्रतिमा के नियम स्वीकार करता है। उनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है–

(१) दर्शन प्रतिमा–दर्शन का अर्थ है श्रद्धा या दृष्टि। आत्म-विकास या आत्म-अभ्युदय के लिए सर्वप्रथम दृष्टि शुद्ध होना आवश्यक है। दर्शन प्रतिमा का अर्थ है–वीतराग देव, पाँच

महाव्रतधारी गुरु तथा वीतराग द्वारा बताए हुए मार्ग पर दृढ़ विश्वास रखना। उन्हीं का चिन्तन, मनन एवं अनुष्ठान करना।

शंका, कांक्षा आदि दोषों से रहित होकर सम्यक्तया पालन करना पहली दर्शन प्रतिमा है। इस प्रतिमा में श्रमणोपासक 'रायाभियोगेण' आदि आगारों से रहित कांक्षादि दोषों का वर्जन करता हुआ सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है। इस प्रतिमा का आराधना काल एक मास का है।

(२) **व्रत प्रतिमा**—दूसरी व्रत प्रतिमा है। सम्यक् दृष्टि जीव जब अणुव्रतों का निर्दोष पालन करता है तो उसे व्रत प्रतिमा कहा जाता है। सम्यक्त्व शुद्धि के बाद दूसरी प्रतिमा में वह चारित्र शुद्धि की ओर बढ़कर कर्मक्षय का प्रयत्न करता है। वह पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रतों को धारण करता है। चार शिक्षाव्रतों को भी अङ्गीकार करता है किन्तु सामायिक और देशावकाशिक व्रतों का यथासमय सम्यक् पालन नहीं करता। इस प्रतिमा का आराधना काल दो मास है।

(३) **सामायिक प्रतिमा**—सम्यक् दर्शन और अणुव्रत स्वीकार करने के पश्चात् प्रतिदिन तीन बार सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है। तीसरी प्रतिमा में सर्वधर्म विषयक रुचि रहती है। वह शीलव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास धारण करता है। सामायिक और देशावकाशिक व्रत की आराधना भी उचित रीति से करता है, किन्तु अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा आदि पर्व दिनों में पौषधोपवास व्रत की भलीभाँति आराधना नहीं कर पाता। इस प्रतिमा का आराधना काल तीन मास का है।

(४) **पौषध प्रतिमा**—पूर्वोक्त तीन प्रतिमाओं के साथ अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों पर प्रतिपूर्ण पौषधव्रत की पूर्णतया आराधना करना पौषध प्रतिमा है। इसकी आराधना अवधि चार मास की होती है।

(५) **कायोत्सर्ग प्रतिमा**—कायोत्सर्ग का अर्थ है शरीर का त्याग अर्थात् कुछ समय के लिए शरीर, वस्त्र आदि की आसक्ति का त्याग करके मन को आत्म-चिन्तन में लगाना, रातभर ध्यान का अनुष्ठान करना कायोत्सर्ग प्रतिमा है। इसकी आराधना अवधि पाँच मास है।

(६) **ब्रह्मचर्य प्रतिमा**—पूर्वोक्त पाँच प्रतिमाओं की आराधना के पश्चात् वह छठी प्रतिमा में पूर्वोक्त सर्व व्रतों का सम्यक् रूप से पालन करता है और ब्रह्मचर्य प्रतिमा को स्वीकार करता है। इसमें पूर्ण ब्रह्मचर्य का विधान है। किन्तु वह सचित्त आहार का त्याग नहीं करता अर्थात् औषध सेवन के समय या अन्य किसी कारण वह सचित्त को भी सेवन कर लेता है। इसका आराधना काल छह मास है।

(७) **सचित्ताहारवर्जन प्रतिमा**—सातवीं प्रतिमा में पूर्वोक्त सब नियमों का पालन करता हुआ सचित्त आहार का सर्वथा त्याग कर देता है, किन्तु आरम्भ का त्याग नहीं करता। इसकी उत्कृष्ट काल मर्यादा सात मास है।

(८) **स्वयं आरम्भवर्जन प्रतिमा**—इस प्रतिमा का धारक उपरोक्त सभी नियमों का पालन करता हुआ सचित्त आहार का त्याग करता है। स्वयं किसी प्रकार का आरम्भ अथवा हिंसा नहीं करता। इसमें इतना विकल्प है कि आजीविका या निर्वाह के लिए दूसरे से आरम्भ कराने का त्याग नहीं होता। काल मर्यादा कम से कम एक दिन, दो दिन या तीन दिन, उत्कृष्ट आठ मास है।

(९) **भृतक प्रेष्यारम्भवर्जन प्रतिमा**—नवमी प्रतिमा का धारक पूर्ववर्ती सब नियमों का यथावत् पालन करता हुआ इस प्रतिमा में वह स्वयं आरम्भ का समय-समय परित्याग कर देता है, किन्तु उद्दिष्टभक्त का त्याग नहीं करता अर्थात् अपने निमित्त बना हुआ भोजन ग्रहण कर लेता है। वह स्वयं आरम्भ नहीं करता न दूसरों से कराता है, किन्तु अनुमति देने का त्याग नहीं होता। इस प्रतिमा की आराधना कम से कम एक, दो या तीन दिन हैं और अधिक से अधिक नौ मास हैं।

(१०) **उद्दिष्ट भक्तवर्जन प्रतिमा**—पूर्वोक्त नियमों का पालन करता हुआ उपासक इस प्रतिमा में अपने निमित्त से बने हुए भोजन का भी परित्याग कर देता है। कोई बात पूछने पर "मैं इसे जानता हूँ या नहीं जानता" इतना ही उत्तर देता है। प्रवृत्ति विषयक कोई आज्ञा, आदेश या परामर्श नहीं देता। इसकी काल मर्यादा कम से कम एक, दो या तीन दिन, उत्कृष्ट दस मास है।

(११) **श्रमणभूत प्रतिमा**—ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक श्रमणोपासक सभी नियमों का पालन करता है। सिर के बालों को उस्तरे (क्षुर) से मुण्डवा देता है, शक्ति होने पर लुंचन कर सकता है। साधु जैसा वेश धारण करता है। साधु के योग्य भण्डोपकरण आदि उपधि धारण कर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिपादित धर्म का निरतिचार पालन करता है। लगभग साधु जैसा जीवन होने के कारण उसे श्रमणभूत कहा जाता है। साधु के समान ही गोचरी से जीवन निर्वाह करता है किन्तु इतना विशेष है कि यह उपासक अपने सम्बन्धियों के घरों में गोचरी लेने जाता है। क्योंकि उसको अपने सम्बन्धियों से सर्वथा राग नहीं छूटता है।

इस प्रतिमा का कालमान जघन्य एक, दो, तीन दिन है; उत्कृष्ट ग्यारह मास है। अर्थात् यदि ग्यारह महीने से पहले ही प्रतिमाधारी श्रावक की मृत्यु हो जाये या दीक्षित हो जाये तो जघन्य या मध्यम काल ही उसकी अवधि है। यदि दोनों में से कुछ भी न हो तो उपरोक्त सब नियमों के साथ ग्यारह महीने तक इस प्रतिमा का पालन किया जाता है।

सब प्रतिमाओं का समय मिलाकर साढ़े पाँच वर्ष होता है।

ग्यारह प्रतिमाओं में श्रावक धर्म का प्रारम्भ से लेकर उच्चतम रूप मिलता है। इनका प्रारम्भ सम्यक् दर्शन से होता है और अन्त ग्यारहवीं श्रमणभूत प्रतिमा के साथ। तत्पश्चात् मुनिव्रत है। (विशेष वर्णन के लिए दशाश्रुतस्कंध, दशा ६ की टीका देखें।)

Explanation—The above said two *Sutras* describe an acceptance of *Pratima* (vow of special restraint) by Anand. The common meaning of the word *Pratima* is a symbol or impression. But here it is a measure of ideal practice (code of conduct). In Jain terminology, *Pratima* is a type of mental restraint (*Abhigrah*) in which the religious practices are followed in a typical manner for self-purification. In every *Pratima,* a particular practice is aimed at and the entire time is spent in deeply meditating on it so as to make it well-absorbed in the self. The total number of *Pratimas* is eleven. They are observed one after the other. When the *Shravak* completes one and steps on to the next, he does not relinquish the restraints observed in the earlier *Pratima,* but observing the restraints of earlier *Pratima,* he undertakes the additional restraints of the *Pratima* he has stepped in. The detailed description of the *Pratimas* in their prescribed order is as under—

(1) Darshan Pratima—Special code in observance of faith. *Darshan* means faith or point of view. It is of primary importance that faith should be faultless and pure for self-development or self-realisation.

Darshan Pratima denotes keeping firm faith in the path enunciated by the completely detached Bhagavan and the teacher following five great vows. It further means to always meditate on the said code and to try to meticulously practice it. The time-period of this *Pratima* is one month.

(2) Vrat Pratima—The special restraints relating to vows. The second *Pratima* is *Vrat Pratima.* When a person having true faith, follows the partial vows (Anand) without any partial transgression, he is stated to be observing *Vrat Pratima.* After the practice of right faith, the *Shravak* makes progress towards right conduct, in order to remove the karmic matter attached to

the soul. He accepts five partial vows and four supporting vows. But he is not meticulous in observing *Samayik* and *Deshavakashik* vows according to specific time earmarked for them. The time-period of this *Pratima* (special restraints) is two months.

(3) Samayik Pratima—After observing Right Faith and accepting partial vows, to practice *Samayik* thrice daily is *Samayik Pratima* (The Special Code in Practice of Equanimity). In the third *Pratima,* he has interest in all religious matters. He observes the partial vows, the Restraints (*Pratyakhyan*) and *Paushadhopvas.* He properly practices *Samayik* and *Deshavakashik* vows. But is not meticulous in observing *Paushadhopvas* on special days of every fortnight or the eighth, fourteenth and fifteenth day of dark as well as bright fortnight. The time-period of this *Pratima* is three months.

(4) Paushadh Pratima—To observe *Paushadh* on eighth, fourteenth and fifteenth day of each fortnight alongwith the code of conduct of earlier *Pratimas* is *Paushadh Pratima.* It is practiced for four months.

(5) Kayotsarga Pratima—The vow of detached meditation—*Kayotsarg* means ignoring attachment of the body. In other words, to ignore attachments to body, clothes, etc., and dwelling the mind in complete meditation on the self for the entire night. This is *Kayotsarg Pratima.* It is observed for five months.

(6) Brahmacharya Pratima—Restraint relating to celebacy—In this special restraint while observing the code of earlier *Pratimas* one accepts *Brahmacharya* (celibacy—Complete sex-restraint). He strictly observes *Brahmacharya* but does not meticulously avoid food containing living bacteria. In other words, in taking medicines or in any other special circumstance he may take even living organism. It is observed for six months.

(7) Sachittahar Varjan Pratima—The special restraint of accepting food completely devoid of living beings while accepting

the code of all the earlier six *Pratimas,* the practitioner of this *Pratima* avoids completely any consumable article containing life. But yet he has not restrained himself from preparing such things. The maximum time-period of this *Pratima* is seven months.

(8) Svayam Arambh Varjan Pratima—The practitioner of this *Pratima,* while observing the code of all the earlier *Pratimas* does not prepare any thing that involves violence to living being but he can get such things made for his profession or livelihood. The time period of this *Pratima* is one day, two days, three days and the maximum period is 8 months.

(9) Bhritak Preshyarambh Varjan Pratima—In this *Pratima,* the follower observes the code and restraints of all the earlier *Pratimas.* But does not avoid the food brought for him or the food specifically prepared for him. He does not prepare food himself nor gets it prepared. But he has not avoided appreciating or consenting to those who have prepared food (involving violence). This *Pratima* is observed for a period of one, two or three days and the maximum period is nine months.

(10) Uddisht Bhakt Varjan Pratima—In this *Pratima* while observing the code of previous *Pratimas,* the practitioner strictly avoids food prepared for him. When asked he speaks only this—"I know or I do not know it." He does not give any order, consultation or consent to any worldly activity. The minimum time-period of this *Pratima* is one, two or three days and the maximum time-period is ten months.

(11) Shramanbhoot Pratima—The practitioner of this practice strictly follows the restraints of all the *Pratimas.* He gets his head clean-shaved with razor or removes the hair by hand if he is able to do so. He dresses himself like a monk. He takes the pots of a monk and observes the code of *Nirgranth* monks without even partial transgression. Since his life-style is almost that of a monk, he is called *Shramanbhoot* (monk like).

He satisfies his hunger in the same manner as a monk by going for it alone. The only difference is that he only visits his family members or social circle in search of food as he has still some attachment for his family members.

The time-period of this *Pratima* is one, two, three days. The maximum time-period is eleven months. In other words, if the practitioner of this *Pratima* dies or accepts monkhood within the said period of eleven months of this *Pratima,* its time-period is minimum or medium. Otherwise it is observed with all earlier restraints for full eleven months.

The total time-period of all the eleven *Pratimas* is five and a half years.

In the eleven *Pratimas,* we see the conduct of a *Shravak* from its initial stage to its climax. (For special study see the commentary of 6th *dasha* in *Dashashrut Skandh*).

७२. तए णं से आणंदे समणोवासए इमेणं एयारूवेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के जाव किसे धमणिसंतए जाए।

७२. इस प्रकार श्रावक प्रतिमा के रूप में अति कष्टकर एवं विपुल तप ग्रहण करने के कारण आनन्द का शरीर अत्यन्त कृश होकर सूख गया जिस पर उभरी हुई नसें दिखाई देने लगीं।

72. By observing highly painful and deep austerities in the form of householder's *Pratimas,* Anand's physical body had become extremely weak. Even his nerves had become visible throughout.

आनन्द द्वारा मारणांतिक संलेखना का निश्चय

७३. तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्ता., जाव धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए ५–'एवं खलु अहं इमेणं जाव धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा धिइ संवेगे। तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे सद्धा धिइ संवेगे, जाव य मे धम्मायरिए

धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, ताव ता मे सेयं कलं जाव जलंते अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा झूसणाझूसियस्स, भत्तपाणपडियाइक्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए।' एवं संपेहेइ, २ त्ता कल्लं पाउ जाव अपच्छिम-मारणंतिय जाव कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

७३. इसके पश्चात् एक दिन आधी रात के समय धर्म-चिन्तन करते हुए आनन्द श्रावक को यह विचार आया, संकल्प उत्पन्न हुआ-'यद्यपि मैं उत्कृष्ट दीर्घ एवं उग्र तपश्चरण के कारण कृश हो गया हूँ। शरीर का माँस, रक्त सूख गया है, नसें दीखने लगी हैं, फिर भी मुझमें अभी भी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पुरुषोचित पराक्रम, श्रद्धा, धृति, सहिष्णुता और संवेग मुमुक्षु भाव विद्यमान है। अतः जब तक मुझमें उत्थानादि विद्यमान हैं और जब तक मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर जिन-सुहस्ती (गंधहस्ती के समान) विचर रहे हैं। मेरे लिए यह श्रेयस्कर होगा कि अन्तिम मारणान्तिक संलेखना अंगीकार कर लूँ। भोजन, पानी आदि का परित्याग कर दूँ और मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए शान्तिपूर्वक अपना अन्तिम समय व्यतीत करूँ।'

DECISION OF ANAND TO PRACTICE *MARANANTIK SAMLEKHANA*

73. Thereafter, one day at the time of mid-night while meditating, Anand observed and decided as under—'Although I have become extremely weak due to long and extremely serious austerities of a high order, the flesh and blood of my body has reduced to the barest minimum, my nerves have become prominently visible, yet I am capable of performing personal activities, I have full faith, courage, temperance and keen desire to shed my *karmas.* So while there is physical capability in me and while my religious teacher Bhagavan Mahavir is wandering like a graceful elephant, it shall be highly beneficial for me to accept *Maranantik Samlekhana*—to completely stop intake of food, water, etc., and spend the last stage of my life peacefully not desiring death.'

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में कुछ शब्द ध्यान देने योग्य हैं—**उत्थान**—उठना, बैठना, गमनागमन आदि शरीरिक चेष्टाएँ अथवा हलचल। **बल**—शारीरिक शक्ति। **वीर्य**—आत्म-तेज, ओज या उत्साह, जीवनी-शक्ति जो किसी कार्य को करने की प्रेरणा देती है। **पुरुषकार**—पुरुषोचित उद्यम। **पराक्रम**—इष्ट साधन के लिए परिश्रम। **श्रद्धा**—विशुद्ध चित्तपरिणति के कारण होने वाला दृढ़ विश्वास। **धृति**—धैर्य, भय, शोक, दुःख, संकट आदि से विचलित न होना अर्थात् मन में किसी प्रकार का क्षोभ या उद्वेग न आना। **संवेग**—आत्मा तथा अनात्मा सम्बन्धी विवेक के कारण बाह्य वस्तुओं से होने वाली विरक्ति।

Explanation—In the present *Sutra,* some words need special attention—**Utthan**—The physical activities such as getting up, sitting down, moving about. **Bal**—Physical strength. **Veerya**—The aura of the soul, its strength and courage, the life-strength that inspires one to do certain act. **Purushkar**—The human-like effort. **Parakram**—Effort for the desired goal. **Shraddha**—Firm faith as a result of pure mental set-up. **Dhriti**—Patience; not to get disturbed by fear, sadness, pain, drastic situation etc., *i.e.,* not to feel dejected or elated in any situation. **Samveg**—The detachment from worldly things due to discriminating attitude towards soul and non-living elements.

आनन्द को अवधिज्ञान की प्राप्ति

७४. तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अन्नया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं, तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिनाणे समुप्पन्ने। पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंचजोयण सयाइं खेत्तं जाणइ पासइ, एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं य, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासधरपव्वयं जाणइ पासइ, उड्ढं जाव सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ, अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ।

७४. इस प्रकार धर्म-चिन्तन करते हुए आनन्द श्रावक को एक दिन शुभ अध्यवसाय (संकल्प) शुभ परिणाम-चित्त की शुभ परिणति एवं विशुद्ध लेश्या के कारण अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम हुआ और अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप वह पूर्व, पश्चिम व दक्षिण दिशा की तरफ लवण समुद्र में पाँच-पाँच सौ योजन की दूरी तक जानने और देखने लगा। उत्तर दिशा की तरफ चुल्ल हिमवंत

वर्षधर पर्वत का क्षेत्र, ऊर्ध्वलोक में सौधर्मकल्प प्रथम देवलोक तक और अधोलोक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले लोलुपाच्युत नामक प्रथम नरक भूमि तक जानने और देखने लग गया।

RECEIPT OF TRANSCENDENTAL KNOWLEDGE (*AVADHI JNAN*) BY ANAND

74. Thus, while busy in deep religious meditation, Anand reduced the barrier to transcendental knowledge as a result of pious determination, pure mental state and pure *leshya* (mental attitude). Therefore, he was able to see upto 500 *yojans* in *Lavan Samudra* (the ocean surrounding *Jambu Dveep*) in East, West and the South. In the North, he was able to see the *Chulla Himvant Parvat.* In the upper direction he was able to see the abode of the gods of first *Devlok—Saudharmakalp.* In the lower direction he could see upto *Lolupachyut* hell where hellish beings of life-span upto 84,000 years reside.

विवेचन—**अवधिज्ञान**—वह अतीन्द्रिय ज्ञान है जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपी द्रव्यों को एक सीमा तक देखा जाता है। तप-व्रत आदि साधना द्वारा कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला **गुण-प्रत्यय अवधिज्ञान** तथा देव-नरक भव में जन्म से होने वाला **भव-प्रत्यय अवधिज्ञान** है। (इसका विशेष वर्णन नंदीसूत्र में किया गया है।)

लवण समुद्र—जैन भूगोल के अनुसार मनुष्य क्षेत्र अढाई द्वीपों तक फैला हुआ है। मध्य में जम्बूद्वीप है, जो वृत्ताकार-गोल, एक लाख योजन लम्बा, एक लाख योजन चौड़ा है। उसके चारों ओर दो लाख योजन का लवण समुद्र है। लवण समुद्र के चारों ओर उससे दुगुना धातकीखण्ड नामक द्वीप है। उस द्वीप को कालोदधि समुद्र घेरे हुए है। उसके चारों ओर पुष्कर द्वीप है। इस द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है। मनुष्यों की बस्ती आधे द्वीप में ही है।

वर्षधर पर्वत—जम्बूद्वीप के बीच मेरु पर्वत है। मेरु पर्वत से दक्षिण तथा उत्तर की ओर सात-सात वर्ष या क्षेत्र हैं। इनके बीच वर्षधर पर्वत है। वर्षधर पर्वत इन खण्डों का विभाजन करता है।

सौधर्म देवलोक—ऊर्ध्व लोक में प्रथम देवलोक का नाम सौधर्मकल्प है।

चित्र परिचय ६

Illustration No. 6
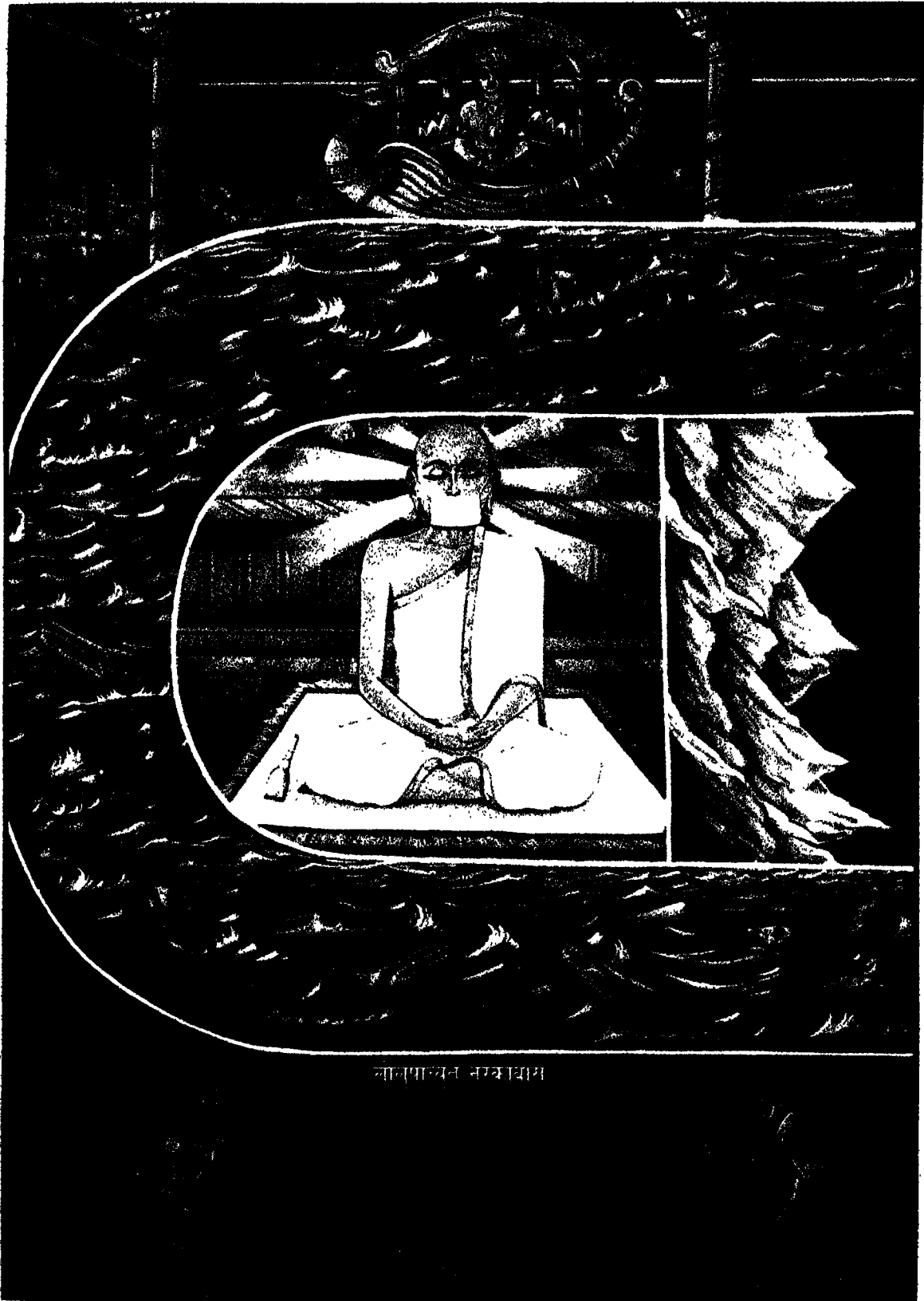
आनन्द श्रावक को अवधिज्ञान

श्रावक धर्म की निर्मल आराधना करते हुए आनन्द श्रमणोपासक को दीर्घकाल बीत गया। दीर्घकालीन साधना से उसका शरीर अत्यन्त कृश व दुर्बल हो गया। हड्डियाँ, पसलियाँ दीखने लग गईं। तब उस समय अन्तिम धर्माराधना करते हुए उसने संलेखना-संथारा ग्रहण कर लिया और अपनी पौषधशाला में धर्माराधना करने लगा।

एक दिन आनन्द को अत्यन्त शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और शुभ लेश्याएँ होने से अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप वह जहाँ पर बैठा था, वहाँ से पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में पाँच-पाँच सौ योजन तक लवण समुद्र का क्षेत्र तथा उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवंत पर्वत तक, ऊर्ध्व दिशा में सौधर्मकल्प (प्रथम देवलोक) तक का भाग एवं अधो दिशा में प्रथम नरक भूमि रत्नप्रभा के लोलुपाच्युत नामक नरक तक का स्थान जानने-देखने लगा।

- उपासकदशा, अ. १, सूत्र ७४

TRANSCENDENTAL KNOWLEDGE OF ANAND

Anand *Shramanopasak* spent a long period observing spiritual code of a householder meticulously. Due to such long practices, his body became very weak. His bones and ribs visible. At that time while observing the last spiritual practice, he accepted *Samlekhana Santhara* and decided to spend his time only in spiritual practices in the *Paushadhshala*.

One day while in extremely pure thought-currents, in pure mental state he obtained *Avadhi-jnan* (determinate knowledge of remote physical objects). He could see and know clearly the *Lawan Samudra* (the Salty Ocean) in the east, the west and the south upto 500 yojans and in the north upto *Chulla Hemvant* Mountain. In the upper direction he could see upto *Saudharm Devlok*—the first heavenly abode and downwards upto *Lolupachyut* part of the first hell *Ratnaprabha*.

—Upasak-dasha, Ch. 1, Sutra 74

रत्नप्रभा—पृथ्वी के अधोभाग में सात नरक भूमियाँ हैं। प्रथम नरक का नाम रत्नप्रभा है। लोलुपाच्युत नरक भी इसी पृथ्वी का स्थान विशेष है जहाँ नारकीय जीवों की आयु ८४,००० वर्ष मानी जाती है।

श्रमणोपासक आनन्द के अवधिज्ञान की सीमा

प्रस्तुत सूत्र (७४) में आनन्द श्रावक के अवधिज्ञान की सीमा बताई गई है। इस विषय में एक प्रश्न उठता है—अवधिज्ञान में तीनों दिशाओं में वह पाँच सौ-पाँच सौ योजन लवण समुद्र क्षेत्र को देखता है। तो क्या वह जहाँ पर स्थित है वहाँ से पाँच सौ योजन तक का क्षेत्र देखता है अथवा लवण समुद्र के भीतर पाँच सौ योजन का भाग देखता है? इस विषय में आगम ज्ञाता बहुश्रुतों से समाधान अपेक्षित है। हमारे अनुमान से यह सीमा लवण समुद्र के भीतर पाँच सौ-पाँच सौ योजन होनी चाहिए, क्योंकि भरतक्षेत्र के मगध देश में जहाँ आनन्द श्रावक स्थित है उससे चुल्ल हिमवंत पर्वत की दूरी लगभग ५२६ योजन है और चुल्ल हिमवंत पर्वत भी एक हजार योजन से अधिक विस्तृत है। इसी प्रकार मगध जनपद से पूर्व-पश्चिम लवण समुद्र की दूरी भी पाँच सौ योजन से अधिक है। ऊर्ध्वलोक में सौधर्मकल्प विमान तो असंख्यात योजन ऊँचा है, जहाँ तक आनन्द श्रावक देख रहा है। फिर पाँच सौ योजन की सीमा का अर्थ क्या है? अधिक चर्चा में नहीं उलझकर हम भरतक्षेत्र की आगमानुसारी भौगोलिक सीमा का विवरण दे रहे हैं। पाठक इस पर स्वयं विचार करेंगे।

उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवंत नामक वर्षधर पर्वत स्थित है। उसका दक्षिण भाग पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा—तीनों तरफ लवण समुद्र से घिरा हुआ तथा उत्तर में चुल्ल हिमवंत पर्वत की सीमा से बँधा एक मनुष्य क्षेत्र है जिसे भरतक्षेत्र कहा जाता है। यह अर्ध चन्द्राकार है। चुल्ल हिमवंत से दक्षिणी लवण समुद्र की सीमा तक इसकी विष्कंभ चौड़ाई ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन की है। चुल्ल हिमवंत पर्वत से लगी दक्षिण भरत की सीमा (जीवा) पूर्व-पश्चिम में लवण समुद्र को स्पर्श करती है। जिसकी लम्बाई १,७४८$\frac{१२}{१९}$ योजन है। भरतक्षेत्र को स्पर्श करती तथा लवण समुद्र की धनुःपीठिका (धनुषाकृति की परिधि) ९,७६६ योजन से अधिक है।

नक्शे पर ध्यान देने से पता चलेगा, इस क्षेत्र के बीच में स्थित वैताढ्य पर्वत के कारण इसके उत्तर भरत तथा दक्षिण भरत ये दो भाग बन गये हैं तथा चुल्ल हिमवंत पर्वत से गंगा-सिंधु नाम की दो महानदियाँ निकलकर इस क्षेत्र को छह भागों में विभक्त कर देती हैं। इसी कारण भरतक्षेत्र के छह खण्ड हो गये हैं। चक्रवर्ती राजा को षट्खण्ड चक्रवर्ती इसीलिए कहा जाता है कि वह इन छहों खण्डों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। (विशेष जिज्ञासु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्षस्कार ४ तथा गणितानुयोग, पृष्ठ १९९-२०० देखें।)

Explanation—Avadhi Jnan—It is a direct knowledge (Super-natural knowledge wherein senses do not play any role). In it subtle beings can be seen upto certain limit. This knowledge is gained due to deep austerities as a result of shedding of *karmic* molecules and is known as *Gunpratyay Avadhi Jnan. Bhav-pratyay Avadhi Jnan* is that of angels and hellish beings since their very birth. (The detailed description is in *Nandi Sutra*).

Lavan Samudra—According to Jain Geography, human beings are in a area of two and half *Dveep*. At the centre is *Jambu Dveep* which is round and whose diameter is one lakh *yojans*. It is surrounded by *Lavan Samudra* (Salty Ocean) on all sides and is two lakh *yojans* in width. It is surrounded by *Dhatakikhhand Dveep* which is four lakh *yojans* in width. *Dhatakikhand Dveep* is surrounded by eight *yojans* wide *Kalodadhi Samudra* (Ocean). *Kalodadhi Samudra* is surrounded by sixteen *yojans* wide *Pushkar Dveep* and in the middle of *Pushkar Dveep* is *Manushottar Parvat* (Mountain) in all directions dividing *Pushkar Dveep* in two equal parts each eight yojans wide. The human beings are only upto half of *Pushkar Dveep*.

Varshdhar Parvat—At the centre of *Jambu Dveep* is *Meru Parvat*. In the South and the North of *Meru Parvat*, there are seven areas each. In between is the *Varshdhar Parvat* separating these areas.

Saudharma Devlok—The name of first heavenly abode in higher world is Saudharma Devlok.

Ratna-prabha—Below this level surface, there are seven hells. The first hell is Ratna-prabha. *Lolupachyut* hell is also in a part of it where the life-span of hellish beings is 84,000 years.

LIMIT OF *AVADHI JNAN* (SUPER-NATURAL KNOWLEDGE) OF *SHRAMANOPASAK* ANAND

In Sutra 74, the limits of the *Avadhi Jnan* of Anand *Shravak* are mentioned. In this context, question arises—He sees in his super-natural perception and *Jnan* an area upto 500 *yojans* in all the three directions in *Lavan Samudra*. Therefore, whether he

sees upto 500 *yojans* in *Lavan Samudra* or he sees 500 *yojans* from the place where he was present. So far as we interpret, he could see upto 500 *yojans* from the bank of *Lavan Samudra*. Anand was in Magadh state in *Bharat Kshetra*. From there *Chulla Hemvant Parvat* is about 526 *yojans*. *Chulla Hemvant Parvat* is also spread in more than thousand *yojans*. So both east and west banks of *Lavan Samudra* from Magadh are more than five hundred *yojans*. In *Urdhva Lok Saudharmakalp Viman* is innumerable *yojans* from the level of the local earth upto which Anand could see distinctly in super-natural knowledge (*Avadhi Jnan*). Then what is implied by the limit of 500 *yojans*. Without going into further discussion in this context, we are giving details of the limit of *Bharat Kshetra* according to geographical limits as mentioned in *Agam*. The Reader is advised to comprehend it in the light of these facts.

In the north of *Bharat Kshetra* is *Chulla Hemvant Varshadhar Parvat*. The southern part of Bharat is surrounded by *Lavan Samudra* in the south, east and west and in the north is *Chulla Hemvant Parvat* touching it at its northern limit. It is like half-moon in shape. From *Chulla Hemvant Parvat* upto *Lavan Samudra* in the south, the width of *Bharat Kshetra* is 526 *yojans* and six-nineteenth part more of a *yojan*. The limit of *Bharat Kshetra* that touches *Chulla Hemvant Parvat* right from east to west of *Lavan Samudra* is 1,748 *yojans* and twelve-nineteenth part more of a *yojan*. The limit of *Lavan Samudra* touching *Bharat Kshetra* in the shape of a bow has the circumference of more than 9,766 *yojans*.

A perusal of the map shall indicate that due to the presence of *Vaitadhya Parvat, Bharat Kshetra* has been divided into two parts namely Uttar Bharat (Northern Bharat) and Dakshin Bharat (Southern Bharat). Two great rivers Ganga and Sindhu (Indus) start from *Chulla Hemvant Parvat* and divide *Bharat Kshetra* in six parts. So Bharat has six divisions (*Khand*). *Chakravarti* (King—Emperor) is called *Shatkhand Chakravarti* as he rules all the six divisions. (For further study see *Jambu Dveep Prajnapti Vakshaskar* 4 and *Ganitanuyog*, pp. 199-200.)

७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए, परिसा निग्गया जाव पडिगया।

७५. उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर ग्राम-ग्राम में उपदेश देते हुए वाणिज्यग्राम के बाहर दूतिपलाश चैत्य में पधारे। नगर की परिषद् धर्म श्रवण करने के लिए गई। धर्म उपदेश सुनकर वापस लौट आई।

ARRIVAL OF BHAGAVAN MAHAVIR

75. At that time in that period, Bhagavan Mahavir once arrived at Dootipalash Chaitya in Vanijyagram during his wanderings from one place to another delivering his message to the masses. The people came to listen to his discourse. After the discourse, the gathering dispersed.

७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूईनामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे, समचउरंससंठाणसंठिए, वज्जरिसहनारायसंघयणे, कणगपुलग-निघसपम्हगोरे। उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, घोरतवे, महातवे, उराले, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्तविउल-तेउल्लेस्से। छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

७६. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार, जिनकी देह की ऊँचाई सात हाथ थी। वे समचतुरस्रसंस्थान (अंगों की संतुलित–समानुपाती रचना) वज्रऋषभनाराचसंहनन (सुदृढ़ अस्थिबंध) वाले तथा सुवर्ण पुलक निकष (कसौटी पर खचित स्वर्ण रेखा की आभा) और पद्म (कमल) के समान गौरवर्ण वाले थे। वे उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, घोर तपस्वी, महा तपस्वी, उदार, महा गुणवान, उत्कृष्ट तपोधन, उग्र ब्रह्मचारी, शरीर के प्रति ममत्व भाव से रहित और संक्षिप्त (संयमित) की हुई विपुल तेजोलेश्या वाले थे। निरन्तर बेले-बेले तथा अन्य प्रकार के तपोनुष्ठान द्वारा आत्मा को भावित कर रहे थे। (गौतम स्वामी की विभूतियों व विशेषताओं का वर्णन आचार्यश्री की हिन्दी टीका पृष्ठ १३० पर देखें।)

76. At that time in that period, Indrabhuti the senior most disciple of Bhagavan Mahavir, who belonged to Gautam Gotra and whose height was seven *Haath,* who had a perfectly balanced physique, whose body-joints were stead-fast (*Vajra-Rishabh Narach Samhanan*) and whose complexion was like golden light and white like lotus. He was a rigorous, radiant, extreme and great observer of austerities; he was generous, highly virtuous, absolutely celibate, completely detached from his body and endowed with controlled *Vipul Tejoleshya.* He was observing strict spiritual practices including continuous two-day fasting.

गौतम स्वामी का भिक्षा के लिए गमन

७७. तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बिइयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियं अचवलं असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता, भायणवत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणवत्थाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी–"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणियगामे नयरे उच्चनीय मज्झिमाइं कुलाइं घर समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

७७. उस दिन भगवान गौतम ने छट्ठखमण–बेला तप के पारणे के दिन पहले प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया, तीसरे प्रहर अत्वरित–जल्दबाजी न करते हुए स्थिरता एवं आकुलतारहित शान्त चित्त से मुखवस्त्रिका एवं पात्रों की प्रतिलेखना की। परिमार्जना कर पात्र उठाये। तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के पास आये, उन्हें वन्दना नमस्कार किया और पूछा–"भन्ते ! आपकी अनुज्ञा प्राप्त कर मैं बेले का पारणा लेने के लिए वाणिज्यग्राम में उच्च, मध्यम तथा अधम-क्रम प्राप्त सभी कुलों में सामुदानी भिक्षाचर्या करना चाहता हूँ।"

भगवान बोले–"हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो।"

WANDERING OF GAUTAM SWAMI FOR *BHIKSHA*

77. That day, *i.e.*, on the day of completion of his two-day fast, Reverend Gautam did self study in the first *Pahar* (first part of four divisions of the day), performed meditation in the second *Pahar*, carefully without any haste or impatience with a tranquil mind looked at his pots and *Mukhvastrika*, cleaned the pots and then picked them up. He then came to Bhagavan Mahavir, respectfully bowed to him and said—"Bhante ! After having your permission, I intend to go to high, medium and low category of families in Vanijyagram for *Bhiksha*."

Bhagavan Mahavir said—"O beloved of gods ! Do as you wish and what gives you relief."

७८. तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपरिलोयणाए दिट्ठीए पुरओ ईरियं सोहेमाणे जेणेव वाणियगामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाणियगामे नयरे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घर-समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ।

७८. तब भगवान महावीर की अनुज्ञा प्राप्त कर भगवान गौतम दूतिपलाश उद्यान से बाहर निकले, चपलता तथा आकुलता के बिना धैर्य एवं शान्ति के साथ सामने साढ़े तीन हाथ तक मार्ग पर दृष्टि डालते हुए ईर्यासमितिपूर्वक चलते हुए वाणिज्यग्राम नगर में आए तथा उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में यथाक्रम भिक्षाचरी के लिए भ्रमण करने लगे।

78. Then after having the consent of the Lord, Gautam Swami came out of Dootipalash garden and moving quietly, patiently and steadily keeping his eyes on three and half *haath* (a linear measure) distance ahead of him following the rules of *Iryasamiti* (movement, *i.e.*, ensuring that his movement does not hurt any living being and also himself) reached Vanijyagram. He then went to the families of higher, medium and low castes for *Bhiksha*.

७९. तए णं से भगवं गोयमे वाणियगामे नयरे, जहा पण्णत्तीए तहा, जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं सम्मं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहित्ता वाणियगामाओ पडिणिग्गच्छइ, पडिणिग्गच्छित्ता कोल्लायस्स सन्निवेसस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे, बहुजणसद्दं निसामेइ, बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ ४-"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिम जाव अणवकंखमाणे विहरइ।"

७९. तदनन्तर व्याख्याप्रज्ञप्ति में वर्णित साधुजनोचित कल्प के अनुसार भगवान गौतम ने वाणिज्यग्राम नगर में भिक्षाचरी के लिए भ्रमण करते हुए यथापर्याप्त-जितना जैसा आवश्यक था आहार-पानी ग्रहण किया, ग्रहण कर वाणिज्यग्राम नगर से बाहर निकलकर कोल्लाक सन्निवेश के पास पहुँचे। वहाँ पर बहुत से मनुष्यों को बात करते हुए सुना कि "हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान महावीर का अन्तेवासी (शिष्य) आनन्द श्रमणोपासक पौषधशाला में अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना किए हुए यावत् जीवनमरण की आकांक्षा नहीं रखते हुए धर्म आराधना में संलग्न है।"

79. Then, as mentioned in *Bhagavati Sutra,* Gautam Swami while wandering in search of *Bhiksha* following the rules mentioned in the said *Sutra* accepted food and water from the residents of Vanijyagram according to his need. He then came to Kollak suburb. There he heard many persons talking to themselves—"O beloved of gods ! Anand, the disciple of Bhagavan Mahavir, has accepted *Maranantik Samlekhana* (Meditational equanimous fast till death) and is deeply engaged in religious meditation."

८०. तए णं तस्स गोयमस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४-'गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि।' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव कोल्लाए सन्निवेसे जेणेव आणंदे समणोवासए, जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ।

८०. अनेक लोगों से यह चर्चा सुनकर गौतम स्वामी के मन में ऐसा विचार आया कि 'मैं श्रमणोपासक आनन्द के पास जाऊँ और उसे देखूँ।' ऐसा विचार कर कोल्लाक सन्निवेश में स्थित पौषधशाला में बैठे हुए आनन्द श्रावक के पास आए।

80. After hearing such talk from many persons Gautam Swami thought that 'he should go to Anand *Shramanopasak* and see him.' With these thoughts, Gautam came to Anand in his *Paushadhshala*.

८१. तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव हियए भगवं गोयमं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-"एवं खलु भंते ! अहं इमेणं उरालेणं जाव धमणिसंतए जाए, नो संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ता णं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाए अभिवंदित्तए, तुब्भे णं भंते ! इच्छाकारेणं अणभिओगेणं इओ चेव एह, जा णं देवाणुप्पियाणं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदामि नमंसामि।"

८१. आनन्द श्रावक ने भगवान गौतम को आते हुए देखा। देखकर अतीव प्रसन्न होकर उन्हें नमस्कार कर इस प्रकार बोला-"भगवन् ! दीर्घ तपस्या के कारण मेरा शरीर अतीव कृश हो गया है, किं बहुना, सारा शरीर उभरी हुई नाड़ियों से व्याप्त हो गया है। अतः देवानुप्रिय के समीप आने तथा तीन बार मस्तक झुकाकर चरणों में वन्दना करने में असमर्थ हूँ। अतएव भगवन् ! आप ही स्वेच्छापूर्वक (बिना किसी दबाव के) मेरे पास पधारें, जिससे मैं देवानुप्रिय के चरणों में तीन बार मस्तक झुकाकर वन्दना नमस्कार कर सकूँ।"

81. Anand *Shravak* saw Gautam Swami coming there. He was overjoyed, he greeted him and said—"Bhante ! Due to hard austerities, my body has gone extremely weak the entire body has projecting nerves. So, O beloved of gods ! I am unable to bow my head thrice and greet you in prescribed manner. So, O beloved of the angels ! Please come near me voluntarily without any outward pressure so that I may greet you and touch your feet."

आनन्द द्वारा अपने अवधिज्ञान की सूचना

८२. तए णं से भगवं गोयमे जेणेव आणंदे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ। तए णं से आणंदे भगवओ गोयमस्स तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-"अत्थि णं भंते ! गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ ?"

"हंता अत्थि।"

"जइ णं भंते ! गिहिणो जाव समुपज्जइ, एवं खलु भंते ! मम वि गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिनाणे समुप्पण्णे-पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंचजोयणसयाइं जाव लोलुयच्चुयं नरयं जाणामि पासामि।"

८२. तब भगवान गौतम आनन्द श्रमणोपासक के पास आए। आनन्द ने तीन बार मस्तक झुकाकर वन्दना नमस्कार किया और पूछा-"भगवन् ! घर में रहते हुए एक गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है ?"

गौतम ने कहा-"हाँ आनन्द ! हो सकता है।"

आनन्द बोला-"भगवन् ! एक गृहस्थ की भूमिका में विद्यमान मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। उसके द्वारा मैं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण की ओर लवण समुद्र में पाँच-पाँच सौ योजन तक, अधोलोक में लोलुपाच्युत नरक तक, ऊर्ध्वलोक में सौधर्मकल्प तक जानने तथा देखने लगा हूँ।"

DESCRIPTION OF HIS SUPER-NATURAL KNOWLEDGE BY ANAND

82. Then Gautam Swami came near Anand. Anand bowed at his feet thrice, greeted him and asked—"Bhante ! Can a householder residing in his house get benefitted with *Avadhi Jnan* (limited transcendental knowledge)."

Gautam said—"Yes Anand ! It is possible."

Then Anand said—"Bhante ! As a householder disciple, I have also got *Avadhi Jnan.* I am now able to see with this knowledge upto 500 *yojans* in South, West and East in *Lavan Samudra,* upto *Lolupachyut* hell below and upto *Saudharma* abode in heaven."

गौतम का संदेह और आनन्द का उत्तर

८३. तए णं से भगवं गोयमे आणंदं समणोवासयं एवं वयासी-"अत्थि णं, आणंदा ! गिहिणो जाव समुप्पज्जइ। नो चेव णं एअमहालए। तं णं तुमं, आणंदा ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव तवोकम्मं पडिवज्जाहि।"

तए णं से आणंदे भगवं गोयमं एवं वयासी—"अत्थि णं, भंते ! जिणवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ जाव पडिवज्जिज्जइ ?"

"नो इणट्ठे समट्ठे।"

"जइ णं भंते ! जिणवयणे संताणं जाव भावाणं नो आलोइज्जइ जाव तवोकम्मं नो पडिवज्जिज्जइ, तं णं भंते ! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह जाव पडिवज्जह।"

८३. तब भगवान गौतम ने आनन्द से कहा—"हे आनन्द ! गृहस्थ अवस्था में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान तो उत्पन्न हो सकता है, परन्तु इतना विशाल नहीं। अतः हे आनन्द ! तुम इस असत्य भाषण की आलोचना करो यावत् दोष-शुद्धि के लिए उचित तपश्चरण स्वीकार करो।"

आनन्द श्रमणोपासक भगवान गौतम से बोला—"भगवन् ! क्या जिन-प्रवचन (जिनशासन) में सत्य, तथ्यपूर्ण और सद्भूत भावों के लिए भी आलोचना (प्रतिक्रमण) यावत् तपःकर्म स्वीकार किया जाता है ?"

भगवान गौतम ने कहा—"आनन्द ! ऐसा नहीं होता।"

आनन्द बोला—"भगवन् ! यदि जिन-प्रवचन में सत्य भावों की आलोचना नहीं होती और उनके लिए तपःकर्म स्वीकार नहीं किया जाता तो भगवन् ! आप ही इस विषय में आलोचना कीजिए और तपःकर्म ग्रहण कीजिए।"

GAUTAM'S DOUBT AND ANAND'S REPLY

83. Then Gautam said—"O Anand ! A householder while in household can get *Avadhi Jnan* but not to such an extent. So Anand ! You seek pardon for your false statement and accept prescribed austerities for purifying yourself of this wrong."

Anand *Shramanopasak* then said—"Bhante ! Is there any repentance in the code of the Lord for true, factual statement and austerities are undertaken in lieu of it."

Gautam said—"Anand ! It is not true."

Anand said—"Bhante ! In case there is no repentance for true statements in the code of the Lord and no austerities

are required for it then you, please, observe repentance and austerities."

शंकित होकर गौतम भगवान के पास आये

८४. तए णं से भगवं गोयमे आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे, संकिए कंखिए विइगिच्छासमावन्ने, आणंदस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, २ त्ता जेणेव दूइपलासे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, २ त्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसइ, पडिदंसित्ता समणं भगवं वंदइ नमंसइ, २ त्ता एवं वयासी—"एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए तं चेव सव्वं कहेइ, जाव तए णं अहं संकिए (कंखिए विइगिच्छे) आणंदस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिणिक्खमामि, २ त्ता जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए, तं णं भंते ! किं आणंदेणं समणोवासएणं तस्स ठाणस्स आलोएयव्वं जाव पडिवज्जेयव्वं उदाहु मए ?"

गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—"गोयमा ! तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि।"

८४. आनन्द श्रमणोपासक के इस प्रकार कहने पर भगवान गौतम शंका, कांक्षा एवं विचिकित्सा (संशय) से युक्त होकर आनन्द के पास से रवाना हुए और दूतिपलाश चैत्य में श्रमण भगवान महावीर के पास आए। भगवान के समीप आकर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया। एषणीय और अनेषणीय की आलोचना की। भगवान को आहार-पानी दिखलाया, वन्दना नमस्कार किया और कहा—"मैं आपकी अनुज्ञा प्राप्त करके" इत्यादि गौतम ने पूर्वोक्त समस्त घटित वृत्तांत कह सुनाया। अन्त में कहा—"मैं संशयग्रस्त होकर आपकी सेवा में आया हूँ। भगवन् ! उस पाप स्थान की आलोचना तथा तपस्या आनन्द को करनी चाहिए अथवा मुझको ?"

श्रमण भगवान महावीर ने कहा—"हे गौतम ! उस असत्य भाषण रूप पाप स्थान के लिए तुम ही आलोचना यावत् तपःकर्म स्वीकार करो तथा आनन्द श्रावक से इस आचरण के लिए क्षमायाचना करो।"

GAUTAM'S ARRIVAL TO THE LORD IN A DOUBTFUL STATE

84. At this statement of Anand *Shramanopasak,* Gautam left Anand with a mental attitude besmeared with doubt, unclear understanding came to Bhagavan Mahavir at Dootipalash temple. After coming closer to the Lord, he sought repentance for any violence in *Iryasamiti* (movement for *Bhiksha*), the prescribed rules and any violation during acceptance of food and water. He showed the food etc. to the Lord, respectfully bowed to him and said—"I had gone for *Bhiksha* with your consent—O Lord." He then narrated the entire talk with Anand and said that "he was in a doubtful mind whether Anand should repent for false statement or he should do."

Bhagavan Mahavir said—"O Gautam ! You should seek repentance for your false statement and accept austerities. You should seek pardon from Anand *Shravak* for your conduct."

गौतम द्वारा क्षमायाचना

८५. तए णं से भगवं गोयमे, समणस्स भगवओ महावीरस्स ''तह'' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, २ त्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ, आणंदं च समणोवासायं एयमट्ठं खामेइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ बहिया जणवय विहारं विहरइ।

८५. तब भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर का कथन विनयपूर्वक स्वीकार किया–''आप सत्य फरमाते हैं।'' और उस दोष की आलोचना की तथा आनन्द श्रावक से क्षमायाचना की।

कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर अन्य जनपदों के लिए विहार कर गए।

PARDON SEEKING BY GAUTAM

85. Then Gautam accepted the version of the Lord respectfully and said—"O Lord ! You are perfectly true." He then repented for it fully and sought pardon from Anand *Shravak.*

After some time, Bhagavan Mahavir left for other places.

आनन्द के जीवन का उपसंहार

८६. तए णं से आणंदे समणोवासए बहूहिं सीलव्वएहिं जाव अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइए पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा, सोहम्मेकप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं अरुणे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं आणंदस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

८६. इस प्रकार आनन्द श्रावक बहुत से शीलव्रत आदि के द्वारा आत्मा को भावित करता रहा, उसने बीस वर्ष तक श्रावक व्रतों का पालन किया। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की भलीभाँति आराधना की। अन्त में एक मास की संलेखना ली और साठ भक्त के भोजन का त्याग अर्थात् तीस दिन का अनशन करके मृत्युकाल आने पर समाधिमरण को प्राप्त हुआ। देह त्यागकर वह सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशानकोण में स्थित अरुण विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। यहाँ बहुत से देवताओं की आयु स्थिति चार पल्योपम की बताई गई है। आनन्द की आयु स्थिति भी चार पल्योपम कही गई है।

CONCLUSION ABOUT ANAND'S LIFE

86. Thus, Anand followed many rules of primary vows and other supporting vows. He followed the householders' vows for twenty years. He observed eleven *Pratimas* of the householder carefully and meticulously. In the end he observed *Samlekhana* for one month and avoided food for sixty occasions continuously, *i.e.,* for thirty days. He was equanimous at the time of his death. After leaving this physical body, he was re-born in *Saudharma* abode in *Arun Viman* in the north-east corner of *Saudharmavatansak Viman.* There many gods have life-span of four *palyopam.* His life-span is also of four *palyopam.*

८७. "आणंदेणं भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।" । निक्खेवो ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमं आणंदे अज्झयणं समत्तं ॥

८७. गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से प्रश्न किया-"भन्ते ! आनन्द उस देव आयु, भव तथा स्थिति के क्षय होने पर देव शरीर का परित्याग कर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा?"

भगवान महावीर ने कहा-"गौतम ! आनन्द महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और वहाँ से सिद्धगति प्राप्त करेगा।"

[निक्षेप-सुधर्मा स्वामी ने कहा-"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशांगसूत्र के प्रथम अध्ययन का यह भाव बतलाया है, वैसा ही मैंने तुमसे कहा है।"]

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का प्रथम आनन्द अध्ययन समाप्त ॥

87. Gautam Swami asked Bhagavan Mahavir—"Bhante ! Where shall Anand be re-born after completing the angelic life and leaving the divine body."

Bhagavan Mahavir replied—"Gautam ! Anand shall take birth in Mahavideh area and from there he shall get salvation."

[**Nikshep**—Sudharma Swami said—"Jambu ! Shraman Bhagavan Mahavir had mentioned this in the first chapter of *Upasak-dasha Sutra* and I have told you exactly what the Lord had mentioned."]

● **FIRST CHAPTER CONCLUDED** ●

कामदेव गाथापति : द्वितीय अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ श्रमण भगवान महावीर के समय में पूर्व बिहार में चम्पा नामक नगरी थी। सम्भवतः चम्पा नगरी आज जहाँ भागलपुर है, उसके आसपास थी। कुछ अवशेष, चिह्न आदि आज भी वहाँ विद्यमान हैं। नगर के बाहर पूर्णभद्र यक्ष का प्राचीन मन्दिर था। जैन साहित्य में मुख्यतः दो यक्षों का वर्णन आता है-मणिभद्र और पूर्णभद्र। नगरों के बाहर इन यक्षों के सुन्दर रमणीय चैत्य जिसे यक्षायतन या मन्दिर भी कहा जाता है, बने मिलते थे।

✦ चम्पा में कामदेव नामक एक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। कामदेव एक बहुत समृद्ध एवं सम्पन्न गृहस्थ था। उसकी सम्पत्ति गाथापति आनन्द से भी बढ़ी-चढ़ी थी। दस-दस हजार गायों के छह गोकुल थे। इतने बड़े वैभवशाली पुरुष के दास-दासियों, कर्मचारियों आदि की संख्या भी बहुत बड़ी रही होगी। लौकिक भाषा में जिसे सुख, समृद्धि तथा सम्पन्नता कहा जाता है, वह सब कामदेव को प्राप्त था।

✦ कामदेव का पारिवारिक जीवन सुखी था। वह एक सौजन्यशील तथा मिलनसार व्यक्ति था। वह समाज में अग्रगण्य था। राजकीय क्षेत्र में उसका भारी सम्मान था। नगर के सम्भ्रान्त और प्रतिष्ठित जन महत्त्वपूर्ण कार्यों में उसका परामर्श लेते थे।

✦ आनन्द की तरह कामदेव के जीवन में भी एक नया मोड़ आया। श्रमण भगवान महावीर पाद-विहार करते हुए चम्पा में पधारे। पूर्णभद्र नामक चैत्य में रुके। इससे अनुमान होता है, चैत्य से लगता हुआ ही कोई विशाल उद्यान या सभागार भी होगा, जहाँ भगवान अपने विशाल शिष्य-परिवार के साथ रुकते, धर्मदेशना देते थे। अन्यान्य धर्मानुरागी नागरिक वहाँ पहुँचे। कामदेव को जब यह ज्ञात हुआ, तो वह धर्म सुनने की उत्कंठा लिए भगवान की सेवा में पहुँचा। धर्मदेशना श्रवण की। आनन्द की तरह उसने भगवान से श्रावक धर्म स्वीकार किया। इससे प्रतीत होता है, कामदेव पहले से ही भगवान महावीर के प्रति श्रद्धाशील रहा होगा और उनके प्रवचन भी सुन चुका होगा।

✦ आनन्द की ही तरह फिर उसके जीवन में दूसरा मोड़ आया। उसने पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपे। स्वयं अधिकाधिक धर्मसाधना में लग गया। शील, व्रत, त्याग, प्रत्याख्यान आदि की आराधना में उसने तन्मय भाव से अपने को रमा दिया। एक परीक्षा की घड़ी आई। वह पौषधशाला में पौषध लिए बैठा था। उसकी साधना में विघ्न करने के लिए एक

मिथ्यात्वी देव आया। उसने कामदेव को भयभीत और संत्रस्त करने हेतु एक अत्यन्त भीषण, विकराल, भयावह पिशाच का रूप धारण करके अनेक भयानक दुःसह उपसर्ग दिये। जिनका वर्णन पढ़ने से ही हृदय रोमांचित हो उठता है। इन उपसर्गों में कामदेव की दृढ़ता अत्यन्त सराहनीय रही, जिसकी प्रशंसा स्वयं भगवान महावीर करते हैं।

✦ कामदेव ने बीस वर्ष तक श्रमणोपासक धर्म का सम्यक् परिपालन किया, ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की, एक मास की अन्तिम संलेखना तथा अनशन द्वारा समाधिपूर्वक देह-त्याग किया। आनन्द श्रावक की तरह कामदेव श्रावक का जीवन भी अत्यन्त प्रेरणाप्रद आदर्श जीवन-शैली का प्रतीक है।

GIST OF THE CHAPTER

- There was a city named Champa in east Bihar during the time-period of Bhagavan Mahavir. Possibly it was somewhere near the present town of Bhagalpur. Some structures, ruins, etc., are still in existence there. There was the temple of Puran Bhadra *Yaksha* at the outskirts of Champa. In Jain literature there is a detailed description about two *Yakshas*—Mani Bhadra and Puran Bhadra. Outside the town, there were beautiful, worth-seeing *chaityas* of the said *Yakshas*. These *chaityas* were also termed as *Yakshayatan* (the abode of *yakshas*) or temples.
- Kamdev *Gathapati* lived in Champa. Bhadra was his wife. Kamdev was a well-to-do and respectable householder. His wealth was much more than that of Anand. He had six *gokuls* of ten thousand cows each. His employees, servants and maids were also in large number. In ordinary terms, Kamdev had all the comforts of worldly life.
- The family life of Kamdev was very happy. He was social and lovable person. He was among the elite of the city. He commanded great respect in the administrative set-up. The leaders and respectables used to consult him in all important matters.
- Like Anand, there occurred a turning point in Kamdev's life. Bhagavan Mahavir once reached Champa during his wanderings on foot. He stayed at Puran Bhadra *Chaitya*. It is understood that there must have been a spacious garden or a hall where the Lord could stay with his large group of disciples (Monks) and deliver his sermon. Persons of different faith having interest in philosophical discourses reached there. When Kamdev learnt about it, he also came to the Lord with a great curiosity to listen to religious

discourse. He listened to the sermon of Bhagavan Mahavir attentively and like Anand, accepted the vows of *Shravak* (householder). This fact shows that Kamdev had already faith in Bhagavan Mahavir and might have heard his sermons earlier.

- Like Anand, there came a turning point in Kamdev's life. He passed on his social and family responsibilities to his eldest son and engaged himself more and more in religious practices. He grossly occupied himself in meticulously following the partial vows, the religious restraints, etc. Then there happened to be a period of his test. He was sitting in the *Paushadhshala.* A god observing false faith appeared there in order to disturb him. He turned his appearance extremely ferocious and frightening, worse-looking like that of Satan. He then gave many dreadful troubles to Kamdev whose description moves even the strongest person, firmness of Kamdev in his vows in the said circumstances was extremely worth appreciation. Even the Lord had a word of praise for his firmness in this situation.

- Kamdev followed the religious vows of a householder for twenty years. He practiced the eleven *Pratimas* of *Shravak.* He observed *Maranantik Samlekhana* for one month avoiding completely all types of foods and drinks. He then died in peace. Like Anand, the life of Kamdev is also extremely inspiring to the lay followers.

कामदेवे गाहावई : बीयं अज्झयणं
कामदेव गाथापति : द्वितीय अध्ययन
KAMDEV *GATHAPATI* : SECOND CHAPTER

८८. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

८८. आर्य सुधर्मा से जम्बू स्वामी ने पूछा-"भगवन् ! सिद्धगति को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर ने सातवें अंग उपासकदशा के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ-आशय प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?"

88. Jambu Swami asked Acharya Sudharma—"Bhante ! I have heard from you the substance of the first chapter of the seventh *Ang Sutra—Upasak-dasha.* Kindly tell me now the detailed meaning of the second chapter."

कामदेव का जीवन-वृत्त

८९. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया। कामदेवे गाहावई। भद्दा भारिया। छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ वुड्ढिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ। छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। समोसरणं। जहा आणंदो तहा निग्गओ, तहेव सावय-धम्मं पडिवज्जइ।

सा चेव वत्तव्वया जाव जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइं आपुच्छित्ता, जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता जहा आणंदो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्म-पण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

८९. आर्य सुधर्मा ने उत्तर दिया-"जम्बू ! उस काल-वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे के अन्त में, उस समय-जब भगवान महावीर विद्यमान थे, चम्पा नामक नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य और जितशत्रु राजा था। वहाँ कामदेव गाथापति रहता था और उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। छह करोड़ हिरण्य उसके खजाने में थे, छह करोड़

व्यापार में लगे थे तथा छह करोड़ गृह एवं तत्सम्बन्धी उपकरण, वस्त्र, रथ आदि में लगे हुए थे। उसके छह व्रज-गोकुल थे। प्रत्येक व्रज में दस हजार गाएँ थीं, अर्थात् साठ हजार पशुधन था।

भगवान महावीर पधारे और उनका समवसरण हुआ। कामदेव भी आनन्द की तरह घर से निकला और श्रमण भगवान महावीर के पास आया। उसी प्रकार श्रावक धर्म स्वीकार किया। यह सब वृत्तान्त आनन्द के समान समझना चाहिए यावत् कामदेव भी ज्येष्ठ पुत्र एवं मित्रवर्ग तथा जाति बन्धुओं से पूछकर पौषधशाला में गया। वहाँ जाकर आनन्द की तरह श्रमण भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्मप्रज्ञप्ति अंगीकार करके विचरने लगा।

KAMDEV'S LIFE

89. Acharya Sudharma replied—"Jambu ! In the fag end of the fourth division of the *Avasarpini* time-cycle when Bhagavan Mahavir was present, there was a city called Champa. There was Purna Bhadra temple. Jitshatru was ruling there. Kamdev lived there. His wife was Bhadra. He had sixty million gold coins in his treasure, sixty millions in business, and sixty millions spent in household articles including furniture, utensils, clothes, chariots etc. He had six *gokuls* of ten thousand cows each. In other words he had sixty thousand animals.

Bhagavan Mahavir reached there and addressed the congregation. Like Anand, Kamdev also came out of his house and came to Bhagavan Mahavir. He accepted the vows of an householder. All the remaining versions should be taken as similar to that of Anand. He also handed over his responsibilities to the eldest son and with the permission of his eldest son, friends and social circle, he came to the *Paushadhshala.* He meticulously followed the religious vows and restraints as detailed by Bhagavan Mahavir.

९०. तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे मायी मिच्छदिट्ठी अंतियं पाउब्भूए।

९०. एक बार आधी रात बीत जाने पर कामदेव श्रमणोपासक के समक्ष एक मिथ्यात्वी देव प्रकट हुआ।

THE TURBULENCE OF A GOD OF WRONG FAITH

90. Once at mid-night, gods of ill faith appeared before Kamdev.

विवेचन—जब साधक एकनिष्ट भाव से उत्कृष्ट तपस्या, ध्यान, आराधना, उपासना करता है, उस उपासना काल में अनेक प्रकार के भयोत्पादक, मोहवर्धक विघ्न उपस्थित होने के वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में बहुलता से प्राप्त होते हैं। राक्षसों, पिशाचों, मायावी देव-देवियों द्वारा ऐसे मोहोत्पादक अथवा भयभीत करके विचलित करने वाले प्रयत्न समय-समय पर साधकों के सम्मुख होते रहते हैं।

वैदिक ग्रन्थों में ऋषियों व साधकों के तप व यज्ञ अनुष्ठानों में विघ्न डालने की अनेक घटनाएँ वर्णित हैं। बौद्ध साहित्य में बुद्ध के मारविजय आदि प्रसंग भी इसी श्रेणी के हैं।

जैन साहित्य में भी इस प्रकार के वर्णन प्राप्त होते हैं। स्वयं भगवान महावीर आदि तीर्थंकरों के समक्ष इस प्रकार के उपद्रव हुए हैं। प्रस्तुत आगम में श्रावकों के समक्ष इसी प्रकार पिशाचों के उपद्रवों का यह रोमांचक वर्णन आता है।

Explanation—When a disciple observes the austerities of the highest order, deeply meditates with complete concentration, many frightening and attachment provoking situations arise and ancient literature is full of such descriptions. The *Rakshasas,* evil gods, treacherous gods and goddesses make seditious efforts to inspire feelings of attachment or dreadful fear in the practitioner from time to time.

In Vedic literature, there are many stories of turbulence in the austerities and fire-sacrifices performed by *Rishis* and the practitioners. In Buddhist literature, the Marvijay incident in Buddha's life belongs to this very category.

Jain literature also contains such descriptions. Even Bhagavan Mahavir and several other *Tirthankars* faced such

situations. In the present *Agam*, there is a thought-provoking description of turbulence caused by Satanic gods.

पिशाचरूपधारी देव का विकराल रूप

९१. तए णं से देवे एगं महं पिसायरूवं विउव्वइ। तस्स णं देवस्स पिसायरूवस्स इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते–

सीसंसे गो-कलिंज-संठाण-संठियं, सालिभसेल्लसरिसा से केसा, कविलतेएणं दिप्पमाणा, महल्ल-उट्टिया-कभल्ल-संठाण-संठियं निडालं, मुगुंसपुञ्छं व तस्स भुमगाओ फुग्गफुग्गाओ विगय-बीभच्छ-दंसणाओ, सीस-घडि-विणिग्गयाइं अच्छीणि विगय-बीभच्छ-दंसणाइं, कण्णा जह सुप्प-कत्तरं चेव विगय-बीभच्छ-दंसणिज्जा, उरब्भ-पुड-संन्निभा से नासा, झुसिरा-जमल-चुल्ली-संठाणसंठिया दोवि तस्स नासापुडया, घोडय-पुञ्छं व तस्स मंसूइं कविल-कविलाइं विगय-बीभच्छ-दंसणाइं उट्ठा उट्टस्स चेव लंबा, फालसरिसा से दंता, जिब्भा जह सुप्प-कत्तरं चेव विगय-बीभच्छ-दंसणिज्जा, हल-कुद्दाल-संठिया से हणुया, गल्ल-कडिल्लं च तस्स खड्डं फुट्टं कविलं फरुसं महल्लं, मुइंगाकारोवमे से खंधे, पुर-वर-कवाडोवमे से वच्छे, कोट्ठिया-संठाणसंठिया दोवि तस्स बाहा, निसापाहाण-संठाणंसंठिया दोवि तस्स अग्गहत्था, निसालोढ-संठाणसंठियाओ हत्थेसु अंगुलीओ, सिप्पिपुडग-संठिया से नक्खा, ण्हाविय-पसेवओ व्व उरंसि लंबंति दोवि तस्स थणया, पोट्टं अयकोट्ठओ व्व वट्टं, पाणकलंद सरिसा से नाही, सिक्कग संठाणसंठिया से नेत्ते, किण्ण पुड संठाणसंठिया दोवि तस्स वसणा, जमल कोट्ठिया-संठाणसंठिया दोवि तस्स ऊरू, अज्जुण-गुट्टं व तस्स जाणूइं कुडिल-कुडिलाइं विगय-बीभच्छ-दंसणाइं, जंघाओ कक्खडीओ लोमेहिं उवचियाओ, अहरी-संठाणसंठिया दोऽवि तस्स पाया, अहरी-लोढ-संठाणसंठियाओ पाएसु अंगुलीओ, सिप्पि-पुड-संठिया से नक्खा।

९१. उस मायावी देव ने एक विकराल विशालकाय पिशाच का रूप धारण किया।

उस पिशाच का सिर गो-कलिंज अर्थात् गाय को चारा डालने की बाँस की ओंधी की हुई टोकरी के समान था। उसके बाल शालिभसेल्ल अर्थात् चावल आदि की मंजरी के तन्तुओं के समान रूखे और मोटे भूरे रंग के थे। ललाट मटके के खप्पर समान

कामदेव को उपसर्ग THE TURBULATION CAUSED TO KAMDEV BY THE DEMON

चित्र परिचय ७

Illustration No. 7

कामदेव को पिशाच का उपसर्ग

किसी समय श्रावक कामदेव पौषधशाला में एकान्त स्थान में धर्माराधना कर रहा था। आधी रात के समय उसके सामने एक भयंकर पिशाचरूपधारी देव प्रकट हुआ। वह देव अत्यन्त रौद्र और डरावना था। उसके बाल मोटे-रूखे बिखरे हुए थे। मटकी जैसी आँखें, सूप जैसे कान, मेंढ़े के सींग जैसी चपटी घुमावदार नाक, हल में लगी लोहे की कुश जैसे नुकीले दाँत थे। उसने गुफा जैसा मुँह फाड़ रखा था। उसने गले में गिरगिटों की और चूहों की माला पहन रखी थी। उसके कानों में कुण्डलों के स्थान पर नेवले लटक रहे थे। देह पर काले साँपों को दुपट्टे की तरह लपेट रखा था। उसके हाथ में तेज धार वाली तलवार चमक रही थी। देव भयंकर अट्टहास करता हुआ पौषधशाला में बैठे कामदेव श्रावक के सामने उपस्थित होकर उसे डराने लगा और धमकी देता हुआ बोला "कामदेव ! मैं कहता हूँ तू इस शील और पौषध व्रत को छोड दे। यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं इस तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।"

-उपासकदशा, अ. २, सूत्र ९३-९७

TURBULATIONS CAUSED TO KAMDEV BY THE DEMON

Once *Shravak* Kamdev was engaged in spiritual practice in a lonely place in the *Paushadhshala*. At mid-night, a dreadful demon-god appeared before him. That god was extremely ferocious and contemptible. His hair were thick and scattered. His eyes were like big bowls. His ears were like thrashing plank. His nose was like horns of a ram, flat and curved. His teeth were pointed like thick blade of a plough. He had opened his mouth like a cave. He was wearing a rosary of mice around his neck. Mongoose were hanging from his ears in place of ear-rings. His body was covered with black snakes like a cloth. He was holding a sharp sword in his hand. The demon-god made a dreadful laughter. He came to Kamdev *Shravak* in the *paushadhshala* and started terrifying him. In a threatening voice, he said—"Kamdev ! I direct you to discard your vows and the *Paushadh* restraints. In case you do not yield, I shall cut you into pieces with this sword."

—Upasak-dasha, Ch. 2, Sutra 93-97

लम्बा-चौड़ा था। भौहें गिलहरी की पूँछ की तरह बिखरी हुई और दीखने में बड़ी घृणोत्पादक थीं। आँखें अत्यन्त विकृत टेढ़-मेढ़ी थीं, ऐसा प्रतीत होता था जैसे मटके में दो छेद हों। टूटे हुए छाज के समान कान थे। मेंढ़े जैसी नाक चपटी थी और उसमें गड्ढे के समान छेद थे जो जुड़े हुए दो चूल्हों के समान प्रतीत होते थे। घोड़े की पूँछ जैसी रूखी मूँछें भूरी तथा विकृत थीं। ऊँट के होंठों के समान लम्बे होठ थे। फाल के समान तीखे दाँत थे। छाज के टुकड़े के समान विकृत और देखने में डरावनी जीभ थी। उसकी ठुड्डी (जबड़े) हल कुदाल की नोंक के समान उभरी हुई थी। गाल कड़ाही के समान अन्दर को धँसे हुए गढ़े जैसे और फटे हुए भूरे रंग के और वीभत्स रूप थे। उसके कंधे ढोल के जैसे थे। छाती नगर द्वार के फाटक जैसी चौड़ी थी। कोष्ठिका–लोहा आदि जलाने में काम आने वाली फूँकनी के समान भुजाएँ थीं। नाखून सीपियों के जैसे तीखे और मोटे थे। दोनों स्तन छाती पर से लटक रहे थे, जैसे नाई के उस्तरा आदि रखने की चमड़े की थैलियाँ हों। पेट लोहे के कोठे के समान गोलाकार था। नाभि ऐसी गहरी थी जैसी जुलाहे का आटा–माँड घोलने का कुंडा हो। जननेन्द्रिय छींके की तरह था। दो अण्डकोष भरे हुए दो थैलों (बोरियों) के समान थे। उसकी दोनों जंघाएँ एक जैसी आकार वाली दो कोठियों के समान थीं। घुटने अर्जुन वृक्ष के गुच्छे–गाँठ के समान टेढ़े-मेढ़े, विकृत और वीभत्स थे। बालों से भरी कठोर पिण्डलियाँ थीं, दोनों पैर दाल पीसने की शिला के समान थे। पैरों की अंगुलियाँ लोढ़ी जैसी आकृति वाली और पैरों के नख सीप के समान थे।

TREACHEROUS GOD MADE AN FEROCIOUS APPEARANCE

91. The head of that demon was *Go-Kalinja, i.e.,* similar to an overturned bamboo basket used for cattle feed. His hair were *Shali-bhasella, i.e.,* dry and thick like threads oozing out of paddy crops. The forehead was long and wide like the lower portion of a large pot. The eye-brows were scattered like tail of a squirrel and were contemptible to look at. His eyes were very zig-zag and looked like two holes in a large pitcher. His ears were like broken winnow (*chhaj*). His nose was flat like that of a sheep and it had holes like pits and looked like two interconnected hearths. His moustache was like the tail of a horse brown in colour and distorted. His lips were long like that of a camel. His teeth were like a span. His chin was raised like the edge of a spade. His cheeks were

pitched in like a frying vessel (*Karahi*) and were brown, dreadful and pressed. His shoulders were like drums. His chest was wide like the main gate of a town. His arms were like a blowing wooden tube used in melting the iron. His nails were sharp and thick like shells. His breasts were hanging from the chest like bags of a barber used to keep razor, etc. His belly was round like an iron of a weaner used to prepare flour for bread. His penis was like a hanging pot (*Chheeka*). His penis were like two filled bags. His thighs were like two identical pots. His knees were non-straight, dreadful and distorted like branches of an Arjun tree. His shins were hard having thick growth of hair. His feet were like flagstone used for grinding pulses. His toes were like *lorhi* (cylindrical grinding stone) and their nails were like shells.

देव द्वारा कामदेव को तर्जना

१२. लडह-मडह-जाणुए विगय-भग्ग-भुग्ग-भुमए अवदालिय-वयण-विवर-निल्लालियग्गजीहे, सरड-कय-मालियाए, उंदुर-माला-परिणद्ध-सुकयचिंधे, नउल-कय-कण्ण-पूरे, सप्प-कय-वेगच्छे, अप्फोडंते, अभिगज्जंते, भीम-मुक्कट्टट्टहासे, नाणाविहपंचवण्णेहिं लोमेहिं उवचिए।

एगं महं नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसि-कुसुम-प्पगासं असिं खुरधारं गहाय, जेणेव पोसहसाला, जेणेव कामदेवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसियमाणे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी– "हं भो कामदेवा ! समणोवासया ! अपत्थियपत्थिया ! दुरंत-पंत-लक्खणा ! हीण-पुण्ण-चाउद्दसिया ! हिरि-सिरी-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! धम्मकामया ! पुण्णकामया ! सग्गकामया ! मोक्खकामया ! धम्मकंखिया ! पुण्णकंखिया ! सग्गकंखिया ! मोक्खकंखिया ! धम्मपिवासिया ! पुण्णपिवासिया ! सग्गपिवासिया ! मोक्खपिवासिया ! नो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया ! जं सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा, खोभित्तए वा, खंडित्तए वा, भंजित्तए वा, उज्झित्तए वा, परिच्चइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं जाव पोसहोववासाइं न

छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज इमेणं नीलुप्पल जाव असिणा खंडाखंडिं करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे, अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।''

९२. उस पिशाच के घुटने मोटे और गाड़ी के पीछे ढीले बँधे काठ की तरह लड़खड़ा रहे थे। उसकी भौंहें विकृत, अस्त-व्यस्त तथा कुटिल थीं। उसने अपना दरार जैसा मुँह फाड़ रखा था और जीभ बाहर निकाल रखी थी। उसने गिरगिटों और चूहों की मालाएँ पहन रखी थीं। यही उसकी मुख्य पहचान थी। उसके कानों में कुण्डल की जगह नेवले लटक रहे थे। उसने अपने शरीर पर साँपों को दुपट्टे की तरह लपेट रखा था। वह भुजाओं पर अपने हाथ ठोंक रहा था। हाथ-पैर फटकारते हुए गरज रहा था। उसने भयंकर अट्टहास किया। उसका शरीर पाँच वर्ण के बालों से आच्छादित था।

वह पिशाच नीले कमल के समान, भैंसे के सींग के समान टेढ़े तथा अलसी के फूल जैसी चमकती हुई तीक्ष्ण धार वाली तलवार हाथ में लेकर पौषधशाला में कामदेव के पास पहुँचा और अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित तथा विकराल होकर हाँफता हुआ तेज साँस छोड़ता हुआ बोला-''अरे कामदेव ! जिसे कोई नहीं चाहता तू उस मौत की इच्छा कर रहा है ! तू दुष्टपर्यवसान-दुःखमय अन्त वाला और अशुभ लक्षणों वाला है। अशुभ चतुर्दशी अमावस्या को पैदा हुआ है। तू लज्जाहीन, लक्ष्मीहीन, धैर्य तथा कीर्तिरहित है। धर्म, स्वर्ग तथा मोक्ष की कामना करता है। धर्म तथा स्वर्ग की आकांक्षा रखता है, धर्मपिपासु है। हे देवानुप्रिय ! तुझे अपने शील, व्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से विचलित होना, क्षुभित होना, उन्हें खंडित करना, भंग करना, त्याग और परित्याग करना नहीं कल्पता है। इनका पालन करने को तूने प्रतिज्ञा कर रखी है। किन्तु यदि तू आज शील आदि यावत् पौषधोपवासों को नहीं छोड़ेगा, भंग नहीं करेगा तो इस नील-कमल के समान श्याम रंग की तीखी तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा, जिससे तू आर्त्तध्यान करता हुआ, दुःख भोगता हुआ अकाल में ही प्राणों से हाथ धो बैठेगा।''

ANGER OF THE DEMON AT KAMDEV

92. The knees of that demon were thick and staggering like the wooden plank tied behind a cart. His eye-brows were distorted, scattered and treacherous. He had opened his mouth ajar and his tongue was coming out. He was

wearing a rosary of mice and chameleon. This was the main sign of his identification. Mangoose were hanging from his ears instead of ear-rings. He had covered his body with snakes instead of cloth. He was slapping his arms with his palms. He was roaring and beating his hands and feet. He was making a dreadful laugh. His body was covered with hair of five different colours.

That demon came to Kamdev in the *Paushadhshala* with a blue lotus like colour, buffalo's horn like, distorted, linseed flower like shining sharp-edged sword. He in an extremely angry, harsh, insulting, dreadful voice and breathing and gasping fast said—"O Kamdev ! You are desiring a death that none else desire. You are a person whose end is going to be painful and of evil symptoms. You are born on an ill-omenary, fourteenth day of the fortnight, on last day of the dark fortnight. You are shameless, penniless, and devoid of courage and honour. You desire *dharma,* heaven and salvation. You intend *dharma* and heaven. You have keen desire for *dharma.* O beloved of the angels ! It is not within your limits to weaken your partial vows, supporting vows, other restraints and *Paushadhopvas.* It is not desirable of you to break these vows and to distort them. You have made up your mind to follow the vows meticulously. But in case you do not break these vows, the partial vows, *Paushadhopvas,* etc., I shall cut you into pieces with this blue lotus like dark and sharp sword. You shall then die in evil painful thought, crying in distress much before your destined life-span.

कामदेव की दृढ़ता

९३. तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं पिसायरूवेणं एवं वुत्ते समाणे, अभीए, अत्तत्थे, अण्णुव्विग्गे, अक्खुभिए, अचलिए, असंभंते, तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

चित्र परिचय ९

Illustration No. 9
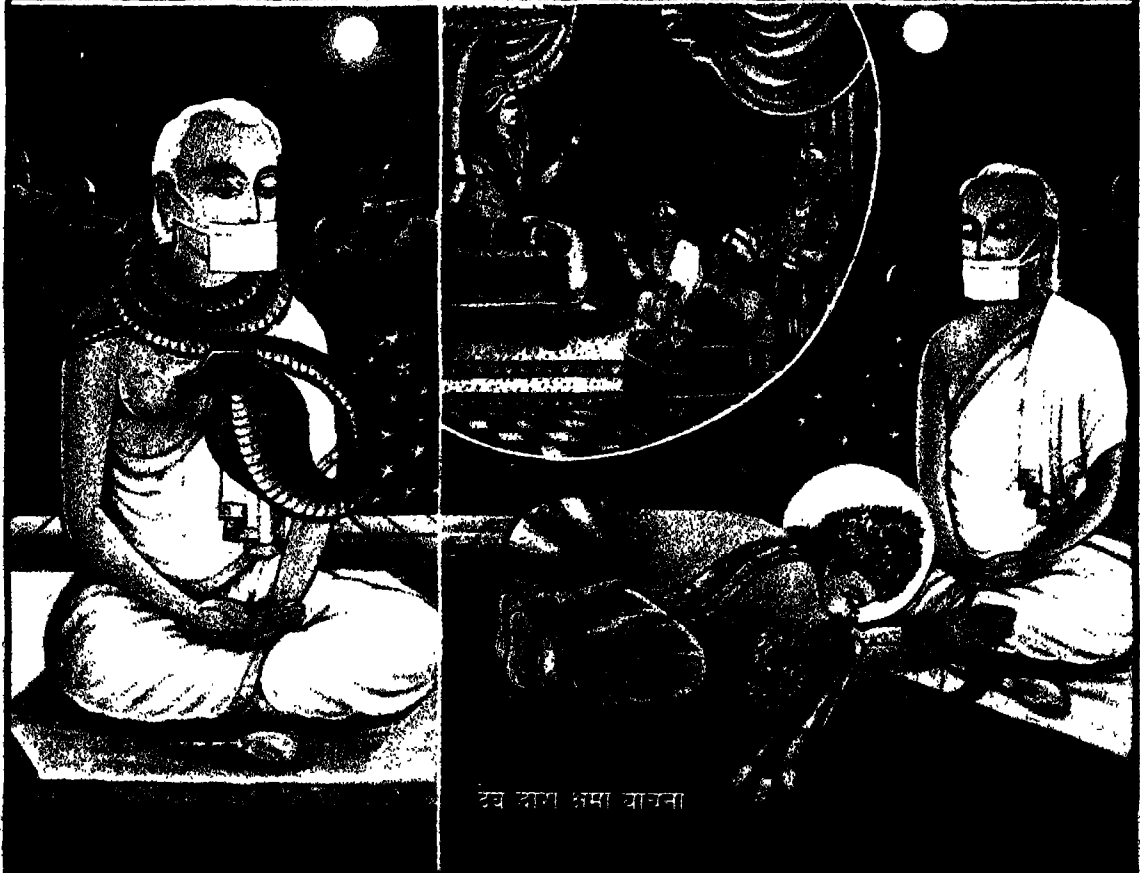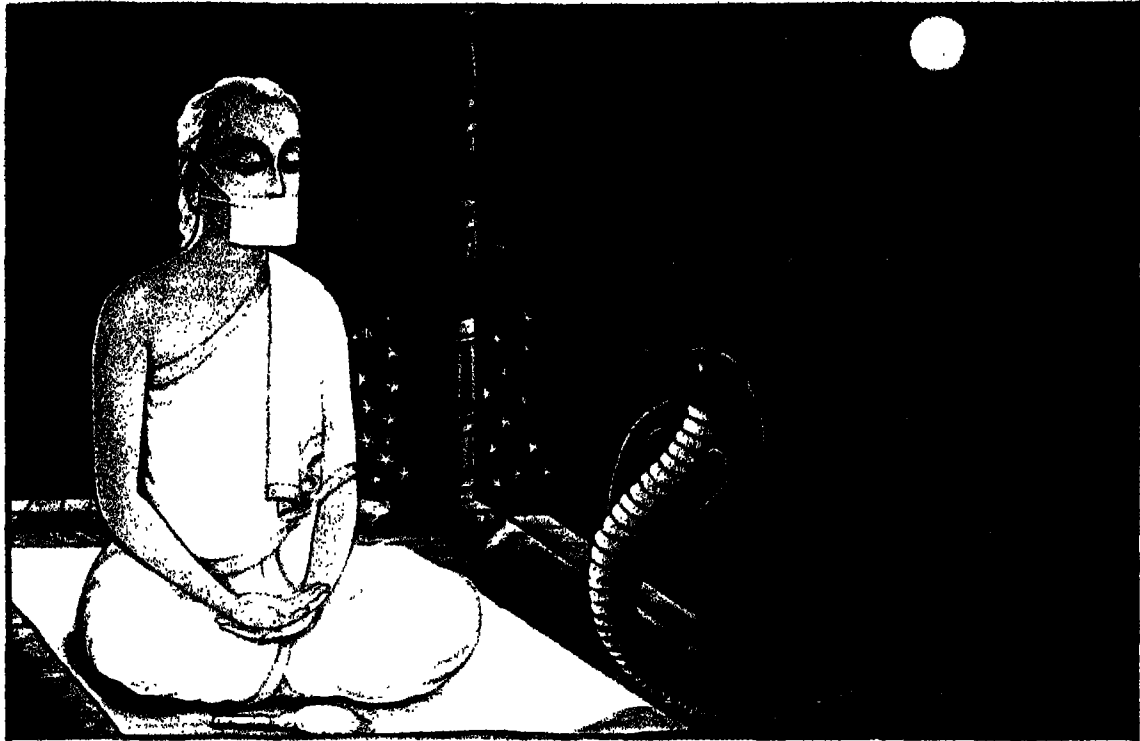
कामदेव को सर्प का उपसर्ग

कामदेव को धर्माराधना में अविचल देखकर देव ने पुनः एक भयानक काले सर्प का रूप धारण किया और बोला-"कामदेव ! मैं फिर कह रहा हूँ, यदि तू अपने शीलव्रत आदि को आज नहीं छोड़ेगा मैं तेरे गले में तीन लपेट लगाकर तुझे विष बुझे दाँतों से काटूँगा। छाती पर डंक मारूँगा जिससे तू बेमौत मारा जायेगा।"

सर्परूपधारी देव की धमकियों से भी कामदेव का मन नहीं डिगा। तब साँप ने उसके गले में तीन लपेट लगाकर तेज डंक मारे। तीव्र जहर से उसके शरीर में भयंकर वेदना हुई परन्तु फिर भी वह शान्त और स्थिर रहा।

अन्त में देव हार गया। उसने अपना दिव्य देवरूप प्रकट किया और कामदेव के चरणों में झुककर बोला- "देवानुप्रिय ! सौधर्मदेवलोक के अधिपति शक्रेन्द्र ने तुम्हारी दृढ़धर्मिता की बहुत प्रशंसा की, जिसे सुनकर मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया। मैंने तुम्हें असह्य कष्ट दिये, मेरा अपराध क्षमा करना, तुम धन्य हो।" प्रशंसा करता हुआ देव वापस चला गया।

- उपासकदशा, अ. २, सूत्र १०८-११०

TURBULATION BY SNAKE TO KAMDEV

Finding Kamdev firm in his spiritual practice, the demon-god again appeared in the form of a black dreadful serpent and said—"Kamdev ! I am warning you again that in case you do not discard your vows today, I shall encircle your neck thrice, and bite you with my venomous teeth. I shall bite your chest and then you shall meet an untimely end."

Kamdev did not feel bewildered even at the threats of the Serpentine-god. Then the Serpent-shaped demon-god made three circles around his neck and sharply bit him. Due to the dangerous poison, he felt dreadful pain but even then he remained calm and firm.

At last the demon-god felt dejected. He appeared in his original angelic form and bowed at the feet of Kamdev. He further said—"O beloved of gods ! The master of *Saudharm-devlok*, Shakrendra, had praised your firmness in spiritual faith. After hearing it, I had come to test your spiritual faith. I gave you unbearable tortures. Kindly forgive my sins. You are really praiseworthy. Appreciating Kamdev, the angel went away.

—Upasak-dasha, Ch. 2, Sutra 108-110

९३. पिशाचरूपधारी देवता द्वारा ऐसा कहने पर भी कामदेव श्रावक भयभीत नहीं हुआ, न त्रस्त हुआ, न उद्विग्न हुआ, न क्षुभित हुआ, न चंचलता आई और न घबराहट हुई। वह शान्त चुपचाप धर्मध्यान में स्थिर बना रहा।

FIRMNESS OF KAMDEV

93. Kamdev did not get frightened at the threat of the demon god. He was not agitated, distressed or bewildered. He remained quiet and firm in spiritual meditation.

९४. तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं एवं वयासी– "हं भो ! कामदेवा ! समणोवासया ! अपत्थियपत्थिया ! जइ णं तुमं अज्ज जाव ववरोविज्जसि।"

९४. तब उस पिशाचरूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय, शान्त यावत् धर्मध्यान में निरत देखा तो वह क्रमशः दूसरी बार, तीसरी बार इस प्रकार बोला–"अरे मौत को चाहने वाले कामदेव ! यदि आज तू शीलादि व्रतों को नहीं छोड़ेगा तो अपने प्राणों को गँवा बैठेगा।"

94. When the demon saw Kamdev fearless, quiet and steadfast in meditation he repeated his threat second time and again the third time. He further said—"O Kamdev—desirous of Death ! In case you do not relinquish your partial vows today you shall lose your life."

९५. तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे, अभीए जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

९५. श्रमणोपासक कामदेव उस देव के द्वारा दूसरी और तीसरी बार ऐसा कहे जाने पर भी निर्भय होकर यावत् धर्मध्यान में लीन बना रहा।

95. *Shramanopasak* Kamdev remained fearless and deeply absorbed in philosophical meditation even at the second and the third threat of the demon.

९६. तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता आसुरत्ते, ५ तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु, कामदेवं समणोवासयं नीलुप्पल जाव असिणा खंडाखंडिं करेइ।

९६. उस पिशाचरूपधारी देव ने देखा कि इतना कहने पर भी कामदेव श्रमणोपासक निर्भय और शान्त यावत् धर्मध्यान में स्थिर है। तब वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और ललाट पर तीन भृकुटियाँ चढ़ाकर नील-कमल के समान तलवार से कामदेव पर प्रहार कर टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

VIOLENT ATTACK OF THE DEMON

96. When the demon noticed that Kamdev was fearless, quiet and unperturbed in his meditation even at his repeated threats, he became extremely angry. He moved his eye-brows upwards and attacked Kamdev with his lotus-like-sword. He cut him into pieces.

विवेचन–खंडाखंडिं करेइ–"देव ने टुकड़े-टुकड़े कर डाले।" यहाँ एक प्रश्न होता है कि शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने पर भी कामदेव जीवित कैसे रहा? इसका समाधान यह है कि वास्तव में यह देवता द्वारा की गई विकुर्वणा/माया थी। कामदेव को यह लग रहा था कि मेरा शरीर काटा जा रहा है और वह सारी पीड़ा धैर्यपूर्वक सहन कर रहा था किन्तु इसमें वास्तविकता नहीं थी। अगले अध्ययनों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है, जब चूलनीपिता को ऐसा लगता है जैसे उसके पुत्र मार डाले गए हैं और उन्हें गरम तेल के कड़ाहों में पकाया गया। किन्तु जब वह पिशाच को पकड़ने के लिए उठता है और उसका कोलाहल सुनकर माता सामने आई तो उसने कहा–"चिंता मत कर, तेरे सभी पुत्र सुख से सो रहे हैं। उन्हें किसी ने नहीं मारा।" इसी प्रकार कामदेव को भी विचलित करने के लिए भयंकर दृश्य उपस्थित किए गए। यह एक प्रकार की देव माया ही थी।

Explanation—Khandakhandin karei—The demon-god cut him into pieces. Here the question arises as to how Kamdev remained alive even after he was cut into pieces. The clarification is that it was in reality a distortion appearing like cutting of the body and not a factual reality. Kamdev was feeling that his body was being cut and he was bearing the pain courageously. But it

was not a reality. In the following chapters, it is evident that Chulnipita felt as if his sons have been killed and cooked in hot oil. But when he gets up to catch the demon, his mother came on hearing the noise and said—"Don't worry. Your all the sons are sleeping peacefully. None has killed them." In a similar fashion, dreadful scenes were exhibited to disquieten Kamdev. It is a sort of angelic (unreal) presentation.

९७. तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ जाव अहियासेइ।

९७. श्रमणोपासक कामदेव ने उस तीव्र, अत्यधिक कठोर और असह्य वेदना को शान्त चित्त होकर सहन किया और वह धर्मध्यान से विचलित नहीं हुआ।

97. Kamdev *Shramanopasak* endured the extremely sharp, dreadful, unbearable pain with a peaceful mind and remained steadfast in spiritual meditation.

पिशाच द्वारा हाथी का रूप धारण करना

९८. तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता, पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं पिसायरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ, सत्तंगपइट्ठियं सम्मं संठियं सुजायं, पुरओ उदग्गं, पिट्ठओ वराहं, अयाकुच्छिं अलंब-कुच्छिं पलंबलंबोदराधरकरं अब्भुग्गयमउल-मल्लिया-विमल-धवल-दंतं कंचणकोसी-पविट्ठदंतं, आणामिय-चाव-ललिय-संवल्लियग्गसोण्डं कुम्मपडिपुण्ण-चलणं वीसइनक्खं अल्लीण-पमाणजुत्तपुच्छं। मत्तं मेहमिव गुल-गुलेंतं, मण-पवण-जइण-वेगं, दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ।

९८. तब पिशाचरूपधारी देव ने कामदेव को निर्भीक भाव से धर्मध्यान में मग्न देखा। वह उसको निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित करने, विक्षुब्ध करने और उसके

मनोभावों को बदलने में समर्थ नहीं हो सका, तो श्रान्त खेदखिन्न होकर ग्लानि का अनुभव करता हुआ धीरे-धीरे पीछे हटा। पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला और पिशाच रूप को त्याग दिया। फिर देवमाया द्वारा विकराल हाथी का रूप धारण किया। उसके सातों अंग (चार पैर, सूँड़, जननेन्द्रिय और पूँछ) सुगठित थे। शरीर की रचना दृढ़ तथा सुन्दर थी। आगे से उदग्र–उँचा उभरा हुआ और पीछे से सूअर के समान झुका हुआ था। उसकी कुक्षि बकरी की कुक्षि के समान लम्बी और लटकी हुई थी। उसका पेट, होठ और सूँड़ नीचे लटक रहे थे। मुँह से बाहर निकले हुए दाँत बेले की अधखिली कली की तरह निर्मल और सफेद थे। उनके ऊपर सोने का खोल–आवरण चढ़ा था, मानो सोने की म्यान में रखे हुए तलवार हों। सूँड़ का अगला भाग झुके हुए धनुष के समान मुड़ा हुआ था, पैर कछुए के समान परिपुष्ट और चपटे थे। पूँछ सटी हुई तथा समुचित लम्बी थी। वह हाथी मदोन्मत्त था। मेघ के समान गरज रहा था। उसका वेग और मन पवन जैसा तीव्र था।

DEMON IN THE FORM OF AN ELEPHANT

98. The demon-god saw Kamdev engaged in spiritual meditation in a fearless manner. The demon could not succeed in weakening his faith, in bewildering him and in affecting his mental attitude about the teachings of the detached. So he felt tired, dejected and disappointed and started moving back slowly. He came out of the *Paushadhshala* and discarded his demon-like appearance. He then took the shape of a dreadful elephant. His seven parts of the body namely four feet, trunk, reproductive organs and tail were well-built. The structure of his body was well-built and beautiful. He was raised at the front and low at the back like a pig. His waist was long and hanging like that of a goat. His belly, lips and trunk were hanging down. His tusks were projecting outward from the mouth and were clean and white like bud. They had a gold covering like a sword kept in a sheath of gold. The front part of the trunk was like a bent bow. His feet were strong and flat like a tortoise. His tail was thick and long. That elephant was

चित्र परिचय ८

Illustration No. 8
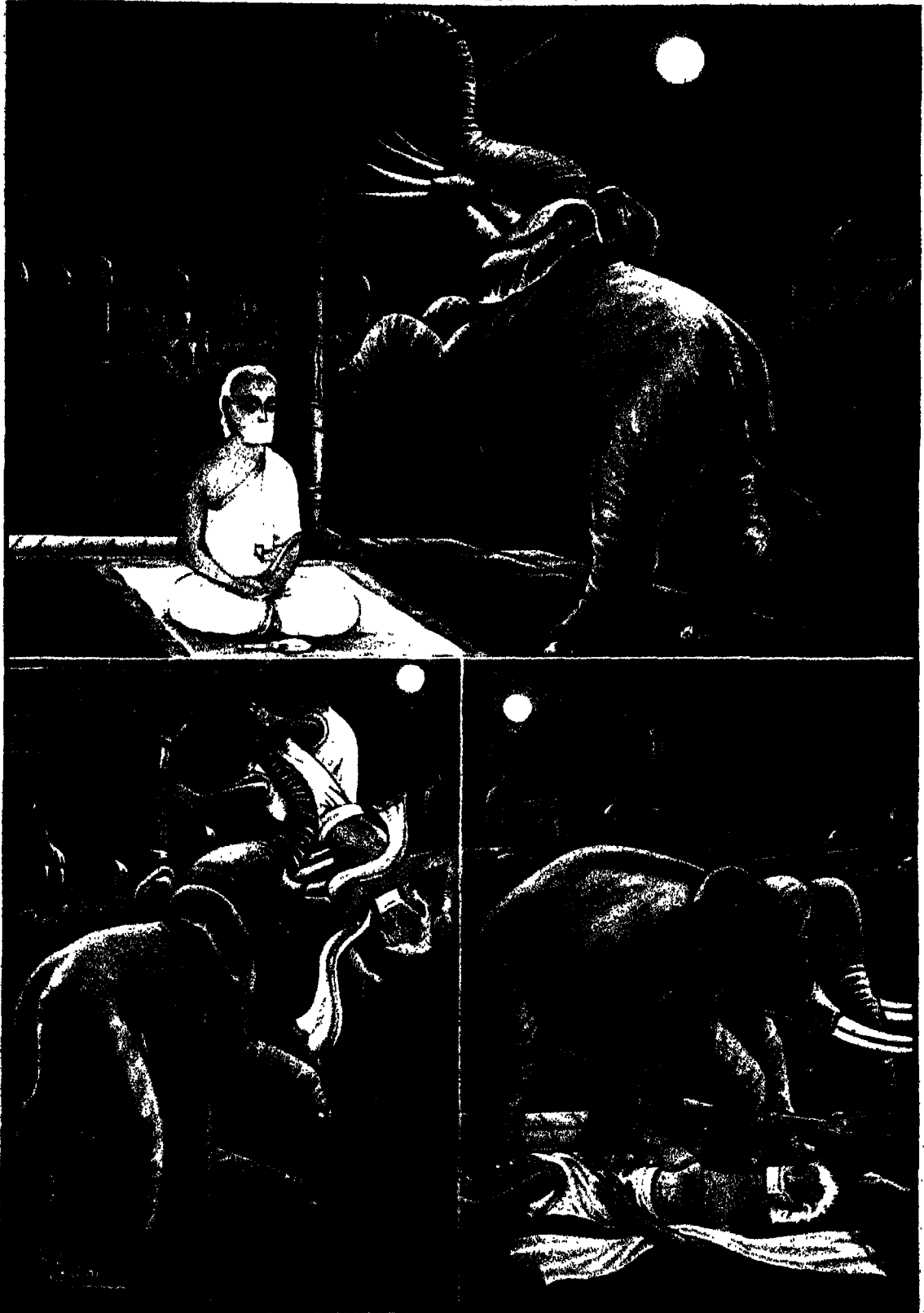
हाथी का उपसर्ग

भयंकर पिशाचरूपधारी देव ने कामदेव को डराया-धमकाया और उस पर तलवार के तीखे प्रहार किये, तब भी वह धर्म से चलित नहीं हुआ।

तब उस हस्तिरूपधारी देव ने कहा-"हे कामदेव ! मै कहता हूँ तू अपने शीलव्रत, गुणव्रत, पौषधव्रतरूप धर्म को छोड़ दे।"

कामदेव ने देव की धमकी सुनी-अनसुनी कर दी। तब क्रोध में लाल-पीला हुआ-वह हस्तिदेव उछला, उछलकर कामदेव को सूँड़ से पकड़ा और आकाश में उछाल दिया। नीचे गिरते हुए कामदेव को मूसल जैसे तीखे दाँतों से पकड़ा और जमीन पर पैरों से रौंदने लगा। कामदेव तब भी शान्त रहा। उस भयंकर वेदना को समभावपूर्वक सहन किया।

--उपासकदशा, अ. २, सूत्र १०४-१०५

ATTACK BY THE ELEPHANT

The dreadful demon-god threatened Kamdev, tried to over-awe him and attacked him with sharp sword. But Kamdev remained firm in his spiritual practice.

Then the demon-god adopting an elephantine look, said—"O Kamdev ! I advise you to discard your primary vows and disciplinary vows, and also the *paushadh* restraints."

But Kamdev ignored the threats of the demon-god. Then in extreme anger, the elephantine-god jumped, held Kamdev in his trunk and threw him in space. While Kamdev was falling down, the demon-god held him in his sharp teeth and started trampling him under his feet. But Kamdev remained quiet. He patiently bore that dreadful torture.

—Upasak-dasha, Ch. 2, Sutra 104-105

intoxicated and roaring like a cloud. His movement and mind was fast like movement of wind.

९९. विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला, जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी-"हं भो ! कामदेवा ! समणोवासया ! तहेव भणइ जाव न भंजेसि, तो ते अज्ज अहं सोंडाए गिण्हामि, गिण्हित्ता पोसहसालाओ नीणेमि, नीणित्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

९९. देवता ऐसे दिव्य हाथी के रूप की विकुर्वणा करके पौषधशाला में कामदेव श्रावक के पास आया और बोला-"अरे कामदेव श्रमणोपासक ! यदि तू अपने शीलव्रत आदि का भंग नहीं करेगा तो मैं तुमको अपनी सूँड़ से पकड़ लूँगा, पकड़कर पौषधशाला के बाहर ले जाऊँगा। फिर आकाश में उछालूँगा और अपने तीखे मूसल समान दाँतों के ऊपर उठा लूँगा। उठाकर तीन बार नीचे पृथ्वी पर पटककर पैरों से कुचलूँगा, जिसके कारण तू अत्यन्त दुःखी होकर आर्त्तध्यान करता हुआ असमय में ही जीवन से हाथ धो बैठेगा। मर जायेगा।"

99. The demon-god after adopting the appearance of such a unique elephant, came to the *Paushadhshala* and said—"O Kamdev *Shramanopasak* ! If you do not abandon your partial vows and other supporting vows, I shall catch you in my trunk, take you out of the *Paushadhshala,* throw you in the sky and then hold you on my sharp mace like tusks. I shall throw you then on the ground and crush you with my feet. You shall then feel deepest pain and lose your life premature in ill thoughts. You shall die a painful death.

१००. तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं हत्थिरूवेणं एवं वुत्ते समाणे, अभीए जाव विहरइ।

१००. हस्तिरूपधारी देवता द्वारा ऐसा कहने पर भी कामदेव श्रमणोपासक भयभीत नहीं हुआ। धर्मध्यान में स्थिर बना रहा।

100. Kamdev was not frightened at this statement of the demon-god in the form of an elephant. He remained firm in his meditation.

१०१. तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, २ त्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—"हं भो ! कामदेवा ! तहेव जाव सो वि विहरइ।"

१०१. हस्तिरूपधारी देवता ने जब कामदेव श्रमणोपासक को निर्भीकतापूर्वक अपनी धर्म-आराधना करते देखा तो दूसरी और तीसरी बार उसने वैसा ही कहा, परन्तु वह पहले की तरह निर्भय तथा ध्यान में संलग्न रहा।

101. When the demon-god found Kamdev steadfast in meditation, he repeated his threat second time and again the third time. But Kamdev remained engaged in meditation as before and had no fear.

१०२. तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, २ त्ता आसुरुत्ते ४, कामदेवं समणोवासयं सोंडाए गिण्हेइ, २ त्ता उड्ढं वेहासं उव्विहइ, २ त्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छइ, २ त्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेइ।

१०२. इतने पर भी उस हस्तिरूपधारी देव ने कामदेव को निर्भय यावत् धर्मध्यान में संलग्न देखा तो वह उग्र क्रोध में लाल-पीला होकर उसे सूँड़ से पकड़ा, पकड़कर आकाश में ऊँचा उछाला, फिर नीचे गिरते हुए को तीखे दाँतों पर झेला और नीचे पृथ्वी पर पटककर पैरों से तीन बार रौंदा।

102. When the elephantine demon found Kamdev unaffected, fearless and firmly engaged in spiritual meditation, he felt deeply enraged, held him in his trunk and threw him in the sky. When he (Kamdev) was falling down, he held him on his sharp tusks, threw him on the earth and trampled him thrice with his feet.

१०३. तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

१०३. कामदेव श्रमणोपासक उस असह्य वेदना को शान्तिपूर्वक सहन करता रहा।

103. Kamdev endured that unbearable pain peacefully.

पिशाच द्वारा सर्प रूप धारण

१०४. तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं जाहे नो संचाएइ जाव सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, २ त्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, २ त्ता दिव्वं हत्थिरूवं विप्पजहइ, २ त्ता एगं महं दिव्वं सप्परूवं विउव्वइ, उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाकायं मसी-मूसा-कालगं नयण-विस-रोस-पुण्णं अंजण-पुंज-निगरप्पगासं, रत्तच्छं लोहिय-लोयणं जमल-जुयल-चंचल-जीहं, धरणीयल-वेणीभूयं, उक्कड-फुड-कुडिल-जडिल-कक्कस-वियड-फुडाडोव-करण-दच्छं, लोहागर-धम्ममाण-धमधमेंतं-घोसं, अणागलिय-तिव्व-चंड रोसं सप्परूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी-"हं भो ! कामदेवा ! समणोवासया ! जाव न भंजेसि, तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

१०४. जब हस्तिरूपधारी पिशाच श्रमणोपासक कामदेव को जिनधर्म से विचलित नहीं कर सका, तो हार-थककर धीरे-धीरे-पीछे हट गया। पौषधशाला से बाहर निकला और विक्रियाजन्य हाथी का रूप त्याग दिया। फिर उसने एक विकराल सर्प का रूप धारण किया। वह सर्प उग्र विष, प्रचंड विष (शरीर में तुरन्त फैलने वाला) घोर विष वाला (जिससे तुरन्त ही मृत्यु हो जाए) तथा महाकाय था। स्याही और ऐरन के समान काला था मानो काजल का ढेर हो। उसके नेत्र विष और रोष से भरे हुए थे। उसकी आँखें लाल-लाल थीं। दुहरी जीभ बाहर लपलपा रही थी। ऐसा लग रहा था मानो पृथ्वी की चोटी हो। वह अपना काला, चमकता हुआ, टेढ़ा, जटिल, मोटा, कठोर और भयंकर फण फैलाए हुए था। वह लुहार की धमनी की तरह फुँकार रहा था। वह दुर्दान्त, तीव्र और भयंकर क्रोध से भरा हुआ था। इस प्रकार सर्प का रूप धारण कर वह देव पौषधशाला में कामदेव श्रमणोपासक के पास आया और बोला-"अरे कामदेव ! यदि तू शीलव्रत आदि व्रतों को भंग नहीं करेगा तो मैं अभी तेरे शरीर पर सरसर करता हुआ चढ़ जाऊँगा। पूँछ से गले को लपेट लूँगा और तीखे जहरीले दाँतों

से छाती पर डंक मारूँगा जिससे तू दारुण दुःख से पीड़ित होकर आर्त्तध्यान करता हुआ बेमौत ही मारा जायेगा।''

DEMON IN THE FORM OF SNAKE

104. When the elephantine demon could not weaken the faith of Kamdev *Shramanopasak* in code of the *Tirthankar*, he felt tired, dejected and slowly moved backward. He came out of the *Paushadhshala* and left the elephantine form. He then adopted the dreadful serpentine appearance. That serpent had dreadful poison, venom immediately affecting the body and causing instant death. He had a huge body. He was dark like black ink or iron. His eyes were full of anger and poison. He looked like a heap of collirium. His eyes were red. His forked tongue was coming out and looked like braided hair of the earth. He was moving his black, shining, crooked, distorted thick, cruel and dreadful hood (*Phan*). He was hissing like blowing pipe of a blacksmith. He was grossly filled with dreadful, deep and ferocious anger. In this condition that serpentine demon came to Kamdev in the *Paushadhshala* and said—"O Kamdev ! In case you do not break your partial vows and the supporting vows, I shall move on to your body, wrap you up with my tail and shall bite your chest with my sharp, poisonous teeth. You shall then die an untimely death in a fit of excessive pain."

१०५. तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं सप्परूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ। सो वि दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, कामदेवोवि जाव विहरइ।

१०५. सर्परूपधारी देव द्वारा इस प्रकार भय दिखाने पर भी कामदेव भयमुक्त रहकर धर्म में लीन रहा। देव ने दूसरी और तीसरी बार भी वैसा ही कहा परन्तु कामदेव विचलित नहीं हुआ।

105. Even in face of such threat by the serpentine demon, Kamdev remained fearless and firm in spiritual meditation.

The demon repeated it second and third time but Kamdev remained unaffected.

१०६. तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते ४ कामदेवस्स समणोवासयस्स सरसरस्स कायं दुरूइ, दुरूहित्ता पच्छिमभाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेइ, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव निक्कुट्टेइ।

१०६. जब सर्परूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय देखा तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर, सर्राटे के साथ उसके शरीर पर चढ़ गया। उसके गले में तीन लपेट लगा दिये और विषैले तीखे दाँतों (दाढ़ों) से उसकी छाती पर डंक मारता रहा।

106. When the serpentine demon saw Kamdev fearless and unaffected, he felt enraged, speedily moved on to his body, made three wrappings on his throat and kept on biting his chest with sharp teeth.

१०७. तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

१०७. श्रमणोपासक कामदेव उस तीव्र असह्य वेदना को शान्तिपूर्वक सहन करता रहा।

107. Kamdev patiently endured that unbearable pain.

देव का पराभव स्वीकार करना

१०८. तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा ताहे संते ३ सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं सप्परूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ।

१०८. सर्परूपधारी देव ने जब देखा श्रमणोपासक कामदेव निर्भय है, निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित या क्षुब्ध नहीं हुआ और उसके विचार नहीं बदले तो वह खिन्न होकर धीरे-धीरे पीछे हट गया। पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर उसने साँप का रूप छोड़ दिया और देवता का दिव्य रूप धारण किया।

ACCEPTING DEFEAT BY THE DEMON

108. When the serpentine god, saw that Kamdev *Shramanopasak* was still fearless and firm in *Nirgranth Pravachan* and that his mind was unaffected, he felt dejected, slowly moved backwards, came out of the *Paushadhshala,* and discarded the serpentine look. He adopted the angelic look.

देव द्वारा कामदेव की प्रशंसा और क्षमा प्रार्थना

१०९. हार-विराइय-वच्छं जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता कामदेवस्स समणोवासयस्स पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतलिक्ख-पडिवन्न सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए कामदेवसमणोवासयं एवं वयासी-''हं भो ! कामदेवा समणोवासया ! धन्नेसि णं तुमं, देवाणुप्पिया ! संपुण्णे कयत्थे कयलक्खणे सुलद्धेणं तव देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।''

एवं खलु देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया जाव सक्कंसि सीहासणंसि चउरासीईए सामाणिय-साहस्सीणं जाव अन्नेसिं च बहूणं देवाणं य देवीण य मज्झगए एवमाइक्खइ ४-''एवं खलु देवा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए कामदेवे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। नो खलु से सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा जाव गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा।''

''तए णं अहं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एयमट्ठं असद्दहमाणे (अपत्तियमाणे अरोएमाणे) इहं हव्वमागए। तं अहो णं, देवाणुप्पिया ! इड्ढी (जुई, जसो, बलं, वीरियं, पुरिसक्कार-परक्कमे) तं दिट्ठा णं देवाणुप्पिया ! इड्ढी जाव अभिसमन्नागया। तं खामेमि णं, देवाणुप्पिया ! खमंतु मज्झ देवाणुप्पिया ! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया !

नाइं भुज्जो करणयाए" त्ति कट्टु पायवडिए पंजलिउडे एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो खामेइ, खामित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

१०९. अपने वक्षस्थल पर हार धारण किये हुए वह देव दश दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। उसका रूप चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप, प्रतिरूप तथा अत्यन्त दिव्य था। वह देव पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ और आकाश में खड़ा हो गया। उसने पाँच वर्णों–श्वेत, पीत, रक्त, नील, कृष्ण वर्ण के सुन्दर उत्तम वस्त्र धारण कर रखे थे, जिनमें छोटी-छोटी घंटिकाएँ लगी हुई थीं। वह कामदेव श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला–"हे देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, पुण्यशाली हो, कृतकृत्य हो, कृत लक्षण–शुभ लक्षण वाले हो। तुम्हारा जीवन और मनुष्यत्व सफल है क्योंकि तुम्हारी निर्ग्रन्थ प्रवचन में दृढ़ श्रद्धा आस्था है।"

देवानुप्रिय ! (बात यों हुई कि) एक बार देवराज शक्र ने चौरासी हजार सामानिक तथा अन्य देवी-देवताओं के बीच भरी सभा में यह घोषणा की थी–"देवानुप्रियो ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चम्पा नगरी में कामदेव श्रमणोपासक पौषधशाला में पौषधव्रत स्वीकार करके भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म की आराधना कर रहा है। उसे कोई देव, असुर या गन्धर्व धर्म से विचलित नहीं कर सकता है। कोई भी उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन से स्खलित नहीं कर सकता। उसके विचारों को नहीं बदल सकता।"

"देवेन्द्र देवराज शक्र की इस बात पर मुझे श्रद्धा, विश्वास नहीं हुआ, वह अरुचिकर लगी और मैं उसी समय शीघ्र यहाँ आया। अहो देवानुप्रिय ! तुमने ऐसी ऋद्धि द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषोचित पराक्रम प्राप्त किया है। देवानुप्रिय ! मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ। आप मुझे क्षमा कीजिए। आप क्षमा करने में समर्थ हैं। मैं फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा।" यों कहकर वह देव दोनों हाथ जोड़कर उसके चरणों में गिर पड़ा और बारम्बार क्षमायाचना करने लगा। क्षमायाचना करके वह जिस दिशा से आया था उसी दिशा की ओर चला गया।

KAMDEV'S PRAISE BY GOD AND SEEKING PARDON

109. That god was wearing a garland on his chest and brightening all the ten directions. His look was very pleasant, worth-seeing, beautiful, unique and grand. That god came in the *Paushadhshala* and stood in the sky. He was wearing beautiful clothes of five colours namely white,

yellow, red, blue and black and small bells were attached to them. He thus addressed Kamdev—"O beloved of gods ! You are praiseworthy, the blessed, accomplished and virtuous. Your life and human existence is auspicious since you have faith in the preachings of the detached (*Nirgranth*)."

O beloved of gods ! It so happened that once Shakrendra thus declared in our assembly of 84,000 gods and goddesses of the same abode and many other abodes—"O blessed of gods ! In the *Bharat Kshetra* of *Jambu Dveep,* Kamdev *Shramanopasak* is following the conduct propagated by Bhagavan Mahavir in the *Paushadhshala* after accepting the *Paushadh Vrat.* No god, demon or *gandharva* can dwindle his faith. No one can disturb his faith in the preachings of the Lord. No one can change his mind."

"I did not believe this statement of Indra, did not accept it and I came here immediately. O the blessed ! You have got such grandeur, fame, strength, appreciation and human splendour. I seek your grace. Kindly pardon me. You have the capacity to pardon. I shall not do such an evil act in future." Saying this the god joined his palms and fell at his (Kamdev's) feet. He begged pardon repeatedly. Thereafter, he went in the same direction from where he had come.

विवेचन-प्रस्तुत सूत्र में देव द्वारा पिशाच, हाथी तथा सर्प का रूप धारण करने के प्रसंग में 'विकुव्वइ'-विक्रिया या विकुर्वणा करना शब्द आया है, जो उसकी देवजन्म-लभ्य वैक्रिय देह का सूचक है।

जैनदर्शन में औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण-ये पाँच प्रकार के शरीर माने गए हैं। वैक्रिय शरीर दो प्रकार का होता है-औपपातिक और लब्धि-प्रत्ययिक। औपपातिक वैक्रिय शरीर देव-योनि और नरक-योनि में जन्म से ही प्राप्त होता है। लब्धि-प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर तपश्चरण आदि द्वारा प्राप्त लब्धि-विशेष से मिलता है। यह मनुष्य-योनि एवं तिर्यञ्च-योनि में होता है।

वैक्रिय शरीर में अस्थि, मज्जा, माँस, रक्त आदि अशुचि पदार्थ नहीं होते। मृत्यु के बाद वैक्रिय देह का शव नहीं बचता। उसके पुद्गल कपूर की तरह उड़ जाते हैं। जैसा कि वैक्रिय

शब्द से प्रकट है—इस शरीर द्वारा विविध प्रकार की विक्रियाएँ—विशिष्ट क्रियाएँ की जा सकती हैं, जैसे—एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटी देह को बड़ी बनाना, बड़ी को छोटी बनाना, पृथ्वी एवं आकाश में चलने योग्य विविध प्रकार के शरीर धारण करना, अदृश्य रूप बनाना इत्यादि।

पिशाचरूपधारी देव द्वारा तेज तलवार से कामदेव के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए किन्तु कामदेव अपनी उपासना से नहीं हटा। तब देव ने दुर्दान्त, विकराल हाथी का रूप धारण कर उसे आकाश में उछाला, दाँतों से झेला, पैरों से रौंदा। उसके बाद भयावह सर्प के रूप में उसे उत्पीड़ित किया। यह सब कैसे संभव हो सका? देह के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाने पर कामदेव इस योग्य कैसे रहा कि उसे आकाश में फेंका जा सके, रौंदा जा सके, कुचला जा सके। वास्तव में, वैक्रियलब्धिधारी देवों की यह विशेषता होती है, वे देह के पुद्गलों को जिस त्वरा से विच्छिन्न करते हैं—काट डालते हैं, तोड़-फोड़ कर देते हैं, उसी त्वरा से तत्काल उन्हें यथावत् संयोजित भी कर सकते हैं। यह सब इतनी शीघ्रता से होता है कि आक्रान्त व्यक्ति को घोर पीड़ा का तो अनुभव होता है, यह भी अनुभव होता है कि वह काट डाला गया है, परन्तु स्थूल रूप में शरीर वैसा का वैसा स्थित प्रतीत होता है। कामदेव के साथ ऐसा ही घटित हुआ।

सौधर्म देवलोक के अधिपति शक्रेन्द्र की ऋद्धि की चर्चा में सामान्य जानकारी इस प्रकार है—त्रायस्त्रिंशक (तैंतीस)—चार लोकपाल, आठ अग्र महिषियाँ (जिनके परिवार में ४० हजार देवियाँ होती हैं), तीन प्रकार की परिषदा, सात प्रकार की सेना, सात सेनापति, चार प्रकार के अंगरक्षक, इस प्रकार उसका विशाल देव परिवार होता है।

Explanation—In the above said *Sutra,* in the context of adopting demon, elephant and serpent look, the words used are *Vikuvvai, Vikriya* or *Vikurvana*. These words refer to the divine body of a god (an angel).

Jain Philosophy accepts five types of body—*Audaric* (gross, physical), *Vaikriya* (divine), *Aharak* (typical body made as a result of austerities), *Taijas* (electric) and *Karman* body (body of karmic molecules). The divine body is of two types—*Aup-patic* and *Labdhi-pratyayik*. *Aup-patic* celestial body is availed at birth to angelic and hellish beings. *Labdhi-pratyayik* electric body is gained as a result of grace gained due to special austerities. This is found in human life and animal life.

The celestial body does not have bones, marrow, flesh, blood and other unclean things. After death, the celestial body does not turn into a corpse. It scatters like camphor and disappears. As is clear from the word *Vaikriya*, this body can transform itself into any shape. It can have one or many forms simultaneously, it can enlarge its shape, it can dwarfen its shape. It can move as a bird in the sky and also can make its appearance invisible.

The demon-god cut down Kamdev into pieces with his sharp sword. But Kamdev remained steadfast in his meditation. The demon-god then adopted dreadful, ferocious elephantine look, threw him upwards, held him in tusks, punched him with his feet. Later, he troubled him in the form of a dreadful snake. How was all this possible ? When Kamdev was cut into pieces, how could his body be thrown in the sky and later trampled and crushed. In fact, it is a speciality of gods, that they can break any body in pieces and later join them also to the earlier shape in a moment. It is done so quickly that the affected person feels pain and that he is being cut but his gross body remains the same. The same thing happened with Kamdev.

The common understanding about the grandeur of master of *Saudharma Devlok* is as under—He has 33 advisors—four *Lokpal*, eight senior queens (*Agra Mahishi*)—40,000 queens, three tier cabinet, seven types of army, seven army chiefs, four bodyguards. Thus, the god Indra has a large family.

११०. तए णं से कामदेवे समणोवासए "निरु वसग्गं" इइ कट्टु पडिमं पारेइ।

११०. श्रमणोपासक कामदेव ने जब यह जाना कि अब "उपसर्ग नहीं रहा" तो अपनी प्रतिमा (अभिग्रह) का पारणा किया।

110. When Kamdev knew that there was no longer any threat, he concluded his *Pratima*.

भगवान महावीर का चम्पा में पदार्पण

१११. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ।

१११. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर विहार करते हुए चम्पा नगरी में पधारे, उद्यान में विराजमान हुए।

ARRIVAL OF BHAGAVAN MAHAVIR IN CHAMPA

111. At that time, during that period Bhagavan Mahavir once came to Champa and stayed in the garden.

११२. तए णं से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे "एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ", 'तं सेयं खलु मम समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता तओ पडिणियत्तस्स पोसहं पारित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं जाव अप्पमहग्घ जाव मणुस्सवग्गुरा परिक्खित्ते सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चंपं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जहा संखो जाव पज्जुवासइ।

११२. श्रमणोपासक कामदेव ने जब यह सुना कि "श्रमण भगवान महावीर चम्पा नगरी में पधारे हैं" तो मन में विचार किया कि 'अच्छा होगा यदि मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार करके वापस लौटकर पौषध का पारणा करूँ।' यह विचार कर धर्मसभा आदि में प्रवेश करने योग्य शुद्ध वस्त्र यावत् अल्प भार बहुमूल्य वाले आभूषण धारण किये, फिर जन-समुदाय से परिवृत्त होकर घर से निकला। निकलकर चम्पा नगरी के बीच होता हुआ पूर्णभद्र चैत्य में पहुँचा और श्रावस्ती निवासी शंख श्रावक (वर्णन भगवतीसूत्र में देखें) के समान वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करने लगा।

112. When Kamdev *Shramanopasak* heard that "Bhagavan Mahavir has reached Champa", he decided that 'he should first go to Him, bow to Him and only on return he should break his *Paushadhopvas.*' He then dressed himself in the prescribed manner, wore costly but light ornaments. He then came out of his house with a group of his family members and friends. He passed through Champa and came to *Purna Bhadra Chaitya* (temple). He bowed to the Lord like *Shankh Shravak* of Shravasti. (For detailed study, see *Bhagavati Sutra*). He then started serving the Lord.

११३. तए णं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य जाव धम्मकहा समत्ता।

११३. तब श्रमण भगवान महावीर ने कामदेव श्रमणोपासक और उस परिषद् को धर्मदेशना दी।

113. Then Bhagavan Mahavir delivered his discourse to Kamdev and the large gathering.

भगवान महावीर द्वारा कामदेव की प्रशंसा

११४. "कामदेवा" इ समणे भगवं महावीरे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी-"से नूणं, कामदेवा ! तुब्भं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतिए पाउब्भूए। तएणं से देवे एगं महं दिव्वपिसायरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता आसुरुत्ते ४ एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय तुमं एवं वयासी-'हंभो कामदेवा ! जाव जीवियाओ ववरोविज्जसि', तं तुमं तेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरसि।"

एवं वण्णगरहिया तिण्णि वि उवसग्गा तहेव पडिउच्चारेयव्वा जाव देवो पडिगओ।

"से नूणं कामदेवा ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता, अत्थि।"

११४. देशना के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने कामदेव श्रमणोपासक से पूछा-"हे कामदेव ! मध्य रात्रि के समय एक देव तुम्हारे सामने प्रकट हुआ था। उस देव ने एक विकराल पिशाच रूप धारण किया और भयंकर नीली तेज धार वाली चमकती तलवार लेकर तुम्हें इस प्रकार कहा-'भो कामदेव ! यदि तू अपने शीलादि व्रतों को भंग नहीं करेगा तो मैं तुझे प्राणरहित कर दूँगा।' उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी तुम निर्भय यावत् ध्यान में स्थिर रहे ?"

इसी प्रकार संक्षेप में यहाँ तीनों उपसर्ग उसी प्रकार कहे गये यावत् देव वापस लौट गया।

भगवान ने पूछा-"हे कामदेव ! क्या यह ठीक है ?"

कामदेव ने कहा-"हाँ, भगवन् ! जो आप कहते हैं, वह यथार्थ है।"

APPRECIATION OF KAMDEV BY THE GOD

114. After the discourse Mahavir asked Kamdev—"O Kamdev ! A god appeared before you at mid-night. He was of demon-like dreadful appearance. He was holding blue sharp-edged sword. He had addressed you—'O Kamdev ! If you do not break your partial and supporting vows, I shall kill you.' You, however, did not pay any attention to his words and remained firm in meditation."

Bhagavan Mahavir then narrated all the three afflictions that the demon-god caused to Kamdev before he returned.

Bhagavan Mahavir asked—"O Kamdev ! Is it true ?"

Kamdev replied—"Yes, O Lord ! Whatever you have said is completely true."

११५. "अज्जो" इ समणे भगवं महावीरे बहवे समणे निग्गंथे य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी–"जइ ताव, अज्जो ! समणोवासगा गिहिणो गिहमज्झावसंता दिव्व-माणुस-तिरिक्ख-जोणिए उवसग्गे सम्मं सहंति जाव अहियासेंति, सक्का पुणाइं, अज्जो ! समणेहिं निग्गंथेहिं दुवालसंगगणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं दिव्वमाणुस-तिरिक्ख-जोणिए सम्मं सहित्तए जाव अहियासित्तए।"

११५. तब श्रमण भगवान महावीर ने वहाँ उपस्थित निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को आमंत्रित करके इस प्रकार कहा–"हे आर्यो ! यदि श्रमणोपासक गृहस्थ घर में निवास करते हुए भी दिव्य-देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं यावत् दृढ़ रहते हैं, तो फिर श्रमण निर्ग्रन्थ और गणिपिटक रूप द्वादशांग का अध्ययन करने वालों को उपसर्गों का भली प्रकार सहन करना यावत् दृढ़ रहना क्यों नहीं शक्य है ?"

115. Then Bhagavan Mahavir called the monks and nuns present there and said—"O the blessed ! In case a *Shramanopasak* householder even while residing in the house remains firm and patiently endures the turbulations caused by demon-god, human beings or animals, then why it

is not possible for the monks and nuns who have studied sermons to bear such turbulations quietly ?"

११६. तओ ते बहवे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स "तह" त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

११६. श्रमण भगवान महावीर का यह कथन सुनकर साधु-साध्वियों ने "तथेति" कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया।

116. Monks and nuns gratefully accepted the advice of the Lord.

११७. तए णं से कामदेवे समणोवासए हट्ठ जाव समणं भगवं महावीरं पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठमादियइ। समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

११७. कामदेव श्रमणोपासक अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने भगवान महावीर से प्रश्न पूछे, अर्थ समाधान प्राप्त किया। पुनः भगवान को तीन बार वन्दना नमस्कार की और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

117. Kamdev *Shramanopasak* felt overjoyed. He sought certain clarifications from Bhagavan Mahavir and after befitting replies, he greeted the Lord thrice and returned in the same direction from where he had gone.

११८. तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ चंपाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

११८. एक दिन श्रमण भगवान महावीर ने चम्पा से प्रस्थान कर दिया और अन्य जनपदों में विचरने लगे।

118. One day Bhagavan Mahavir left Champa and wandered to other areas.

कामदेव द्वारा प्रतिमा ग्रहण

११९. तए णं से कामदेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

११९. तत्पश्चात् कामदेव श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा की आराधना की।

ACCEPTANCE OF *PRATIMAS* (RESTRAINTS) BY KAMDEV

119. Later Kamdev accepted the first *Pratima* of householder.

जीवन का उपसंहार

१२०. तए णं से कामदेवे समणोवासए बहूहिं जाव भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा, सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता कामदेवस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

१२०. तदनन्तर श्रमणोपासक कामदेव ने बहुत से व्रतों-अभिग्रहों द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया। ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से अनुपालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को भावित कर, अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन करके अर्थात् एक मास का संथारा करके, आलोचना प्रतिक्रमण आदि करके पापों से निवृत्त होकर के समाधिपूर्वक देह-त्याग किया। देह त्यागकर सौधर्मकल्प के सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तर-पूर्व में अरुणाभ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ अनेक देवों की चार पल्योपम की आयु स्थिति है, कामदेव की आयु स्थिति भी चार पल्योपम बतलाई गई है।

CULMINATION OF LIFE

120. Later, Kamdev *Shramanopasak* engaged himself in different types of restraints and austerities. He followed the restraints and vows of householder for twenty years. He properly adopted eleven *Pratimas* of the householder. In the end he did *Samlekhana* for one month—avoiding all types of food and water. He avoided scrupulously all types of

food and died a quiet death. After leaving this body he was re-born in *Arunabh Viman of Saudharma Devlok* in north-east direction. There the life-span of many gods is four *palyopam*. His life-span is also four *palyopam*.

१२१. "से णं, भंते ! कामदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, कहिं गमिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहेवासे सिज्झिहिइ।" निक्खेवो

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं बिइयं कामदेवज्झयणं समत्तं ॥

१२१. गौतम ने भगवान महावीर से पूछा–"भंते ! वह कामदेव उस देवलोक से आयु स्थिति और भव स्थिति क्षय होने पर च्यवकर देव शरीर का त्याग कर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

भगवान ने उत्तर दिया–"गौतम ! महाविदेह वर्ष में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा।"

[निक्षेप–आर्य सुधर्मा बोले–"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ-भाव कहा है।"]

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का द्वितीय कामदेव अध्ययन समाप्त ॥

121. Gautam asked Bhagavan Mahavir—"Bhante ! Where shall Kamdev be re-born after his angelic life-span."

Bhagavan Mahavir replied—"Gautam ! He shall be re-born in Mahavideh and get liberation from there."

[**Nikshep**—Arya Saudharma said—"Jambu ! This was the second chapter of *Upasak-dasha*."]

● SECOND CHAPTER CONCLUDED ●

चूलनीपिता : तृतीय अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ वाराणसी में चूलनीपिता नामक एक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम श्यामा था। चूलनीपिता अत्यन्त समृद्ध, धन्य-धान्य-सम्पन्न गृहस्थ था। उसकी सम्पत्ति आनन्द तथा कामदेव से भी कहीं अधिक थी। आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ उसके सुरक्षित निधान में थीं। चूलनीपिता ने आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ व्यापार में लगा रखी थीं। उसकी आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ घर के उपकरण, साज-सामान तथा वैभव में प्रयुक्त थीं। उस युग में ऐसी परिपाटी थी कि वे जिस अनुपात में अपनी सम्पत्ति व्यापार में लगाते, सुरक्षित रखते, उसी अनुपात में घर की शान, गरिमा, प्रभाव तथा सुविधा हेतु भी लगाते थे। स्पष्ट है कि चूलनीपिता उस समय का एक अत्यन्त वैभवशाली नीतिनिष्ट पुरुष था।

✦ भगवान महावीर के आगमन पर जिस प्रकार आनन्द और कामदेव को अपने जीवन को त्याग, संयम और साधना में जोड़ने की नयी दिशा मिली, चूलनीपिता के साथ भी ऐसा ही घटित हुआ। भगवान महावीर जब वाराणसी पधारे तो चूलनीपिता ने भी भगवान की धर्मदेशना सुनी। उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया। एक विशेष बात है कि श्रावक धर्म स्वीकारने के पूर्व की स्थिति के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है।

✦ एक दिन की बात है, वह ब्रह्मचर्य एवं पौषध व्रत स्वीकार किए, पौषधशाला में धर्मध्यान में लीन था। आधी रात का समय था। उपसर्ग देने के लिए एक देव प्रकट हुआ। हाथ में तेज तलवार लिए चूलनीपिता से कहा-"तुम व्रतों को छोड़ दो, नहीं तो मैं तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा। तुम्हारे ही सामने उसको काटकर तीन टुकड़े कर डालूँगा, उबलते तेल (या जल) से भरी कढ़ाही में उन्हें खौलाऊँगा और तुम्हारे बेटे का उबलता हुआ माँस और रक्त तुम्हारे शरीर पर छिड़कूँगा।"

✦ चूलनीपिता के सामने एक हृदयद्रावक विभीषिका थी, फिर भी वह अपनी उपासना में अविचल भाव से लगा रहा। देव का क्रोध उबल पड़ा। उसने जैसा कहा था, देवमाया से क्षणभर में वैसा ही दृश्य उपस्थित कर दिया। बहुत भयानक और साथ ही साथ बीभत्स कर्म था यह। पत्थर हृदय भी फट जाय, पर चूलनीपिता अडिग रहा।

✦ देव और विकराल हो गया। उसने फिर धमकी दी-"मैंने जैसा तुम्हारे बड़े बेटे के साथ किया है, वैसा तुम्हारे मँझले बेटे के साथ भी करता हूँ, आराधना से हट जाओ।" चूलनीपिता फिर भी घबराया नहीं। तब देव ने मँझले बेटे और छोटे बेटे के साथ भी वैसा ही नृशंस व्यवहार किया।

✦ जब देव ने देखा कि तीनों पुत्रों की नृशंस हत्या के बावजूद श्रमणोपासक चूलनीपिता निश्चल भाव से धर्मोपासना में लगा है तो उसने एक और अत्यन्त भीषण उपाय सोचा। उसने धमकी भरे शब्दों में कहा-"तुम यों नहीं मानोगे, अब मैं तुम्हारी माता भद्रा को यहाँ लाता हूँ, मैं तुम्हारे सामने इस तेज तलवार से काटकर उसके तीन टुकड़े कर डालूँगा। जैसा तुम्हारे पुत्रों के साथ किया वैसा ही उसके साथ करूँगा।"

✦ अपने तीनों बेटों की नृशंस हत्या के समय जिसका हृदय जरा भी विचलित नहीं हुआ, ममतामयी माता की हत्या का प्रश्न आया तो उसके धीरज का बाँध टूट गया। क्रुद्ध होकर चूलनीपिता पिशाच को पकड़ने उठा, हाथ फैलाए। यह तो देव का षड्यंत्र था। देव आकाश में अन्तर्धान हो गया और चूलनीपिता के हाथ में पौषधशाला का खंभा आ गया। चूलनीपिता हक्का-बक्का रह गया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

✦ भद्रा माता ने जब यह शोर सुना तो वह झट वहाँ आई और अपने पुत्र से चिल्लाने का कारण पूछा। चूलनीपिता ने सारी घटना बतलाई। माता ने कहा-"बेटा ! यह देव द्वारा किया गया उपसर्ग था, वह सारी देवमाया थी। सब सुरक्षित हैं। किसी की हत्या नहीं हुई। क्रोध करके तुमने अपना व्रत तोड़ दिया। तुमसे यह भूल हो गई। तुम्हें इसके लिए प्रायश्चित्त करना होगा।" चूलनीपिता ने माँ का कथन शिरोधार्य किया। प्रायश्चित्त स्वीकार किया।

✦ व्रताराधना से आत्मा को भावित करते हुए बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया। ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की सम्यक् आराधना की। एक मास की अन्तिम संलेखनापूर्वक एक मास का अनशन सम्पन्न कर, समाधिपूर्वक देह-त्याग किया। सौधर्म देवलोक में अरुणप्रभ विमान में वह देवरूप में उत्पन्न हुआ।

✦ चूलनीपिता का यह वर्णन मानव मन की अन्तर तह में छिपे सूक्ष्म मोह को जीतने की प्रेरणा देता है-चाहे यह मोह अपनी माता के प्रति हो, पुत्र आदि के प्रति अथवा अपने धन व शरीर के प्रति। मोह त्यागने से ही धर्म-साधना निर्मल व विशुद्ध रहती है।

CHULANIPITA : THIRD CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- Chulanipita *Gathapati* lived in Varanasi. Shyama was his wife. He was extremely rich, and prosperous in agricultural wealth and food-stock. His wealth was much more than that of Anand and Kamdev. He had eighty million gold coins in his treasure, eighty million in business and eighty million in residential set-up including household. It was a custom in that period that the money in business, in cash and in property was almost identical. It is thus evident that Chulanipita was an extremely wealthy person of that period.
- At the arrival of Bhagavan Mahavir, Anand and Kamdev had given a new direction to their way of life by observing detachment and restraint in their worldly activities and spiritual practices. The same thing happened with Chulanipita. When Bhagavan Mahavir reached Varanasi, Chulanipita also heard his sermon. He also accepted vows of a householder and became a *Shravak*. No account is available about his way of life before undertaking vows of a householder.
- One day he observed *Brahmacharya* (sex-restraint) and *Paushadh* vow. He was engaged in spiritual meditation in the *Paushadhshala*. At mid-night a demon-god appeared to disturb him. With a sword in his hand, he told Chulanipita—"You discard the vows otherwise I shall pick up your eldest son and cut him into three pieces in your presence. Then I shall roast them in boiling oil in a vessel. Later, I shall throw the boiling meat of your son and his blood on you."
- It was heart-rending situation but Chulanipita remained firm in his meditation and spiritual practices. It enraged the demon. He did the same as he had earlier declared. It was a very dreadful and condemnable act. Even a hard-hearted man would have been affected by such an incident, but Chulanipita remained firm in his meditation.

- The demon became more dreadful. He threatened—"I shall do the same with your second son as I have done with the eldest one if you do not abandon your vows." But Chulanipita did not get frightened. Then the demon did the deadly act with his second son and the youngest son.

- When the demon found that the dreadful killing of the three sons had no effect on Chulanipita he thought of another extremely disgusting plan. He threatened—"You do not accept my advice. I shall now kill your mother, cut her into three pieces with my sharp sword in your presence and shall do to her the same thing as I have done with your sons."

- Chulanipita had remained firm in meditation at the dreadful scene of the brutal killings of his three sons, but when the question of the same treatment to his beloved mother arose, his courage gave in. He in anger got up to catch hold of the demon and spread his hands. It was a conspiracy of demon-god. So the god disappeared and Chulanipita held the pillar of the *Paushadhshala* in his hands. Chulanipita felt bewildered. He started shouting loudly.

- When his mother Bhadra heard it, she soon came there and asked her son the cause of his shouting. Chulanipita narrated the entire incident. The mother said—"Son ! It was an angelic turbulation. It was an angelic affair. All are safe. None has been killed. You have broken your vow by getting enraged. It was your folly. You should repent for it." Chulanipita accepted his mother's advice and undertook austerities to condone his folly.

- Chulanipita followed the householder's vows for twenty years. He continuously adopted the eleven *pratimas* (restraints) of a householder, one after the other. In the end he left food and water for one month and in *Samlekhana* had a quiet, meditational death. He was re-born in *Arunprabh Viman* of *Saudharma Devlok*.

- This description of Chulanipita inspires one to overcome the minor feelings of attachment—Whether the attachment is with one's mother, sons, the wealth or the body. The spiritual practice remains pure and faultless only after discarding the feelings of attachment.

चुलणीपिया : तइयमज्झयणं
चूलनीपिता : तृतीय अध्ययन
CHULANIPITA : THIRD CHAPTER

उक्खेवो तइयस्स अज्झयणस्स–

यहाँ तृतीय अध्ययन का उपक्षेप–उपोद्घात इस प्रकार कहना चाहिए।

[जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा से पूछा–"सिद्धि प्राप्त भगवान महावीर ने उपासकदशा के द्वितीय अध्ययन का यदि यह भाव कहा है तो तृतीय अध्ययन का क्या भाव कहा है ?"

आर्य सुधर्मा बोले–"सिद्धि प्राप्त भगवान महावीर ने तृतीय अध्ययन का निम्न अनुसार भाव कथन किया है।"]

[Jambu Swami asked Sudharma Swami—"I have heard details about Second Chapter of *Upasak-dasha,* what is the detailed meaning of the Third Chapter as narrated by Bhagavan Mahavir ?"

Arya Sudharma Swami said—"The liberated Bhagavan Mahavir had described the Third Chapter as under."]

१२२. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया।

१२२. जम्बू ! उस काल उस समय वाराणसी नामक नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नामक चैत्य था। जितशत्रु राजा राज्य करता था।

122. Jambu ! At that time and in that period, there was a city called Varanasi. There was a temple called Koshthak. King Jitshatru ruled there.

चूलनीपिता की धर्माराधना

१२३. तत्थ णं वाराणसीए नयरीए चुलणीपिया नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे, जाव अपरिभूए। सामा भारिया। अट्ठ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, अट्ठ वुड्ढिपउत्ताओ, अट्ठ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। जहा

आणंदो राईसर जाव सव्व कज्ज वड्ढावए यावि होत्था। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। चुलणीपिया वि, जहा आणंदो तहा निग्गओ। तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ। गोयम पुच्छा। तहेव सेसं जहा कामदेवस्स जाव पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

१२३. वाराणसी नगरी में चूलनीपिता नामक गाथापति रहता था। वह अत्यन्त समृद्ध तथा समाज में प्रभावशाली था। उसकी पत्नी का नाम श्यामा था। उसका आठ करोड़ सुवर्ण निधान में सुरक्षित था, आठ करोड़ व्यापार में और आठ करोड़ घर तथा सामान में लगे हुए थे। दस हजार गायों का एक गोकुल, इस प्रकार के आठ गोकुल थे अर्थात् अस्सी हजार पशुधन उसके पास था। वह भी आनन्द श्रमणोपासक की तरह राजा-ईश्वर आदि सभी जनों का आधार यावत् सब कार्यों में सत्परामर्श एवं प्रोत्साहन देने वाला था। श्रमण भगवान महावीर पधारे। धर्मदेशना सुनने के लिए परिषद निकली। चूलनीपिता भी आनन्द श्रावक की भाँति घर से निकला। भगवान के समीप आया, उपदेश सुना और आनन्द की तरह उसने भी श्रावक धर्म को स्वीकार किया। गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछे, भगवान ने समाधान दिया। शेष वृत्तान्त कामदेव के समान है। चूलनीपिता भी पौषधशाला में पौषध तथा ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करके भगवान महावीर के द्वारा प्रतिपादित धर्मप्रज्ञप्ति को अंगीकार करके धर्माराधना करने लगा।

SPIRITUAL PRACTICE OF CHULANIPITA

123. Chulanipita *Gathapati* lived in Varanasi. He was very wealthy and commanded respect in the society. Shyama was his wife. He had eighty million gold coins in safe custody, eighty million in business and eighty million in household articles. He had eight *gokuls* of ten thousand cows each, *i.e.*, eighty thousand cattle. He was also honoured by the king and the elites and was consulted in all important matters by them like Anand. Once Bhagavan Mahavir came there. People went to listen to his discourse. Chulanipita also left his house like Anand, came to the Lord, heard the spiritual discourse and accepted the householder's vows. Gautam Swami made certain queries and Bhagavan Mahavir replied to him. The remaining account is similar to that of Kamdev.

Chulanipita also accepted *Paushadh* vow and complete sex restraint and started spiritual practice in the *Paushadhshala* according to prescribed norms.

परीक्षा के लिए देव का आगमन

१२४. तए णं तस्स चुलणीपियस्स पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए।

१२४. एक बार आधी रात के समय चूलनीपिता श्रमणोपासक के समक्ष एक देव प्रकट हुआ।

ARRIVAL OF DEMON-GOD FOR HIS TEST

124. Once at mid-night a demon-god appeared before Chulanipita.

१२५. तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी–"हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया ! जहा कामदेवो जाव न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणित्ता तव अग्गओ घाएमि, घाइत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाण-भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहित्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

१२५. वह देव नीली तीक्ष्ण तलवार हाथ में लेकर चूलनीपिता श्रावक से बोला– "हे चूलनीपिता ! यदि तू अपने शील आदि व्रतों को भंग नहीं करेगा तो आज मैं तेरे बड़े पुत्र को घर से लाकर तुम्हारे सामने ही मार डालूँगा। मारकर उसके तीन टुकड़े करूँगा और शूल में पिरोकर खौलते हुए तेल (घी, तेल या पानी) से भरी हुई कढ़ाई में पकाऊँगा। उसके माँस और रक्त से छींटूँगा। तुम चिन्तामग्न, दुःखी तथा विवश होकर अकाल में जीवन से हाथ धो बैठोगे।"

125. That god was holding a blue sharp sword. He said—"O Chulanipita ! If you do not discontinue the partial vows and supporting vows, I shall bring your eldest son from the house, kill him in your presence, cut him into three pieces,

pierce them into a thick needle and then cook it in boiling oil. I shall sprinkle his meat and blood on you. You shall feel dejected, sad and helpless and shall die an untimely death."

१२६. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

१२६. देवता द्वारा ऐसा कहने पर भी चूलनीपिता श्रमणोपासक निर्भय भाव से शान्त रहकर धर्मध्यान में लीन रहा।

126. But Chulanipita ignored the threat, remained fearless, quiet and firm in meditation.

१२७. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी-"हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया !" तं चेव भणइ, सो जाव विहरइ।

१२७. जब उस देव ने चूलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय और शान्त देखा तो दूसरी बार तथा तीसरी बार वैसा ही कहा। चूलनीपिता फिर भी निर्भय होकर धर्मध्यान में स्थित रहा।

127. When the demon-god saw Chulanipita unaffected he said the same thing second and third time. But Chulanipita remained unaffected and firm in meditation.

पुत्रों का वध

१२८. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता आसुरुत्ते ४ चुलणीपियस्स समणोवासयस्स जेट्ठं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणित्ता अग्गओ घाएइ, घाइत्ता तओ मंससोल्लए करेइ, करेत्ता आदाण-भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहित्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचइ।

१२८. तब उस देव ने चूलनीपिता को निर्भय देखा तो वह अत्यन्त क्रोधित हो उठा। तब चूलनीपिता के बड़े लड़के को घर से उठाकर लाया और उसके सामने लाकर मार डाला। तीन टुकड़े किए। उन्हें उबलते तेल से भरी कढ़ाही में तला और उसके माँस और रक्त से चूलनीपिता के शरीर पर छींटे डाले।

KILLING OF SONS

128. Then the demon-god became highly enraged. He brought the eldest son from the house and killed him in his (Chulanipita's) presence, cut the body into three pieces, roasted in the boiling oil and sprinkled the body of Chulanipita with the meat and blood.

१२९. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

१२९. चूलनीपिता श्रमणोपासक ने देव द्वारा दिये हुए कष्ट की उस असह्य वेदना को तितिक्षाभावपूर्वक सहन किया।

129. Chulanipita patiently endured the unbearable pain caused by the demon-god by this dreadful act.

१३०. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी-"हं भो चुलणीपिया समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ! जाव न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, तव अग्गओ घाएमि" जहा जेट्ठं पुत्तं तहेव भणइ, तहेव करेइ। एवं तच्चंपि कणीयसं जाव अहियासेइ।

१३०. तब भी देव ने चूलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय यावत् शान्त देखा, तो दुबारा उससे कहा-"अरे अप्रार्थित-जिसकी कोई इच्छा नहीं करता है, उस मृत्यु को चाहने वाले ! यदि तू अपने शीलादि व्रतों को भंग नहीं करता है, तो मैं आज तेरे मँझले पुत्र को घर से उठाकर तेरे सामने मारता हूँ।" इस पर भी चूलनीपिता अविचल रहा तो उसने जैसा कहा था वैसा ही किया। चूलनीपिता ने उस असह्य वेदना को अत्यन्त समभावपूर्वक सहन किया। तब देव ने तीसरे छोटे पुत्र के विषय में भी उसी प्रकार कहा और चूलनीपिता के सामने लाकर मार डाला। उस तीव्र पीड़ा को वह अविचल भाव से सहन करता रहा।

130. When the demon-god saw Chulanipita unaffected, he repeated—"O desirous of death ! If you do not discontinue your vows, I shall bring your second son today and kill him in your presence." Chulanipita was still

unaffected. Then the demon-god did as he had declared. Chulanipita overcame that unbearable pain with extreme equanimity. Then the demon-god repeated the same with the third son and killed him in his presence. But Chulanipita bore that unbearable situation calmly.

माता के वध की धमकी

१३१. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता चउत्थंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी–"हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ! ४, जइ णं तुमं जाव न भंजेसि, तओ, अहं अज्ज जा इमा तव माया भद्दा सत्थवाही देवय-गुरु-जणणी दुक्कर-दुक्करकारिया, तं ते साओ गिहाओ नीणेमि नीणित्ता तव अग्गओ घाएमि घाइत्ता तओ मंससोल्लए करेमि, करेत्ता आदण-भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहित्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

१३१. देव ने जब चूलनीपिता को निर्भय और शान्त बैठे देखा तो क्रोधित होकर चौथी बार पुनः कहा–"अरे ! मौत को चाहने वाले चूलनीपिता ! यदि तू आज अपने व्रतों को भंग नहीं करेगा तो अब तेरे लिए देव और गुरु के समान पूजनीय, तेरे लिए अत्यन्त कष्ट उठाने वाली तेरी भद्रा माता को घर से लाऊँगा और तेरे सामने उसकी हत्या कर डालूँगा। उसके तीन टुकड़े करके उबलते तेल की कड़ाही में तलूँगा। उसके माँस और रुधिर से तेरे शरीर को छींटूँगा, जिससे तू आर्त्त, दुःखी और विवश होकर अकाल में ही प्राणों से हाथ धो बैठेगा।"

THREAT OF KILLING THE MOTHER

131. When the demon-god saw Chulanipita calm and unaffected, he in anger said the fourth time— "O Chulanipita, desirous of death ! If you do not abandon your vows today, I shall bring your mother Bhadra from your house who commands your respect like an angel, who is respected like a teacher, who bears atrocities for you,

I shall kill her in your presence, cut her into three pieces, roast her in oil and sprinkle your body with her meat and blood. You shall then feel dejected, painful and helpless and die an untimely death."

विवेचन-इस प्रसंग में माता के लिए तीन महत्त्वपूर्ण शब्द आये हैं-

देव-देव का अर्थ है देवता अथवा भगवान, जिनके प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव रखकर पूजा की जाती है।

गुरु-गुरु का पद आदरास्पद है। वे अच्छी शिक्षा देकर योग्य बनाते हैं। माता भी सन्तान की सबसे श्रेष्ठ गुरु है।

जननी-जन्म देने वाली। अनेक कष्ट उठाकर वह सन्तान को जन्म देती है, उसका पालन-पोषण करती है।

इन तीन विशेषणों द्वारा माता का महत्त्वपूर्ण स्थान और उसकी पूजनीयता सूचित की गई है।

Explanation—Here three important words are used for the mother—

Dev—*Dev* means god or *Bhagavan* who is respected with a firm faith.

Guru—The position of *guru* (teacher) commands respect. He imparts moral teachings and makes one able to command respect in society. Mother is also the ideal teacher of her children.

Janani—One who gives birth. Mother gives birth after bearing many pains. She brings him/her up.

By the said three adjectives, the important status of the mother and the respect she deserves is indicated.

१३२. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

१३२. देव के ऐसा कहने पर भी श्रमणोपासक चूलनीपिता निर्भयतापूर्वक ध्यान में स्थित रहा।

132. Even after the said threat of the demon-god, Chulanipita remained unaffected.

१३३. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता चुलणीपियं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—"हं भो चुलणीपिया ! सणोवासया ! तहेव जाव ववरोविज्जसि।"

१३३. देव ने जब श्रमणोपासक चूलनीपिता को निर्भय देखा तो दूसरी और तीसरी बार फिर वही बात कही—"हे चूलनीपिता ! तू आज प्राणों से हाथ धो बैठेगा।"

133. When the demon-god found Chulanipita unaffected he repeated his threat for the second time and again for the third time.

क्षुब्ध होकर पिशाच के पीछे दौड़ना

१३४. तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५—'अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरइ, जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता ममं अग्गओ घाएइ, घाइत्ता जहा कयं तहा चिंतेइ, जाव गायं आयंचइ। जेण मम मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ जाव सोणिएण य आयंचइ। जेणं मम कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव आयंचइ। जा वि य णं इमा मम माया भद्दा सत्थवाही देवय-गुरु-जणणी दुक्कर-दुक्करकारिया, तं पि य णं इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए' त्ति कट्टु उद्धाइए, से वि य आगासे उप्पइए, तेणं च खंभे आसाइए, महया महया सद्देणं कोलाहले कए।

१३४. देव ने जब दूसरी बार, तीसरी बार ऐसा कहा तो चूलनीपिता के मन में विचार आया—'यह पुरुष अनार्य है, बड़ा अधम और नीच बुद्धि का है। नीचतापूर्ण अनार्य कर्मों का आचरण करने वाला है। इसने मेरे बड़े पुत्र को घर से लाकर मेरे सामने मार डाला। इसी प्रकार मँझले और छोटे पुत्र को भी मार डाला और उसके रक्त को मेरे शरीर पर छींटा। यह मेरी माता को, जो देवता और गुरु के समान पूजनीय है तथा जिसने मेरे लिए अनेक भारी कष्ट उठाये हैं, उसे मेरे सामने लाकर मार डालना

चूलनीपिता को मातृवध की धमकी THREAT OF MOTHER'S MURDER TO CHULANIPITA

चित्र परिचय १०	Illustration No. 10
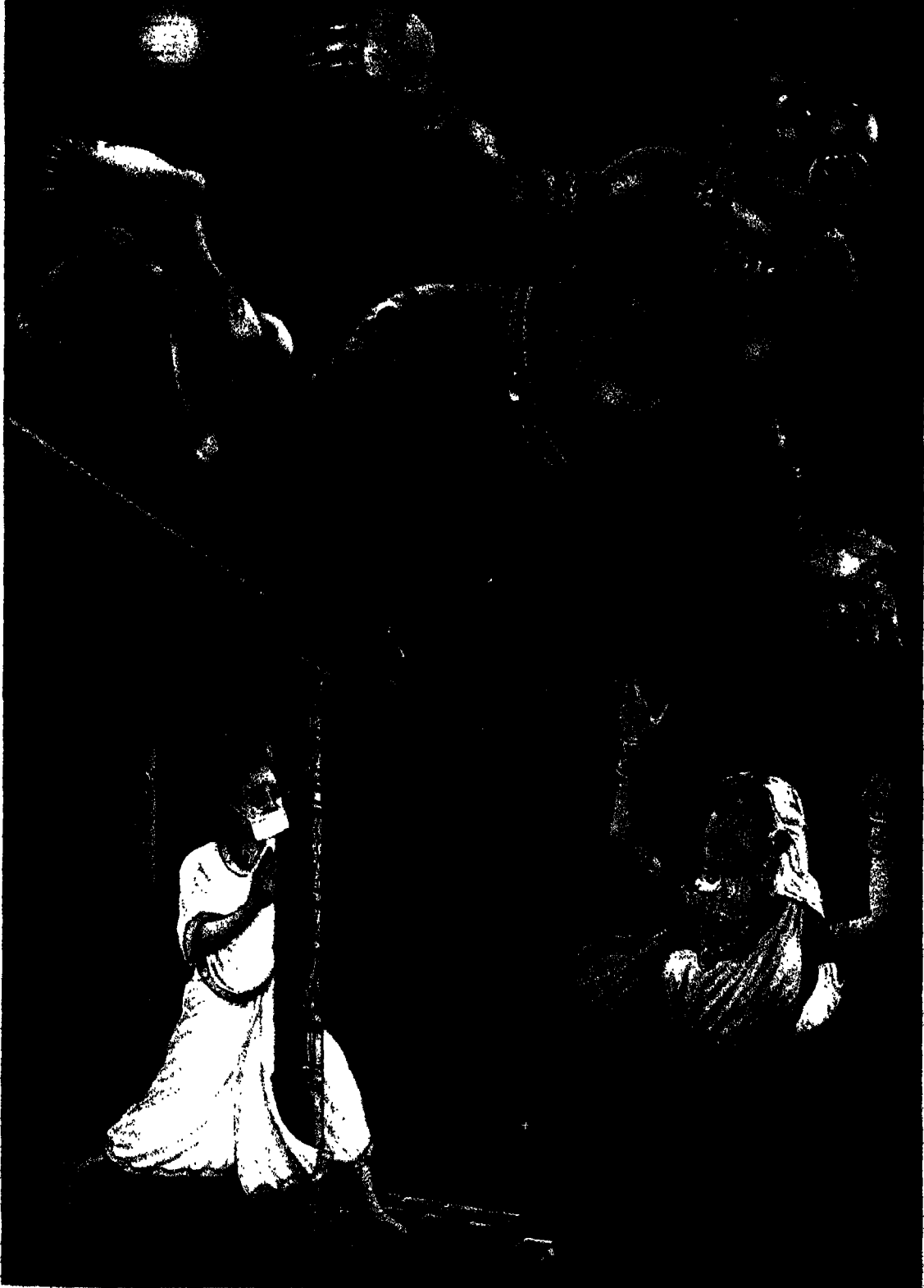
चूलनीपिता को माता के वध की धमकी

चूलनीपिता पौषधशाला में धर्माराधना कर रहा था। आधी रात के समय एक पिशाचरूपधारी देव प्रकट हुआ। उसने अनेक उपसर्ग देने के बाद कहा- "चूलनीपिता ! तू इन शीलव्रत, गुणव्रत आदि व्रतों को नहीं छोड़ेगा; तो मैं तेरी पूज्यनीया माता भद्रा को तेरे सामने लाकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। जिसके बिछोह में तू आर्त्त-रौद्रध्यान करता हुआ मरेगा।"

देव की धमकी सुनकर माता के वध की कल्पना से ही चूलनीपिता का रोम-रोम सिहर उठा। वह उस दुष्ट पुरुष को पकड़ने के लिए उठा-"पकड़ो ! पकड़ो !" शोर मचाता हुआ दौड़ा। अँधेरे में उसके हाथ में खम्भा आ गया। खम्भे से सिर टकराया। देव आकाश में उछल गया।

पुत्र का शोर सुनकर माता भद्रा दौड़कर आई। उसने सारी बात पूछकर बताया- "पुत्र ! तुझे छलने के लिए यह किसी देव की माया थी। तेरे तीनों पुत्र और मैं घर में सुरक्षित हैं। तुमने अपने पौषधव्रत का भंग कर दिया।"

उपासकदशा, अ. ३, सूत्र १०५

THREAT OF MOTHER'S MURDER TO CHULANIPITA

Chulanipita was engaged in spiritual practices in the *Paushadhshala.* At mid-night a demon-god appeared. He tortured him several times. Later, he said—"Chulanipita ! In case you do not discard the primary vows, the disciplinary vows and other restraints, I shall bring your mother Bhadra before you and cut her into pieces. In her absence, you shall feel dejected and horrified and die in that state."

At the threat of the demon-god, Chulanipita felt horrified at the very thought of murder of his mother. He got up to catch hold the person concerned. He ran shouting—"Catch him, catch him." In the darkness he held a pillar and his head struck against it. The demon-god disappeared in space.

At the cries of her son, Bhadra came running. After knowing the entire incident, she said—"Son ! It was the trick of an angel in order to bewilder you. Your all the three sons are safe in the house. You have broken your *Paushadh* vow."

—Upasak-dasha, Ch. 3, Sutra 105

चाहता है। इसलिए अच्छा यह है कि मैं इसको पकड़ लूँ।' ऐसा विचार कर वह पकड़ने के लिए दौड़ा तो देव आकाश में उड़ गया। चूलनीपिता के हाथ में खम्भा लगा। वह उसे पकड़कर जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

RUNNING AFTER DEMON-GOD IN ANGER

134. When the demon-god repeated his threat for the third time, Chulanipita thought—"This person is ill-born. He is of evil and low intelligence. His conduct is that of hard and hellish type. He had brought my eldest son to me and killed him. Again he killed my second and then the third son and sprinkled my body with their blood. He wants to kill, in my presence, my mother who is respected by me like an angel and a teacher, who has endured many troubles for my sake. So he is condemnable. It is proper for me to catch hold of him." With these thoughts, he ran to catch the demon god, but the demon-god disappeared. Chulanipita held the pillar. He then started shouting loudly.

माता का उद्‌बोधन

१३५. तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं कोलाहल-सद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव चुलणीपिया समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी–"किण्णं पुत्ता ! तुमं महया महया सद्देणं कोलाहले कए ?"

१३५. भद्रा सार्थवाही ने जब यह कोलाहल सुना तो चूलनीपिता श्रमणोपासक के पास आई और पूछा–"पुत्र ! तुम जोर-जोर से क्यों चिल्लाए ?"

MOTHER'S ADVICE

135. When Bhadra, the land-lady (*Sarthvahi*) heard the shouts, she came to Chulanipita and said—"Son ! Why are you shouting so loudly ?"

१३६. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी–"एवं खलु अम्मो ! न जाणामि के वि पुरिसे आसुरुत्ते ५ एगं महं नीलुप्पल

जाव असिं गहाय ममं एवं वयासी–हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ! ४ वज्जिया, जइणं तुमं जाव ववरोविज्जसि।''

१३६. माता भद्रा सार्थवाही से चूलनीपिता अपनी बीती बात कहने लगा–''हे मात ! न जाने कौन पुरुष आया था। वह क्रोध में भरा हुआ हाथ में एक बड़ी नीली तलवार लेकर मुझसे कह रहा था–मृत्यु को चाहने वाले हे चूलनीपिता। यदि तू आज अपने शीलादि व्रतों का त्याग नहीं करेगा तो मैं तेरे ज्येष्ठ पुत्र को मारकर उसके माँस व रक्त से तुम्हारे शरीर को सींचूँगा।''

136. Chulanipita narrated the entire happening to his mother saying—"O mother ! Some unknown person had come. He was filled with anger. He had a large blue sword in his hand. He was saying—O Chulanipita ! Desirous of death ! If you do not discard your vows, I shall kill your eldest son and sprinkle your body with his roasted meat and blood."

१३७. तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि।

१३७. उस पुरुष के ऐसा कहने पर मैं भयभीत नहीं हुआ और अपनी धर्म-साधना में स्थिर रहा।

137. I was not frightened at his threat and remained firm in my spiritual practice.

१३८. तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता ममं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी–''हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया ! तहेव जाव गायं आयंचइ।''

१३८. जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय तथा शान्त देखा तब दूसरी तथा तीसरी बार फिर वैसा ही कहा–''हे श्रमणोपासक चूलनीपिता ! जैसा मैंने तुम्हें कहा वैसे मैं तुम्हारे माँस और रुधिर से शरीर को सींचूँगा।''

138. When he found me unaffected, he repeated his threat twice and thrice. He then said—"O *Shramanopasak* Chulanipita ! As I have said, I shall sprinkle your body with meat and blood."

१३९. तए णं अहं उज्जलं जाव अहियासेमि, एवं तहेव उच्चारेयव्वं जाव कणीयसं जाव आयंचइ, अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि।

१३९. मैंने उस पुरुष द्वारा दी गई असह्य वेदना को समभावपूर्वक सहन किया। इस प्रकार पूर्वोक्त सारी घटना माता को कही। यावत् छोटे पुत्र को मारकर मेरे शरीर को उसके माँस और रुधिर के छींटे मारे। मैंने इस असह्य वेदना को भी सहन किया।

139. I calmly endured the unbearable pain caused by his conduct. He then narrated the entire incident that happened to his three sons and told his mother that he with equanimity endured the extremely unbearable pain.

१४०. तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता ममं चउत्थंपि एवं वयासी-"हं भो चुलणीपिया समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ! जाव न भंजेसि, तो ते अज्ज जा इमा माया गुरु जाव ववरोविज्जसि।"

१४०. जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय देखा तो चौथी बार फिर बोला-"हे चूलनीपिता श्रमणोपासक ! अनिष्ट को चाहने वाले ! यावत् तू अपने व्रतों को भंग नहीं करता है तो जो आज तेरी देव-गुरुस्वरूप माता को भी मार डालूँगा। यावत् तू मर जायेगा।"

140. When that person saw me unperturbed, he repeated his threat for the fourth time and said—"O Chulanipita ! Desirous of evil ! In case you do not discard your vows today, I shall kill your mother who is respected by you like a god and a teacher. And them you shall die."

१४१. तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि।

१४१. तब उस पुरुष द्वारा ऐसा कहने पर भी मैं निर्भीकतापूर्वक धर्मध्यान में स्थित रहा।

141. Even at this threat, I remained unaffected.

१४२. तए णं से पुरिसे दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वयासी-"हं भो चुलणीपिया ! समणोवासया ! अज्ज जाव ववरोविज्जसि।"

१४२. तब उस पुरुष ने दूसरी बार और तीसरी बार उसी प्रकार कहा– "हे चूलनीपिता ! आज तुम प्राणों से हाथ धो बैठोगे।"

142. Then that person repeated the threat second and third time, and said—"O Chulanipita ! You shall lose your life today."

१४३. तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५–अहो णं ! इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ, जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव कणीयसं जाव आयंचइ, तुब्भे वि य णं इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता ममं अग्गओ घाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्ति कट्टु उड्डइए। से वि य आगासे उप्पइए, मए वि य खंभे आसाइए, महया महया सद्देणं कोलाहले कए।

१४३. उस पुरुष द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार यों कहे जाने पर मेरे मन में विचार आया–'यह पुरुष अनार्य है, अधम नीच है, इसकी बुद्धि भी अनार्य है और आचरण भी अनार्य जैसा है। इसने मेरे बड़े, मँझले और छोटे पुत्र को मार डाला है और मेरे शरीर को उनके खून से सींचा है। अब यह तुमको (माता को) भी मेरे सामने लाकर मार डालना चाहता है। अतः इसे पकड़ लेना ही उचित है।' इस प्रकार विचार कर ज्यों ही मैं उसे पकड़ने के लिए उठा, वह आकाश में उड़ गया और मेरे हाथ में खम्भा आ गया और मैं जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

143. When that person repeated his threat, I thought—'This person belongs to low area. He is of evil character, his intellect is ignoble and his conduct is hellish. He has killed my eldest, middle and youngest sons and sprinkled their blood on my body. He now wants to bring you to me and kill you. So it is better to catch hold of him.' With these thoughts, when I got up to catch hold of him, he flew towards the sky and I held only a pillar. So I started shouting so loudly.

१४४. तए णं सा भद्दा सत्थवाही चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी–"नो खलु केइ पुरिसे तव जाव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ

घाएइ, एस णं केइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ, एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे। तं णं तुमं इयाणिं भग्गव्वए भग्गनियमे भग्गपोसहे विहरसि। तं णं तुमं पुत्ता ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि (पडिक्कमाहि, निंदाहि, गरिहाहि, विउट्टाहि, विसोहेहि, अकरणयाए अब्भुट्ठाहि, अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं) जाव पडिवज्जाहि।''

१४४. तब भद्रा सार्थवाही श्रमणोपासक चूलनीपिता से बोली-''हे पुत्र ! ऐसा कोई भी पुरुष नहीं था; जो तेरे ज्येष्ठ पुत्र यावत् कनिष्ठ पुत्र को घर से लाया हो, तुम्हारे सामने मारा हो। यह किसी देव ने तुझे उपसर्ग किया है। तूने यह भयंकर मिथ्या घटना देखी है। (तुम्हारे तीनों पुत्र सकुशल हैं) तुम चलित-चित्त होकर, उस पुरुष को पकड़ने के लिए उठे इससे तुम्हारा व्रत, नियम और पौषधोपवास भंग हो गया है, खण्डित हो गया है। इस व्रत भंग के लिए तुम आलोचना करो (प्रतिक्रमण करो, आत्म-निन्दा करो, गर्हा करो, इस भूल को वित्रोटित करो-मिटाओ, इस अकृत्य की शुद्धि करो, प्रायश्चित्त और तपःकर्म ग्रहण करो) और आत्म-शुद्धि करो।''

144. Then Bhadra told Chulanipita—"O Son ! There was no such person, who might have brought your eldest, middle and youngest sons from the house and kill them. Some gods have caused these scenes. You have seen this dreadful non-real scene. Your all the three sons are all right. You have lost your self-control. You got up to catch that person and thus you have broken your restraint and the vow of *Paushadhopvas*. You should repent for this great folly and do self-condemnation. Discard this weakness. Clear your self of this night's act, accept the spiritual path of penance and austerities to purify yourself."

विवेचन-चूलनीपिता का चिल्लाना सुनकर माता आई तो उसने सारी घटना कह सुनाई। माता ने उसे आश्वासन देते हुए कहा-''बेटा ! तेरे तीनों पुत्र आराम से सोए हुए हैं। तुम्हारे साथ कोई दुर्घटना नहीं हुई, तुझे भ्रम हुआ है। किसी मिथ्या-दृष्टि देव ने तेरे सामने यह भयंकर दृश्य उपस्थित किया है। जैसा कामदेव श्रमणोपासक के प्रसंग में बताया, वह केवल देवकृत विकुर्वणा मात्र-माया थी।''

माता ने यहाँ दो शब्द कहे हैं-**भग्गव्वए-भग्गपोसहे**-तुम क्रोध में आकर उस मायावी को पकड़ने के लिए उठे, इससे तुम्हारा व्रत, नियम और पौषधोपवास भंग हो गया। यहाँ व्रत का

अर्थ है–स्थूल प्राणातिपात विरमण रूप प्रथम व्रत। स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत में श्रावक निरपराध जीव की हिंसा का त्याग करता है, तथा पौषध में निरपराध तथा सापराध जीव की हिंसा का भी त्याग होता है। चूलनीपिता ने क्रोधपूर्वक उपसर्गकारी के विनाश के लिए दौड़कर भाव से इस व्रत को भंग कर दिया। नियम का अर्थ है–उत्तरगुण। क्रोध करने में उत्तरगुण रूप नियम का भंग हुआ और हिंसात्मक चेष्टा के कारण पौषध आदि की मर्यादा का भी भंग हो गया।

विशेष शब्दों के अर्थ–**'आलोएहि-आलोचय, गुरुभ्योनिवेदय'**–गुरु के सामने अपनी भूल का निवेदन करो।

'पडिक्कमाहि-निवर्तस्व'–वापस लौटो, भूल के समय तुम बहिर्मुख हो गये, इसलिए पुनः आत्म-चिन्तन में लीन हो जाओ।

'निंदाहि'–आत्मा को साक्षी मानकर इस भूल की निन्दा करो।

'गरिहाहि'–गुरु को साक्षी बनाकर उस भूल के लिए खेद प्रकट करो।

'विउट्टाहि'–तुम्हारे मन में उस कार्य के सम्बन्ध में जो विचारधारा चल रही है उसे मन से निकाल दो।

'विसोहेहि'–अतिचार अर्थात् दोषरूपी मैल को धोकर आत्मा को शुद्ध कर लो।

'अकरणयाए अब्भुट्ठाहि'–पुनः ऐसा न करने का संकल्प करो।

'अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जाहि'–दोष-शुद्धि के लिए यथायोग्य तपस्या तथा प्रायश्चित्त अंगीकार करो।

Explanation—At the shouts of Chulanipita, the mother came. Chulanipita narrated the entire incident to his mother. The mother, pacifying him, said—"Son ! Your all the three sons are sleeping in comfort. No bad incident has happened with you. Some demon-gods of ill faith have presented the dreadful scene before you. As had been mentioned earlier in case of Kamdev, it was god-created event and not a reality."

Mother has used here two words—**Bhaggavae, Bhaggaposahe**. You had got up in anger to catch that person so your vow, the restraint and *Paushadhopvas* has broken untimely. Here the vow means the first vow of gross non-violence. In the

vow of *Sthool Pranatipat* (the vow of gross non-violence), the *Shravak* undertakes the oath that he shall not do violence to ignorant living beings. In *Paushadh,* he undertakes the oath not to be violent to both innocent and the one who has done any harm to him. Chulanipita in anger made up his mind to catch the one causing him trouble and ran for this purpose. Thus, he discarded his vow. *Niyam* means special restraints. Due to anger, the special restraint was affected and due to his attempt, the restraints of *Paushadh* were affected.

Meanings of Important Words—Aaloehi-Aalochaya, Gurubhyo-nivedaya—To mention one's folly before the teacher.

Padikkmahi-Nivartasva—To return, at the time of folly, your mind was worldly. So you should again absorb yourself in self-meditation.

Nindahi—To repent for your folly in presence of yourself.

Garihahi—To do penance for the folly in the presence of the master.

Viruttahi—The thought of the incident that has polluted your mind should be discarded.

Visohehi—To cleanse your soul of the dirt caused by partial transgressions.

Akaranayaye Abbhutthahi—Firmly decide not to do such an act in future.

Aharihan Tavokamman Payachhittan Padivajjahi—To undertake austerities and penance prescribed for removing the dirt caused by foolish conduct.

चूलनीपिता द्वारा प्रायश्चित्त ग्रहण

१४५. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मगाए भद्दाए सत्थवाहीए "तह" त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ।

१४५. तब श्रमणोपासक चूलनीपिता ने माता भद्रा सार्थवाही का कथन विनयपूर्वक स्वीकार किया–"आप ठीक कहती हैं।" तथा उस भूल की आलोचना यावत् प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि की।

ACCEPTANCE OF PENANCE BY CHULANIPITA

145. Chulanipita listened to his mother with gratitude, accepted her advice and said—"You are right." He then purified his soul by repentance and penance.

प्रतिमा ग्रहण

१४६. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं जहा आणंदो जाव एक्कारसमं पि।

१४६. तत्पश्चात् श्रमणोपासक चूलनीपिता ने आनन्द श्रावक की तरह पहली प्रतिमा स्वीकार की और सूत्र के अनुसार पालन किया। इसी प्रकार क्रमशः दूसरी से ग्यारहवीं प्रतिमा स्वीकार की। उनकी यथाविधि आराधना की।

ACCEPTANCE OF PRATIMA

146. Thereafter Chulanipita accepted the first *Pratima* (Special restraint) like Anand and followed it in the prescribed manner. He then successively followed the second, third, upto eleventh *Pratimas*. He followed them meticulously.

उपसंहार

१४७. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं उरालेणं जहा कामदेवो जाव सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं अरुणप्पभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५। निक्खेवो।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं तइयं चुलणीपियाज्झयणं समत्तं ॥

१४७. कामदेव की भाँति चूलनीपिता भी कठोर तपश्चरण द्वारा बीस वर्ष तक आत्मा को भावित करता रहा। आयुष्य पूर्ण कर सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक के उत्तर-

पूर्व ईशानकोण में स्थित अरुणप्रभ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी चार पल्योपम आयु स्थिति है। वह भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा। मोक्ष प्राप्त करेगा।

[निक्षेप—उपसंहार—आर्य सुधर्मा बोले—"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के तृतीय अध्ययन का यह भाव कहा है जो मैंने तुम्हें बतलाया है।"]

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का तृतीय चूलनीपिता अध्ययन समाप्त ॥

CONCLUSION

147. Chulanipita did hard austerities like Kamdev for twenty years. He after his death was re-born in *Arunaprabh* Viman which is in north-east of *Saudharma Avatansak* of *Saudharma Kalp.* There his life-span is four *Palyopam.* He shall thereafter be re-born in Mahavideh and shall attain salvation from there.

[**Nikshep—Conclusion—**Arya Sudharma said—"Jambu ! This is the narration of the Third Chapter of *Upasak-dasha* mentioned by Bhagavan Mahavir, and I have told you exactly the same."]

● **THIRD CHAPTER CONCLUDED** ●

सुरादेव : चतुर्थ अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ वाराणसी नगरी में सुरादेव नामक गाथापति रहता था। वह बहुत समृद्धिशाली था। छह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ उसके निधान में थीं, छह करोड़ व्यापार में तथा छह करोड़ घर के वैभव में लगी थीं। उसकी पत्नी का नाम धन्या था।

✦ एक बार भगवान महावीर वाराणसी में पधारे। समवसरण हुआ। आनन्द की तरह सुरादेव ने भी श्रावक धर्म स्वीकार किया।

✦ एक दिन की घटना है, सुरादेव पौषधशाला में ब्रह्मचर्य एवं पौषध व्रत स्वीकार कर धर्मध्यानरत था। आधी रात के समय एक देव उसके सामने प्रकट हुआ। उसने सुरादेव को धर्माराधना से हट जाने के लिए बहुत डराया-धमकाया। न मानने पर उसने उसके तीनों पुत्रों की क्रमशः उसी प्रकार हत्या कर दी, जिस प्रकार चूलनीपिता के कथानक में देव ने उसके पुत्रों को मारा था। पर, सुरादेव की दृढ़ता नहीं टूटी। वह निर्भीकता के साथ अपनी ध्यानाराधना में लीन रहा।

✦ हारे-थके देव ने सोचा-'मुझे अब इसके शरीर की ही दुर्दशा करनी होगी। मनुष्य को शरीर से अधिक प्रिय कुछ भी नहीं होता।' यह सोचकर देव ने सुरादेव को अत्यन्त कठोर शब्दों में कहा-"अब देखो, मैं तुम्हारी खुद की कैसी बुरी हालत करता हूँ। तुम व्रतों का त्याग कर दो, नहीं तो मैं तुम्हारे शरीर में एक ही साथ दमा, खाँसी आदि सोलह महाभयानक बीमारियाँ पैदा किए देता हूँ। इन बीमारियों से तुम्हारा शरीर सड़-गल जायेगा।"

✦ अपनी आँखों के सामने बेटों की हत्या देख, जो सुरादेव विचलित नहीं हुआ था, अपने पर आने वाले रोगों का नाम सुनते ही उसका मन काँप गया। उसका धैर्य टूट गया। उसने सोचा-'जो दुष्ट मुझे ऐसा बना देना चाहता है, उसे पकड़ लेना चाहिए।' पकड़ने के लिए उसने हाथ फैलाए। वह तो देवमाया का षड्यन्त्र था, कैसे पकड़ में आता? देव आकाश में लुप्त हो गया। पौषधशाला का जो खम्भा सुरादेव के सामने था, उसके हाथों में आ गया। सुरादेव हक्का-बक्का रह गया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

✦ सुरादेव की पत्नी धन्या ने जब यह चिल्लाहट सुनी तो वह तुरन्त पौषधशाला में आई और अपने पति से पूछने लगी-"क्या बात है? आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?" इस पर सुरादेव ने वह सारी घटना धन्या को बतलाई। धन्या बड़ी बुद्धिमती थी। उसने अपने पति से कहा-"आपको धर्म से डिगाने के लिए यह कोई देव-उपसर्ग था। आपके पुत्र सकुशल हैं। आपकी देह में रोग

पैदा करने की बात धमकी के सिवाय कुछ नहीं थी। भयभीत होकर आपने अपना व्रत खण्डित कर दिया, यह दोष हुआ। प्रायश्चित्त लेकर आपको शुद्ध होना चाहिए। सुरादेव ने अपनी पत्नी की बात सहर्ष स्वीकार की। अपनी भूल के लिए आलोचना की, प्रायश्चित्त ग्रहण किया।''

✦ मनुष्य कभी-कभी अपने धन, परिवार, पुत्र, माता, पिता से भी मोह हटा लेता है, परन्तु शरीर की ममता का त्याग नहीं कर पाता। शरीर के प्रति रहा सूक्ष्मतम राग-भाव भी साधना में बाधक बन जाता है। भूल का ज्ञान चाहे कोई कराये, उस पर चिन्तन कर, आत्म-निरीक्षण कर उसकी शुद्धि कर लेना चाहिए। यह इस अध्ययन का संदेश है।

SURADEV : FOURTH CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- ✦ Suradev *Gathapati* lived in Varanasi. He was very wealthy. He had sixty million gold coins in cash, sixty million in business and sixty million in household articles. Dhanya was his wife.

- ✦ Once Bhagavan Mahavir came to Varanasi. A congregation was held. Suradev accepted the conduct of householder from the Lord like Anand.

- ✦ One day Suradev was in *Paushadh vow* in his *Paushadhshala* observing complete sex-restraint. At mid-night a demon-god appeared and threatened Suradev to discontinue his vow. When Suradev did not agree, he killed his three sons one after the other as had been in case of Chulanipita. But Suradev remained firm in his spiritual practices.

- ✦ The disgusted demon-god then thought—'I should now give physical troubles. To a person his body is the most loved one.' Thinking thus, the demon-god said in a pretty harsh voice—"See how badly shall I now deal with your body. You abandon your vows, otherwise I shall create sixteen dreadful diseases in your body including asthma and cough. Your body shall decay with these diseases."

- ✦ Suradev was not affected at the murder of his sons in his presence but he felt bewildered at the very name of the diseases going to affect him. He lost his courage. He thought—'The cruel person who intends to make me wretched must be caught.' He spread his hands to catch him. But that was a trick of the god. How could he catch the demon ? The demon-god disappeared in heaven. He caught hold the pillar in front of him. Suradev felt bewildered. He started shouting loudly.

- When Dhanya, the wife of Suradev heard his shouts, she at once came to the *Paushadhshala* and asked her husband—"What is the matter ? Why are you shouting ?" Then Suradev narrated the entire incident to her. Dhanya was very intelligent. She told her husband—"That was some super-natural happening in order to weaken your spiritual faith. Your sons are all right. It was simply a threat to induce pain in your body and nothing else. You have spoilt your vow by getting frightened. It is an undesirable act. You should purify yourself by undertaking penance. Suradev accepted the advice of his wife gladly. He repented for his folly and accepted the penance.
- Man sometimes withdraws his attachment for wealth, family and parents but does not discard his attachment for his own body. Even the subtle attachment towards the body is a hurdle in spiritual practices. Whosoever reminds one of his mistake, one should attend to it, meditate on it and after self-introspection remove it and purify himself. This is the lesson of this chapter.

सुरादेव : चउत्थमज्झयणं
सुरादेव : चतुर्थ अध्ययन
SURADEV : FOURTH CHAPTER

उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स।

यहाँ चतुर्थ अध्ययन का उपक्षेप–उपोद्‌घात इस प्रकार कहना चाहिए।

The introduction of the fourth chapter should be started here.

[जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवासगदसाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?]

[जम्बू ने आर्य सुधर्मा से पूछा–''यदि सिद्धि प्राप्त भगवान महावीर ने उपासकदशा के तृतीय अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो भंते ! उन्होंने चतुर्थ अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'']

[Jambu asked Arya Sudharma—"I have heard the description of the third chapter of *Upasak-dasha*. Bhante ! What is the meaning of the fourth chapter narrated by Mahavir ?"]

१४८. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाराणसी नामं नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया। सुरा देवे गाहावई अड्ढे। छ हिरण्ण कोडीओ जाव छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। धन्ना भारिया।

सामी समोसढे। जहा आणंदो तहेव पडिवज्जइ गिहिधम्मं। जहा कामदेवो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

१४८. आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू को प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहते हैं–जम्बू ! उस काल और उस समय वाराणसी नाम की नगरी थी। कोष्ठक नामक चैत्य था। वहाँ के राजा का नाम जितशत्रु था। वहाँ सुरादेव गाथापति रहता था, जो अतीव समृद्धिशाली था। उसकी पत्नी का नाम धन्या था। सुरादेव के पास छह करोड़ सुवर्ण कोष में सुरक्षित थे, छह करोड़ व्यापार में लगे हुए थे और छह करोड़ घर वैभव में

फैले थे। उसके छह व्रज (गोकुल) थे। प्रत्येक व्रज में दस हजार गायों के हिसाब से ६० हजार पशु-धन था।

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान महावीर वाराणसी पधारे और उद्यान में विराजमान हुए। सुरादेव भी आनन्द श्रमणोपासक की भाँति दर्शन को आया और श्रावक धर्म स्वीकार करके उसका पालन करने लगा।

एक समय उसने भी कामदेव के समान पौषधोपवास किया और भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्मप्रज्ञप्ति के अनुसार जीवन बिताने लगा।

148. Arya Sudharma replied—Jambu ! At that time during that period, there was a city called Varanasi. There was a temple named Koshthak. Jitshatru was its ruler. Suradev *Gathapati* lived there. He was extremely rich. Dhanya was his wife. He had sixty million gold coins in his safe, sixty million in trade and sixty million spent in household articles. He had six *gokuls* of ten thousand cows each. Thus he had sixty thousand cattle.

Once during his wanderings, Bhagavan Mahavir reached Varanasi and stayed in the garden. Suradev came to see him like Anand. He heard his discourse and accepted the vows of a householder and started their practice.

Once he also did *Paushadhopvas* like Kamdev and started his detached spiritual practice as enunciated by Bhagavan Mahavir.

विवेचन–वाराणसी के राजा का नाम जितशत्रु बताया है। लगता है यह राजा का मूल नाम नहीं होकर एक विशेषण है जिसका अर्थ है शत्रु को जीतने वाला। किसी कारणवश राजा के नाम का उल्लेख नहीं होने पर वहाँ जितशत्रु नाम कहकर कथा का वर्णन करने की प्राचीन परिपाटी रही है। आगमों व जैन कथाग्रन्थों में लगभग निम्न ग्यारह नगरों के राजाओं का नाम जितशत्रु मिलता है–

१. वाणिज्यग्राम, २. चम्पा नगरी, ३. वाराणसी,
४. उज्जयिनी, ५. सर्वतोभद्र नगर, ६. मिथिला नगरी,
७. पांचाल देश, ८. आमलकल्पा नगरी, ९. सावत्थी नगरी,
१०. आलभिका नगरी, तथा ११. पोलासपुर।

Explanation—Jitshatru is stated to be the ruler of Varanasi. It appears that it was not the original name of the king. This name was based on his capability of winning the enemy. It has been the practice in the past to start the story by this name without mentioning the actual name of the king. In Jain scriptures (*Agams*) and Jain stories, the ruler of eleven places is mentioned as Jitshatru viz.—

(1) Vanijyagram, (2) Champa, (3) Varanasi,
(4) Ujjayini, (5) Sarvatobhadra city, (6) Mithila,
(7) Panchal, (8) Amalkalpa, (9) Savathi,
(10) Alabhika, and (11) Polaspur.

पिशाच का उपद्रव

१४९. तएं णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था, से देवे एगं महं नीलुप्पल. जाव असिं गहाय सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी-"हंभो सुरादेवा समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ! ४ जइ णं तुमं सीलाइं जाव न भंजेसि, तो ते जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच सोल्लए करेमि, करित्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि, जहा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।" एवं मज्झिमयं, कणीयसं; एक्के-क्के पंच सोल्लया। तहेव करेइ, जहा चुलणीपियस्स, नवरं एक्के-क्के पंच सोल्लया।

१४९. एक दिन की घटना है-सुरादेव श्रमणोपासक के समक्ष आधी रात के समय एक देव हाथ में नीली तलवार लिए उपस्थित हुआ। बोला-"अरे सुरादेव ! श्रमणोपासक ! अनिष्ट के इच्छुक-मृत्यु को चाहने वाले ! यदि तुम आज शीलादि व्रतों को नहीं त्यागोगे तो मैं तुम्हारे बड़े पुत्र को घर से उठाकर लाऊँगा, लाकर तेरे सामने मार डालूँगा, उसके शरीर के पाँच टुकड़े करके तेल से भरी कड़ाही में तलूँगा तथा तेरे शरीर को उसके माँस और रुधिर से छींटूँगा, जिससे तुम अकाल में ही जीवन से हाथ धो बैठोगे।" फिर पिशाच ने वैसा ही किया। इसी प्रकार मँझले तथा छोटे पुत्र के साथ भी किया। चूलनीपिता के वर्णन के समान उनके शरीर के टुकड़े किए। विशेष बात यही है कि यहाँ पर एक-एक के पाँच-पाँच टुकड़े किये।

THE TURBULATION OF DEMON-GOD

149. Once at mid-night, a demon-god appeared before Suradev *Shramanopasak* holding a blue sword and said—"O Suradev ! *Shramanopasak* ! Desirous of death ! In case you do not abandon your vows, I shall bring your eldest son here, kill him in your presence, cut him into five pieces, roast him in oil and sprinkle his meat and blood on your body. You shall then die an untimely death." The demon-god did the same thing. He repeated it with the second and also the youngest son. He cut them also into pieces the same way as narrated in Chulanipita's strory. The only difference is that here they were cut into five pieces each.

१५०. तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं चउत्थं पि एवं वयासी–"हंभो ! सुरादेवा समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ४ ! जाव न परिच्चयसि, तो ते अज्ज सरीरंसि जमग-समगमेव सोलस रोगायंके पक्खिवामि, तं जहा–सासे, कासे जाव कोढे, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट जाव ववरोविज्जसि।"

१५०. (सुरादेव जब विचलित नहीं हुआ तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर) वह देव सुरादेव श्रमणोपासक को चौथी बार इस प्रकार कहने लगा–"अरे मृत्यु को चाहने वाले सुरादेव ! श्रमणोपासक ! यदि तू आज शीलादि व्रतों को भंग नहीं करेगा तो आज मैं तेरे शरीर में एक साथ श्वास, खाँसी यावत् कोढ़ जैसे सोलह महारोग एक साथ उत्पन्न कर दूँगा, जिससे तू आर्त्त, दुःखी, विवश होकर अकाल में ही मर जायेगा।"

150. When Suradev did not get affected, then extremely enraged, the demon-god said fourth time—"O Suradev ! Desirous of death ! If you do not give up your vows, I shall create sixteen dreadful diseases namely asthama, cough, leprosy etc. simultaneously in your body. You shall then feel dejected, helpless and morose in pain. You shall die an untimely death."

१५१. तए णं से सुरादेवे समणोवासए जाव विहरइ। एवं देवो दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, जाव ववरोविज्जसि।

१५१. देवता के ऐसा कहने पर भी जब सुरादेव श्रमणोपासक विचलित नहीं हुआ, धर्मध्यान में स्थिर रहा। तब उस देव ने दूसरी और तीसरी बार भी उसी प्रकार कहा– "यदि तू व्रत भंग नहीं करेगा तो आज मारा जायेगा।"

151. Suradev was not frightened at the threat and remained absorbed in his spiritual practices. The demon-god then repeated the threat twice and thrice and said—"If you do not give up vows, you will be killed today."

सुरादेव का क्षुब्ध हो जाना

१५२. तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स, इमेयारूवे अज्झत्थिए ४–'अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ, जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं जाव कणीयसं जाव आयंचइ, जे वि य इमे सोलस रोगायंका, ते वि य इच्छइ मम सरीरगंसि पक्खिवित्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए' त्ति कट्टु उद्धाइए। से वि य आगासे उप्पइए। तेण य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।

१५२. उस देव के द्वारा दूसरी, तीसरी बार ऐसा कहने पर सुरादेव के मन में विचार आया–'अहो ! यह पुरुष अनार्य है, अनार्य कर्मों का आचरण करने वाला है। इसने मेरे सामने ही बड़े, मँझले तथा छोटे पुत्र को मारकर मेरे शरीर पर उनके माँस, रुधिर से छींटे दिए हैं। अब यह श्वास, खाँसी तथा कोढ़ादि सोलह महारोग मेरे शरीर में उत्पन्न करना चाहता है। अतः अब इसको पकड़ लेना ही उचित है।' ऐसा विचार कर सुरादेव देवता को पकड़ने के लिए उठा। इतने में वह देव आकाश में उड़ गया। सुरादेव के फैलाये हाथों में खम्भा आ गया, वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

DEJECTION OF SURADEV

152. At the repeated threats of the demon-god, Suradev thought—'O this person is wicked. He follows a mean conduct. He has killed my eldest, middle and youngest sons in my presence and sprinkled their meat and blood on my body. Now he wants to create sixteen dreadful diseases including asthama, cough and leprosy etc. in my body. So it

is proper to catch him.' With these thoughts Suradev got up to catch him. But the demon-god disappeared in the heaven. Suradev held the pillar in his hand and started shouting.

विवेचन—प्राचीन समय में सोलह प्रकार के भयंकर रोग माने जाते थे। इनका उपचार बहुत कठिन था इसलिए ये महारोग कहलाते थे। इनका वर्णन आगमों एवं प्रकरण ग्रन्थों में यत्र-तत्र मिलता है जो इस प्रकार है—

१. श्वास-दमा।

२. कास-खाँसी।

३. ज्वर-बुखार।

४. दाह-पित्त-ज्वर अर्थात् शरीर में जलन।

५. कुक्षि-कमर में पीड़ा।

६. शूल-पेट में रह-रहकर दर्द उठना।

७. भगन्दर-गुदा पर फोड़ा।

८. अर्श-बवासीर।

९. अजीर्ण-बदहजमी-खाना न पचना।

१०. दृष्टि रोग-नजर का फटना आदि आँख की बीमारी।

११. मस्तक शूल-सिर दर्द।

१२. अरुचि-भूख न लगना।

१३. अक्षिवेदना-आँख का दुखना।

१४. कर्णवेदना-कानों के रोग, दुखना आदि।

१५. उदर रोग-पेट की बीमारी।

१६. कुष्ट-कोढ़।

Explanation—In good old days, the dreadful serious diseases were believed to be sixteen in all. Their treatment was extremely difficult. So they were called serious diseases. Their details is seen in scriptures. They are as under—

(1) Asthma,

(2) Cough,

(3) Fever,

(4) Burning sensation in the body,

(5) Pain in waist,

(6) Repeated pain in the belly (Shool),

(7) Piles or Fistula (Bhagandar),

(8) Diabetes,

(9) Indigestion (Ajeerna),

(10) Eye-diseases,

(11) Headache,

(12) Loss of appetite,

(13) Pain in eye,

(14) Pain in ear,

(15) Gastro-intestinal diseases,

(16) Leprosy.

पत्नी द्वारा उद्बोधन

१५३. तए णं सा धन्ना भारिया कोलाहलं सोच्चा निसम्म, जेणेव सुरादेवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता एवं वयासी–''किण्णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ?''

१५३. सुरादेव की पत्नी धन्या ने जब कोलाहल सुना तो जहाँ सुरादेव था वहाँ आई और बोली–''देवानुप्रिय ! क्या आप जोर-जोर से चिल्लाये ?''

ADVICE OF WIFE

153. When Suradev's wife, Dhanya heard the shouts, she came to him and said—"O the blessed ! Did you shout loudly ?"

१५४. तए णं से सुरादेवे समणोवासए धन्नं भारियं एवं वयासी-"एवं खलु देवाणुप्पिए ! के वि पुरिसे तहेव जहा चुलणीपिया। धन्ना वि पडिभणइ, जाव कणीयसं। नो खलु देवाणुप्पिया ! तुब्भं के वि पुरिसे सरीरंसि जमगं-समगं सोलस रोगायंके पक्खिवइ, एस णं के वि पुरिसे तुब्भं उवसग्गं करेइ।" सेसं जहा चुलणीपियस्स तहा भणइ, एवं सेसं जहा चुलणीपियस्स निरवसेसं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकंते कप्पे विमाणे उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं चउत्थं सुरादेवज्झयणं समत्तं ॥

१५४. तब श्रमणोपासक सुरादेव ने अपनी पत्नी धन्या को सारी घटना कही-"देवानुप्रिये ! निश्चय ही यहाँ कोई पुरुष आया था। उसने सब वृत्तान्त उसी प्रकार कहा, जैसे चूलनीपिता ने अपनी भद्रा माता को कहा था।" धन्या ने भी सुरादेव से कहा-"देवानुप्रिय ! आपके तीनों पुत्रादि सब सकुशल हैं। आपके शरीर में एक साथ सोलह रोग उत्पन्न करने का भय बताकर किसी देव ने उपसर्ग किया है। उसने सब वैसा ही कहा जैसे चूलनीपिता को भद्रा माता ने कहा।" आगे की सारी घटना चूलनीपिता की तरह समझनी चाहिए। अन्त में सुरादेव भी सौधर्मकल्प के अरुणकान्त विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर इसकी चार पल्योपम आयु स्थिति है और वह भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा।

यहाँ निक्षेप तीसरे अध्ययन की तरह जानना चाहिए।

(-आर्य सुधर्मा ने कहा-"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के चौथे अध्ययन का यही भाव कहा था, जो मैंने तुम्हें बतलाया है।")

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का चतुर्थ सुरादेव अध्ययन समाप्त ॥

154. Thereafter *Shramanopasak* Suradev narrated the entire incident to his wife—"O beloved of gods ! Certainly a person had come here. He described the entire occurrence as Chulanipita had told his mother." Dhanya told Suradev—"Your all the three sons are all right. The demon-god has created fear in your mind by saying that he shall create sixteen serious diseases in your body. She advised him in

the same fashion as Bhadra had told Chulanipita." The remaining part of the story should be understood as similar to that of Chulanipita. In the end Suradev was also re-born in Arunkant Viman in Saudharm Devlok. There his life-span is four *palyopam.* He shall also be re-born in Maha Videh and attain salvation from there.

(Arya Sudharma said—"Jambu ! Bhagavan Mahavir has thus narrated the fourth chapter of *Upasak-dasha* and I have told you the same.")

● FOURTH CHAPTER CONCLUDED ●

चुल्लशतक : पंचम अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ उत्तर भारत में आलभिका नामक नगरी थी। शंखवन नामक वहाँ उद्यान था। जितशत्रु वहाँ का राजा था। उस नगरी में चुल्लशतक नामक एक समृद्धिशाली गाथापति निवास करता था। उसकी छह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ निधान में, उतनी ही व्यापार में और उतनी ही घर के वैभव तथा उपकरण में लगी थीं। दस-दस हजार गायों के छह गोकुल उसके पास थे।

✦ श्रमण भगवान महावीर एक बार आलभिका पधारे। चुल्लशतक भी उनके दर्शन हेतु पहुँचा। धर्मदेशना से प्रभावित हुआ। उसने श्रावकव्रत स्वीकार किए। चुल्लशतक व्रतों की आराधना व धर्म की उपासना में पूरी रुचि लेता था। एक दिन वह पौषधशाला में ब्रह्मचर्य एवं पौषधव्रत स्वीकार किये धर्मोपासना में तन्मय था। आधी रात के समय अचानक एक देव उसके सामने प्रकट हुआ। वह चुल्लशतक को साधना से विचलित करना चाहता था। चूलनीपिता के साथ जैसा घटित हुआ था, यहाँ भी इस देव के द्वारा चुल्लशतक के साथ घटित हुआ। देव ने उसके तीनों पुत्रों को उसके देखते-देखते मार डाला, उनके सात-सात टुकड़े कर डाले। उनका रक्त और माँस उस पर छिड़का। पर, ममता और क्रोध दोनों से ही चुल्लशतक बहुत ऊँचा उठा हुआ था। इसलिए वह अपने व्रत से नहीं डिगा। धर्मध्यान में तन्मय रहा।

✦ देव ने सोचा–'संसार में हर किसी की धन के प्रति अत्यन्त आसक्ति और ममता होती है; इसलिए मुझे अब इसका धन नष्ट करना चाहिए।' देव क्रुद्ध और कर्कश स्वर में चुल्लशतक से बोला–"देख लो, यदि तुम अपने व्रतों को नहीं तोड़ोगे, तो तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्ति, धन, वैभव आलभिका नगरी की सड़कों और चौराहों पर चारों तरफ बिखेर दूँगा। दरिद्र बन जाओगे। इतने व्याकुल और दुःखी हो जाओगे कि जीवित नहीं रह सकोगे।" चुल्लशतक फिर भी धर्मसाधना में स्थिर रहा।

✦ देव ने कड़कती आवाज में दूसरी बार, तीसरी बार ऐसा कहा। चुल्लशतक सहसा चौंक पड़ा। उसके सारे शरीर में बिजली-सी कौंध गई और दरिद्रता का भयानक दृश्य उसकी आँखों के सामने नाचने लगा। वह घबरा गया।

✦ घबराहट में चुल्लशतक को यह भान नहीं रहा कि वह पौषध में है। इसलिए अपना धन नष्ट कर देने पर उतारू उस पुरुष पर उसको बड़ा क्रोध आया और वह हाथ फैलाकर उसे पकड़ने के लिए झपटा। पौषधशाला में खड़े खम्भे से उसका सिर टकरा गया। देव अन्तर्धान हो गया। व्याकुलता के कारण वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। चिल्लाहट सुनकर उसकी पत्नी बहुला

वहाँ आई और जब उसने अपने पति से सारी बात सुनी तो बोली-"यह आपकी परीक्षा थी। देवकृत उपसर्ग था। आप खूब दृढ़ रहे। पर, अन्त में फिसल गये। आपका व्रत भग्न हो गया। आलोचना, प्रत्यालोचना कर, प्रायश्चित्त स्वीकार कर आत्म-शोधन करें।" चुल्लशतक ने वैसा ही किया और भविष्य में धर्मोपासना में सदा सुदृढ़ बने रहने की प्रेरणा प्राप्त की।

- उसने अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत आदि की सम्यक् उपासना करते हुए बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया। ग्यारह श्रावक-प्रतिमाओं की भलीभाँति आराधना की। एक मास की अन्तिम संलेखना-अनशन और समाधिपूर्वक देह-त्याग किया। सौधर्म देवलोक में अरुणसिद्ध विमान में वह देवरूप में उत्पन्न हुआ।

- इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि किसी-किसी के मन में अपने परिवार तथा शरीर से भी अधिक गहरी आसक्ति धन से होती है। धन में आसक्त मनुष्य सब कुछ सहकर भी धन-नाश होता नहीं देख पाता और अन्त में इस आसक्ति के कारण वह धर्म से भी विचलित हो जाता है। अतः अविचल धर्म आराधना के लिए धन की सूक्ष्म आसक्ति को छोड़ना भी अनिवार्य है।

- श्रावकों को पुनः जागृत करके धर्मोन्मुख करने में उनकी माता तथा पत्नियों की भूमिका भी सराहनीय तथा आदर्श रही है।

CHULLASHATAK : FIFTH CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- Alabhika was a city in North India. There was a garden named Shankhvan. Jitshatru was the ruler. Chullashatak, a well-to-do *Gathapati* lived there. He had sixty million gold coins in his treasure, sixty million in business and sixty million in household items. He had six *gokuls* of ten thousands cows each.

- Once Bhagavan Mahavir came to Alabhika. Chullashatak came to have his *darshan.* He was inspired by his sermon. He accepted the vows of the householder. Chullashatak took deep interest in practicing the vows and spiritual meditation. Once he was in *Paushadh-upvas* (fasting for 24 hours) in the *Paushadhshala* (place of worship) and avoided sex completely. He was deeply engaged in spiritual practice when suddenly a demon-god appeared at mid-night. He wanted to influence Chullashatak for giving up the vows. Same thing happened with Chullashatak as had happened with Chulanipita through the demon-god. The demon-god killed three sons in his presence one after the other, cut them into seven pieces each, roasted the pieces, and sprinkled the meat and blood on him. But Chullashatak was much above the feeling of attachment. So he remained firm in vows and self-meditation.

- The demon-god thought—'Everyone in this world has attraction and attachment for wealth. So I should destroy his wealth.' The demon-god shouted in anger and harsh voice—"Look, in case you do not give up the vows, I shall scatter your entire wealth and household articles on the roads and the crossings in the city. You shall become penniless. You shall be so much morose and dejected that you shall not remain alive." But Chullashatak remained firm in spiritual practices.

✦ The demon-god repeated his threat twice and thrice in a hard tone. Chullashatak suddenly felt disturbed as if an electric current passed through his body. The dreadful scene of poverty was before him. He felt bewildered.

✦ In this frightened state Chullashatak forgot that he was in *Paushadh*. So he got enraged at the person who had threatened to destroy his wealth. He spread his hands, to catch him. His head struck against the pillar in *Paushadhshala*. The demon-god disappeared. In desperation, he shouted loudly. His wife Bahula came at his shrieks. When she heard the details of the occurrence from her husband, she said—"It was your test. It was a godly turbulence. You remained firm in the beginning but in the end, you lost control. Your vow has been adversely affected. You should repent, accept penance and thus purify yourself." Chullashatak did as advised and got inspiration to remain firm in his vows in future.

✦ He spent twenty years observing the partial vows, the vows meant to increase quality of partial vows and the supporting vows. He practiced eleven *pratimas* of a householder in the prescribed manner. In the end he did *Samlekhana,* left food and water for one month and died a quiet death. He was re-born in Arunsiddh Viman of Saudharm Devlok.

✦ This story clearly depicts that some have great attachment for their wealth, much greater than the one for family or their own body. A person attached to wealth can endure every thing but not the loss of wealth. In the end, due to this attachment, he maligns his spiritual practices. So it is essential to discard even the minutest attachment for wealth for the sake of proper spiritual practices.

✦ The role of mother and wife was also praiseworthy in inspiring the *Shravaks* to again become firm in their faith and practices.

चुल्लशयग : पंचमज्झयणं

चुल्लशतक : पंचम अध्ययन

CHULLASHATAK : FIFTH CHAPTER

१५५. उक्खेवओ पंचमस्स अज्झयणस्स।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नयरी। संखवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया। चुल्लसए गाहावई अड्ढे जाव छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दस गोसाहस्सिएणं वएणं। बहुला भारिया। सामी समोसढे। जहा आणंदो तह गिहिधम्मं पडिवज्जइ। सेसं जहा कामदेवो जाव धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

१५५. यहाँ पाँचवें अध्ययन का उपक्षेप, इस प्रकार कहना चाहिए।

[जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया और सुधर्मा स्वामी ने उत्तर देते हुए कहा-]

जम्बू ! उस काल उस समय आलभिका नाम की नगरी थी। वहाँ शंखवन उद्यान था। जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगर में चुल्लशतक नामक गाथापति रहता था। वह बड़ा समृद्ध एवं प्रभावशाली था। उसकी छह करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ कोष में सुरक्षित, छह करोड़ व्यापार में लगी हुई और छह करोड़ घर तथा सामान में लगी थीं। उसके छह गोकुल थे। प्रत्येक गोकुल में १० हजार गायें थीं। उसकी पत्नी का नाम बहुला था। किसी समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान महावीर आलभिका नगरी में पधारे। आनन्द के समान चुल्लशतक ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। आगे का वृत्तान्त कामदेव के समान जानना चाहिए यावत् भगवान द्वारा कथित धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके धर्मध्यान में संलग्न रहने लगा।

155. [Jambu Swami made a query and Sudharma Swami replied—]

Sudharma Swami said—Jambu ! At that time during that period, there was a city named Alabhika. In it there was a garden called Shankhvan. King Jitshatru ruled there. Chullashatak *Gathapati* lived there. He was very rich and influential. He had sixty million gold coins in his treasure,

sixty million in trade and sixty million worth household. He had six *gokulas* of ten thousand cows each. Bahula was his wife. Once during his wanderings, Bhagavan Mahavir came to Alabhika. Chullashatak accepted the vows of the householder like Anand. Further narration is similar to that of Kamdev. He engaged himself in spiritual practices after accepting the prescribed vows from the Lord.

देव द्वारा विघ्न

१५६. तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं जाव असिं गहाय एवं वयासी–"हंभो ! चुल्लसयगा समणोवासया ! जाव न भंजसि तो ते अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि। एवं जहा चुलणीपियं, नवरं एक्के-क्के सत्त मंससोल्लया जाव कणीयसं जाव आयंचामि।"

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए जाव विहरइ।

१५६. अर्धरात्रि के समय चुल्लशतक श्रमणोपासक के पास एक देव प्रकट हुआ। हाथ में नीली तीक्ष्ण तलवार लेकर कहने लगा–"अरे चुल्लशतक श्रमणोपासक ! यदि तू अपने शीलादि व्रतों का त्याग नहीं करेगा तो मैं तेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा और तेरे सामने ही मार डालूँगा।" इस प्रकार चूलनीपिता के साथ जैसी घटना घटी वैसी इसके साथ भी घटी। उसमें विशेष यह है कि यहाँ पर तीनों पुत्रों के प्रत्येक के सात-सात टुकड़े–माँस खण्ड करने को कहा यावत् उनके रुधिर और माँस से छींटे देने का भय दिखाया तथा उस देव ने वैसा ही नृशंस कृत्य करके दिखाया।

श्रमणोपासक चुल्लशतक फिर भी शान्त अविचल रहकर धर्मध्यान में लीन रहा।

DISTURBANCES CAUSED BY DEMON-GOD

156. At mid-night a demon-god appeared before Chullashatak. Holding a blue sword in his hand, he said—"O Chullashatak *Shramanopasak* ! If you do not discontinue your vows, I shall lift your eldest son from the house and kill him in your presence." The same incident happened with him as had happened with Chulanipita. The only difference is

that here he threatened to cut the three sons into seven pieces each. The demon-god threatened that he shall sprinkle his body with meat and blood of the sons and did the same.

Chullashatak still remained firm in his spiritual meditation.

१५७. तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं चउत्थं पि एवं वयासी-"हंभो ! चुल्लसयगा समणोवासया ! जाव न भंजेसि तो ते अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्ण कोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ वुड्ढिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ, ताओ साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सव्वओ समंता विप्पइरामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

१५७. उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को चौथी बार कहा-"अरे चुल्लशतक ! यदि तू अब भी अपने शीलादि व्रतों को भंग नहीं करता है तो यह जो तेरे निधान में छह करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ हैं, छह करोड़ व्यापार में लगी हुई हैं तथा छह करोड़ गृह तथा उपकरणों में लगी हैं, मैं उन सबको आलभिका नगरी के तिराहों, चौराहों, राजमार्गों पर बिखेर दूँगा जिससे तू आर्त्तध्यानग्रस्त तथा दुःखी-विवश होकर अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।"

157. The demon-god told Chullashatak the fourth time—"O Chullashatak ! If you still do not give up your vows, I shall scatter your entire wealth in treasure, trade and household at the three-way crossings, four-way crossings and at the state highways. You shall then feel dejected, depressed, helpless and die an untimely death."

१५८. तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

१५८. उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी श्रमणोपासक चुल्लशतक निर्भीकतापूर्वक धर्मध्यान में स्थिर रहा।

158. But Chullashatak remained firm in his meditation.

१५९. तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, जाव ववरोविज्जसि।

१५९. जब उस देव ने चुल्लशतक को निर्भय और ध्यान में स्थिर देखा तो उसने दूसरी तथा तीसरी बार उसी प्रकार कहा–मारने की धमकी दी।

159. When the demon-god found Chullashatak unaffected, he repeated his threat twice and thrice and also threatened to kill.

चुल्लशतक विचलित हुआ

१६०. तए णं चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४–'अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जहा चुलणीपिया तहा चिंतेइ, जाव कणीयसं जाव आयंचइ, जाओ वि य णं इमाओ ममं छ हिरण्ण कोडीओ निहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ, ताओ वि य णं इच्छइ ममं साओ गिहाओ नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग जाव विप्पइरित्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए' त्ति कट्टु उद्धाइए, जहा सुरादेवो। तहेव भारिया पुच्छइ, तहेव कहेइ।

१६०. जब उस देव ने दूसरी बार, तीसरी बार चुल्लशतक को ऐसा कहा तो वह मन में चूलनीपिता की तरह सोचने लगा–'यह पुरुष अनार्य है। यावत् इसने मेरे बड़े, मँझले तथा छोटे पुत्र को मारकर मेरे शरीर को रुधिर और माँस से सींचा है और अब मेरी जो छह करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ कोष में हैं, छह करोड़ व्यापार में लगी हुई हैं और छह करोड़ घर तथा सामान में लगी हुई हैं, आज यह उन्हें भी निकालकर नगरी के तिराहों, चौराहों पर बिखेर देना चाहता है। अतः मेरे लिए यही उचित है कि मैं इसको पकड़ लूँ।' ऐसा सोचकर वह भी सुरादेव की भाँति उसे पकड़ने दौड़ा। आगे वैसा ही घटित हुआ जैसा सुरादेव के साथ। उसकी भार्या ने उसी प्रकार उससे चिल्लाने का कारण पूछा। उसने भी सब वृत्तान्त उसी प्रकार अपनी पत्नी को बताया।

BEWILDERED CHULLASHATAK

160. At the repeated threats from demon-god, Chullashatak thought like Chulanipita—'This person is devilish. He has killed my eldest, middle and youngest sons in my presence and

sprinkled their meat and blood on my body. Now he intends to take out my entire wealth in treasure, in trade and in household and squander it at the crossings in the city. So it is proper for me to catch hold of him.' Thinking thus, he ran to catch him like Suradev and the same thing happened as had occurred with Suradev. His wife asked him the cause of shrieks. He narrated the entire incident to his wife.

उपसंहार

१६१. सेसं जहा चुलणीपियस्स जाव सोहम्मे कप्पे अरुणसिट्ठे विमाणे उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। सेसं तहेव जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पंचमं चुल्लसयगज्झयणं समत्तं ॥

१६१. आगे की सब घटना चूलनीपिता के समान जानना चाहिए। यावत् अनशन करके आयुष्य पूर्ण कर सौधर्मकल्प के अरुणश्रेष्ठ विमान में वह उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी भी आयु स्थिति चार पल्योपम की है। महाविदेह में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा। निक्षेप पूर्ववत् समझें।

(आर्य सुधर्मा बोले–"जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के पंचम अध्ययन का यह अर्थ-भाव कहा है, जो मैंने तुम्हें बतलाया है।")

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का पंचम चुल्लशतक अध्ययन समाप्त ॥

CONCLUSION

161. Further narration is the same as that in case of Chulanipita. He in the end left food and water completely and after death was re-born in Arun-Shreshtha abode of Saudharma Devlok. There his life-span is four *palyopam*. He shall be re-born in Mahavideh and from there he shall get salvation.

(Arya Sudharma said—"Jambu ! Bhagavan Mahavir had thus narrated the fifth chapter of *Upasak-dasha*. I have told you exactly the same.")

● FIFTH CHAPTER CONCLUDED ●

कुंडकौलिक : षष्ठ अध्ययन

अध्ययन-सार

- कास्पिल्यपुर में कुंडकौलिक नामक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम पूषा था। काम्पिल्यपुर भारत का एक प्राचीन नगर था। महाभारत (आदिपर्व) तथा ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार यह पांचाल देश में राजा द्रुपद की राजधानी थी। द्रौपदी का स्वयंवर भी यहीं हुआ। भगवान महावीर के समय में वह बहुत समृद्ध एवं प्रसिद्ध नगर था। उत्तर प्रदेश में बूढ़ी गंगा के किनारे बदायूँ और फर्रुखाबाद के बीच कम्पिल नामक एक गाँव आज भी है, जो इतिहासकारों के अनुसार काम्पिल्यपुर का वर्तमान रूप है। वह राजा जितशत्रु के राज्य में था। वहाँ सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। संभवतः आम के हजार पेड़ होने के कारण उद्यानों के ऐसे नाम रखने की प्रथा थी।

- गाथापति कुंडकौलिक एक समृद्ध एवं सुखी गृहस्थ था। अन्य श्रावकों की तरह उसके पास भी छह-छह कोटि, अर्थात् कुल अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं की सम्पदा थी। दस-दस हजार गायों के छह गोकुल उसके पास थे।

- एक समय भगवान महावीर काम्पिल्यपुर पधारे। गाथापति कुंडकौलिक ने भी भगवान की धर्मदेशना सुनी, श्रावक धर्म स्वीकार किया।

- एक दिन की बात है, वह दोपहर के समय धर्मोपासना की भावना से अशोक वाटिका में गया। वहाँ अपनी अँगूठी और उत्तरीय (दुपट्टा) उतारकर पृथ्वीशिलापट्टक पर रखे, स्वयं धर्मध्यान में संलग्न हो गया। उसकी श्रद्धा को विचलित करने के लिए एक देव वहाँ प्रकट हुआ। उसका ध्यान बटाने के लिए देव ने वह अँगूठी और दुपट्टा उठा लिया और आकाश में स्थित हो गया। देव ने कुंडकौलिक से कहा-"देखो, मंखलिपुत्र गोशालक के धर्म-सिद्धान्त बहुत सुन्दर हैं। वहाँ प्रयत्न, पुरुषार्थ, कर्म-इनका कोई महत्त्व नहीं है। जो कुछ होने वाला है, सब निश्चित है। भगवान महावीर के धार्मिक सिद्धान्त उत्तम नहीं हैं। गोशालक के सिद्धान्त के अनुसार पुरुषार्थ, प्रयत्न आदि जो कुछ किया जाता है, सब निरर्थक है, करने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि, अन्त में होगा वही, जो होने वाला है।"

- यह सुनकर कुंडकौलिक बोला-"देव ! जरा एक बात बतलाओ। तुमने यह जो दिव्य ऋद्धि, द्युति, कान्ति, वैभव, प्रभाव प्राप्त किया है, वह सब क्या पुरुषार्थ एवं प्रयत्न से प्राप्त किया अथवा बिना पुरुषार्थ व बिना प्रयत्न के ही यह सब प्राप्त कर लिया?"

- देव बोला-"कुंडकौलिक ! यह मैंने बिना पुरुषार्थ और बिना प्रयत्न के ही प्राप्त किया है।"

✦ कुंडकौलिक ने कहा–"देव ! यदि ऐसा हुआ है तो बतलाओ, जो अन्य प्राणी पुरुषार्थ एवं प्रयत्न नहीं करते हैं, वे तुम्हारी तरह देव क्यों नहीं हुए ?"

✦ कुंडकौलिक का युक्तियुक्त एवं तर्कपूर्ण कथन सुनकर देव से कुछ उत्तर देते नहीं बना। वह सहम गया। उसने वह अँगूठी एवं दुपट्टा चुपचाप पृथ्वीशिलापट्टक पर रख दिया और अपना-सा मुँह लिए वापस लौट गया।

✦ भगवान महावीर तो सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी थे। जो कुछ घटित हुआ था, उन्हें सब ज्ञात था। कुंडकौलिक की धार्मिक आस्था और तत्त्वज्ञता पर भगवान प्रसन्न थे। उन्होंने कहा–"कुंडकौलिक ! तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारी अविचल श्रद्धा प्रशंसा योग्य है।"

✦ कुंडकौलिक की घटना को इतना महत्त्व देने के पीछे भगवान का यह अभिप्राय रहा कि प्रत्येक धर्मोपासक अपने धर्म-सिद्धान्तों पर दृढ़ तो रहे ही, साथ ही साथ उसे अपने सिद्धान्तों का ज्ञान भी हो तथा उन्हें औरों के समक्ष उपस्थित करने की योग्यता भी हो, ताकि उनके साथ धार्मिक चर्चा करने वाले अन्य मतानुयायी व्यक्ति उन्हें पराजित न कर सकें। वास्तव में भगवान ने कुंडकौलिक के उदाहरण से सभी धर्मोपासकों को तत्त्वज्ञान में गतिमान रहने की प्रेरणा दी।

✦ कुंडकौलिक भगवान को वंदन, नमन कर वापस अपने स्थान पर लौट आया। कुंडकौलिक उत्तरोत्तर साधना-पथ पर अग्रसर होता रहा। पन्द्रहवें वर्ष में उसने अपने बड़े पुत्र को गृहस्थी एवं परिवार का उत्तरदायित्व सौंपकर अपने आपको सर्वथा साधना में लगा दिया। उसके परिणाम उत्तरोत्तर पवित्र होते गए। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की उपासना की। अन्ततः एक मास की संलेखना और एक मास के अनशन द्वारा समाधिपूर्वक देह-त्याग किया। वह अरुणध्वज विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है।

KUNDKAULIK : SIXTH CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- Kundkaulik *Gathapati* lived in Kampilyapur. Poosha was his wife. Kampilyapur was an ancient town in India. According to the epic *Mahabharat (Adi Parv)* and *Jnata Dharmakatha,* it was the capital of king Drupad of Panchal. Draupadi's *Svayamvar* was held here. In the period of Bhagavan Mahavir it was very famous and grand. There is a village named Kampil even today at the bank of old Ganga between Badayun and Farrukhabad in Uttar Pradesh. According to historians, it was the old Kampilyapur. It was in the kingdom of Jitshatru. Sahasra-Amra-Van garden was in that town. Possibly, the practice might have been to name the garden on the basis of the number of trees it had.

- Kundkaulik *Gathapati* was a rich and well-to-do householder. He had also one hundred eighty million gold coins worth wealth like other *Shravaks*. He had six *gokuls* of ten thousand cows each.

- Once Bhagavan Mahavir came to Kampilyapur. Kundkaulik heard his sermon and accepted vows of the householder.

- Once he came to Ashok Vatika at noon for spiritual practices. He kept his ring and upper cloth on a stony platform and engaged himself in spiritual practice. A demon-god appeared there to disturb his practices. The demon-god picked up the ring and the cloth and stood in heaven. He said to Kundkaulik—"Look ! The philosophy of Mankhali Goshalak is very graceful. There is no importance of efforts courage and deeds in that doctrine. Whatever is to happen, shall certainly happen. The philosophy of Bhagavan Mahavir is not the best. According to Goshalak all the efforts and planning are useless. There is no need for them since the end shall he what is destined."

- At this Kundkaulik replied—"O god ! Please tell me. How have you gained angelic splendor, grandeur, brightness, beauty, influence—without any efforts or after undergoing planning and efforts ?"

- The god said—"Kundkaulik ! I have got it without any planning or effrots."
- Kundkaulik then said—"O god ! If it is so, others who do not undertake any planning and efforts, why are not they gods like you ?"
- The god could not reply to it as Kundkaulik's statement was based on reason and logic. He felt frightened. He placed the ring and the cloth at the stony platform quickly and went away dejected.
- Bhagavan Mahavir had unlimited perfect knowledge and perfect perception. He knew all what had happened. He was happy at Kundkaulik's firm faith and knowledge of scriptures. He said—"Kundkaulik ! You have done well. Your firm faith is worthy of appreciation."
- The underlying idea of Bhagavan Mahavir in giving importance to Kundkaulik incident was that every follower of spirituality must remain firm in spiritual principles and practices. Simultaneously he should have adequate knowledge of these principles so that he is able to present them properly to others. Only then the followers of other faith cannot overpower him. In fact, by narrating the incident of Kundkaulik, Bhagavan Mahavir inspired all the followers to gain more and more knowledge and expertise of spiritual principles.
- Kundkaulik bowed to the Lord and returned to his place. Kundkaulik moved ahead in his spiritual practices. In the fifteenth year he handed over his family and worldly responsibilities to his eldest son and engaged himself completely in spiritual practices. His thought-reflection purified at greater speed. He accepted eleven *pratimas* of a householder (*Shravak*). In the end he observed *Samlekhana* for one month—left completely food and drinks for one month and died a peaceful death in equanimity. He was re-born in Arundhvaj Viman of Saudharm Devlok.

कुंडकोलिय : छट्ठमज्झयणं
कुंडकौलिक : षष्ठ अध्ययन
KUNDKAULIK : SIXTH CHAPTER

१६२. उक्खेवओ छट्ठस्स कुंडकोलियस्स अज्झयणस्स।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कम्पिल्लपुरे नयरे, सहस्संबवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया। कुंडकोलिए गाहावई। पूसा भारिया। छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ, छ वया दस गो साहस्सिएणं वएणं।

सामी समोसढे, जहा कामदेवो तहा सावयधम्मं पडिवज्जइ। सच्चेव वत्तव्वया जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

१६२. यहाँ छठे कुंडकौलिक अध्ययन का उपक्षेप इस प्रकार कहना चाहिए।

[आर्य सुधर्मा से जम्बू ने पूछा–''सिद्धि प्राप्त भगवान महावीर ने उपासकदशा के पाँचवें अध्ययन का यदि यह अर्थ-भाव कहा है तो भगवन् ! छठे अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?'']

तब आर्य सुधर्मा ने कहा–जम्बू ! उस काल और उस समय में काम्पिल्यपुर नाम का नगर था। उस नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक रमणीय उद्यान था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगर में कुंडकौलिक नामक प्रसिद्ध गाथापति निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम पूषा था। कुंडकौलिक के पास छह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ कोष में सुरक्षित थीं, छह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ व्यापार में लगी हुई थीं और छह करोड़ घर तथा गृहोपकरण में प्रयुक्त थीं। उस गाथापति के पास छह गोकुल-व्रज पशु-धन था।

एक समय श्रमण भगवान महावीर ग्रामानुग्राम धर्मोपदेश देते हुए काम्पिल्यपुर नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में पधारे। समवसरण में विराजे। कुंडकौलिक भी भगवान का धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए गया। धर्मदेशना सुनकर उसने भी बारह व्रतरूप श्रावकधर्म स्वीकार किया। यावत् श्रमण-निर्ग्रन्थों को आहार-पानी बहराते हुए सेवा-भक्ति से अपना जीवन यापन करने लगा। कामदेव श्रावक की तरह यह वर्णन समझना चाहिए।

162. [Jambu asked Sudharma Swami—"I have heard from you the narration of the fifth chapter of *Upasak-dasha* as mentioned by Bhagavan Mahavir. Please tell me the meaning of the sixth chapter."]

Then Arya Sudharma said—Jambu ! At that time during that period there was a city called Kampilyapur. A worth seeing Sahasra-Amra-Van garden was at its outskirts. King Jitshatru ruled that city. Kundkaulik—a famous *Gathapati* lived there. Poosha was his wife. Kundkaulik had sixty million gold coins in treasure, sixty million in business and sixty million in household. He had six *gokuls* of ten thousand cattle each.

Once Bhagavan reached Kampilyapur giving his preaching to the people and stayed at Sahasra-Amra-Van garden. The congregation was held. Kundkaulik also came to listen to Bhagavan Mahavir. He also accepted twelve vows of the householder. He started spending his life offering food and water to monks of the order and serving them. This description should be understood similar to that of Kamdev *Shravak*.

अशोकवनिका में धर्मानुष्ठान

१६३. तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि जेणेव असोगवणिया, जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

१६३. कुंडकौलिक श्रमणोपासक एक दिन अशोकवनिका (वाटिका) में गया। वहाँ पृथ्वीशिला-पट्ट पर अपने नाम से अंकित हाथ की अँगूठी और उत्तरीय वस्त्र दुपट्टा उतारकर रख दिया। तत्पश्चात् श्रमण भगवान के पास ग्रहण की हुई धर्म-शिक्षा के अनुसार धर्म-आराधना करने लगा।

SPIRITUAL PRACTICE IN ASHOK-VANIKA

163. One day Kundkaulik *Shramanopasak* came to Ashok-Vanika. He placed his ring and upper cloth on the stony platform. Thereafter he started his spiritual practices as learnt from Mahavir.

१६४. तए णं तस्स कुंडकोलियस्स समणोवासयस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

१६४. जिस समय कुंडकौलिक आराधना कर रहा था उस समय वहाँ पर एक देव प्रकट हुआ।

164. When Kundkaulik was engaged in spiritual practices a god appeared.

देव द्वारा नियतिवाद का प्रतिपादन

१६५. तए णं से देवे नाममुद्दं च उत्तरिज्जं च पुढविसिलापट्टयाओ गेण्हइ, गिण्हित्ता सखिंखिणिं अंतलिक्खपडिवन्ने कुंडकोलियं समणोवासयं एवं वयासी-"हंभो कुंडकोलिया ! समणोवासया ! सुंदरी णं देवाणुप्पिया ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती नत्थि उट्ठाणे इ वा, कम्मे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कार परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती, अत्थि उट्ठाणे इ वा, जाव परक्कमे इ वा, अणियया सव्वभावा।"

१६५. उस देव ने कुंडकौलिक की नामांकित मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र को शिलापट पर से उठा लिया और वस्त्रों में लगी छोटी-छोटी घंटियों को बजाते हुए आकाश में उपस्थित होकर कुंडकौलिक से कहने लगा-"हे देवानुप्रिय कुंडकौलिक ! मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति/धर्मशिक्षा सुन्दर है। उसके अनुसार **उत्थान**-(कर्म के लिए उद्यत होना), **कर्म**-(साध्य के लिए गमनादि क्रियाएँ), **बल**-(शारीरिक बल), **वीर्य**-(आन्तरिक शक्ति), **पुरुषकार**-(पौरुष) तथा **पराक्रम** को स्वीकार नहीं किया गया। विश्व के समस्त भाव-परिवर्तन निश्चित हैं अर्थात् जो कुछ होना है होकर रहेगा। उसमें उत्थान आदि से कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। जबकि श्रमण भगवान महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति मिथ्या है, असुन्दर है। उसमें उत्थान, पराक्रमादि को स्वीकार किया गया है

तथा जगत् के परिवर्तन नियत-निश्चित नहीं हैं। पुरुषार्थ आदि के द्वारा उनमें परिवर्तन किया जा सकता है।"

SUPPORT FOR NIYATIVAD BY GOD

165. That demon-god picked up the name-bearing ring and the upper cloth of Kundkaulik from the stony platform. He started ringing the small bells studded to the cloth and from the sky said—"O Kundkaulik the beloved of gods ! The spiritual teaching and practice of Mankhaliputra Goshalak is grand. According to him **Utthan** (to get ready to do an act), **Karm** (to move about to achieve this desired goal), **Bal** (the physical strength), **Veerya** (the inner strength), **Purushkar** (the courage) and **Parakram** (the valour) are not considered important. All the results (*Bhav Parivartan*) are pre-determined *i.e.,* whatever is to happen shall certainly happen. *Utthan* etc. (the personal efforts etc. of the person) cannot bring any change in the result. The spiritual preaching of Bhagavan Mahavir is misleading (*Mithya*) and graceless. *Utthan Parakram* etc. are considered therein (as important factors) and the change in the world according to him are not pre-determined. They can be affected by *Purusharth* etc."

विवेचन-भगवतीसूत्र के १५वें शतक में मंखलिपुत्र गोशालक का विस्तार से वर्णन है। आगमोत्तर साहित्य में भी आवश्यकनिर्युक्ति आदि में उससे सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में मज्झिमनिकाय, अंगुत्तरनिकाय, संयुक्तनिकाय आदि ग्रन्थों में उसका वर्णन है। गोशालक भगवान महावीर के समसामयिक अवैदिक परम्परा के छह प्रमुख आचार्यों में था। उसका संप्रदाय आजीविक नाम से प्रसिद्ध था।

भगवतीसूत्र के उल्लेख अनुसार, मंख (डाकोत) जातीय मंखलि नामक एक व्यक्ति था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। मंखलि भिक्षाजीवी था। वह एक चित्रपट हाथ में लिए घूमता था जिसे दिखाकर भिक्षा प्राप्त करता। गोशाला में जन्म लेने के कारण उसके पुत्र का नाम गौशाल या गोशालक रखा गया।

गोशालक बड़ा हुआ, पढ़-लिखकर योग्य हुआ। वह भी स्वतंत्र रूप से चित्रपट हाथ में लिए भिक्षा द्वारा अपनी आजीविका चलाने लगा।

एक बार भगवान महावीर साधनाकाल में राजगृह के बाहर नालन्दा के बुनकरों की तन्तुवायशाला के एक भाग में चातुर्मास कर रहे थे। संयोगवश, गोशालक भी वहाँ पहुँचा। अन्य स्थान न मिलने पर उसने उसी तन्तुवायशाला में चातुर्मास किया। वहाँ रहते वह भगवान के अनुपम अतिशयशाली व्यक्तित्व तथा समय-समय पर घटित दिव्य घटनाओं से विशेष प्रभावित हुआ। उसने भगवान के पास दीक्षित होना चाहा। भगवान ने उसे दीक्षा देना स्वीकार नहीं किया। जब उसने आगे भी निरन्तर अपना प्रयास चालू रखा और पीछे ही पड़ गया, तब भगवान ने उसे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। वह छह वर्ष तक भगवान के साथ रहा। उनसे विपुल तेजोलेश्या प्राप्त करने की विधि सीखी, फिर वह भगवान से पृथक् हो गया। स्वयं अपने को अर्हत्, तीर्थंकर, जिन और केवली कहने लगा। इसका विस्तृत वर्णन कल्पसूत्र में दिया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में आई कुंडकौलिक की घटना तब की है, जब गोशालक भगवान महावीर से पृथक् था तथा अपने को अर्हत्, जिन, केवली कहता हुआ जनपद विहार करता था।

Explanation—In the fifteenth Shatak of *Bhagavati Sutra,* the detailed description of Mankhaliputra Goshalak has been given. In later literature also such as *Avashyak Niryukti* etc., the incidents relating to him have been mentioned. In Buddhist literature viz. *Majjhimanikaya, Anguttaranikaya, Sanyukttanikaya* etc., he has been mentioned. Goshalak was one of the six teachers of non-Vedic tradition at the time of Mahavir. His religion was known as *Ajivik.*

It is mentioned in *Bhagavati Sutra* that Mankhali was a person belonging to Mankh (*Dakot*—a low caste). Bhadra was his wife. He lived by begging. He wandered with a pictured cloth (*Chitra-pat*) in his hand and got alms by showing it. His son was born in a cattle-shed. So he was named Goshala or Goshalak.

Goshalak grew up and got educated. He also moved with a *Chitra-pat* in his hand independently and made living by begging alms.

Once Bhagavan Mahavir, during his period of austerities, was spending *Chaturmas* (four-month stay) in a portion of the weaving shed of the weavers of Nalanda outside Rajagriha. Per-

chance, Goshalak also came there. As he could not find any other suitable place, he also stayed there for *Chaturmas*. He was greatly influenced during that stay by the unique, extraordinary personality of Mahavir and super-natural events that occurred there from time to time. He wanted to adopt monkhood as Mahavir's disciple but Mahavir did not agree to it. He (Goshalak) continued his efforts and requested Mahavir again and again. Then Mahavir accepted him as his disciple. He spent six years with Mahavir. He learnt *Vipul Tejoleshya* (a special *labdhi* that can generate heat). Then he left Mahavir. He started calling himself as *Arhat, Tirthankar, Jin* and *Kevali* (one having complete knowledge of every thing and every event). Its detailed description is in *Kalpa Sutra.*

The present incident of Kundkaulik is of the period when Goshalak had separated from Mahavir and was moving about declaring himself as *Arhat, Jin, Kevali.*

कुंडकौलिक का उत्तर

१६६. तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी-"जइ णं देवा ! सुंदरी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती, नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव नियया सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती, अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव अणिया य सव्वभावा। तुमे णं देवा ! इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवज्जुई, दिव्वे देवाणुभावे किणा लद्धे, किणा पत्ते, किणा अभिसमन्नागए ? किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कार-परक्कमेणं ? उदाहु अणुट्ठाणेणं, अकम्मेणं जाव अपुरिसक्कार-परक्कमेणं ?"

१६६. देवता का कथन सुनकर कुंडकौलिक ने उत्तर दिया-"हे देव ! यदि मंखलिपुत्र गोशालक की यह धर्म-शिक्षा समीचीन है कि उत्थान, कर्म आदि का अस्तित्व नहीं है, यावत् सब पदार्थ नियत हैं और श्रमण भगवान महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति समीचीन नहीं जिसमें उत्थान कर्म आदि हैं यावत् समस्त भाव पहले से अनियत हैं तो हे देव ! तुम्हें यह दिव्य अलौकिक देव-ऋद्धि, अलौकिक कान्ति, अलौकिक प्रभाव कहाँ से मिला ? कैसे प्राप्त हुआ ? और कैसे तुम्हारे अधीन है ? क्या यह उत्थान यावत् पराक्रम अथवा पुरुषकार से प्राप्त हुआ ? या उनका उपयोग किये बिना ही मिला ?"

KUNDKAULIK'S REPLY

166. After listening to the god, Kundkaulik said—"O Angel ! In case it is acceptable to Mankhaliputra Goshalak that *Utthan, Karm* etc. do not exist and that all events and results are pre-determined and that the preaching of Mahavir is not true which gives importance to *Utthan, Karm* etc., then please tell with whose influence you got the angelic splendour, unique brightness and grand honors. How did you obtain it ? How is it in your control ? Did you get as a result of *Utthan,* and others including *Parakram* or without them (*i.e.,* with your efforts or without them) ?"

देव का उत्तर

१६७. तए णं से देवे कुंडकोलियं समणोवासयं एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए इमेयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कार-परक्कमेणं लद्धा, पत्ता, अभिसमन्नागया।"

१६७. तब वह देव श्रमणोपासक कुंडकौलिक से बोला–"देवानुप्रिय ! मुझे यह अलौकिक देव-ऋद्धि, अलौकिक प्रभाव आदि उत्थान, पुरुषकार, पराक्रम का उपयोग किये बिना ही मिली है, मेरे अधीन हुई है।"

REPLY OF ANGEL

167. Then the angel told *Shramanopasak* Kundkaulik—"O beloved of gods ! I have got the unique angelic splendour without *Utthan* (upto) *Purushkar* or *Parakram.* They have come to me without any efforts."

१६८. तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी–"जइ णं देवा ! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धा, पत्ता, अभिसमन्नागया ? जेसिं णं जीवाणं नत्थि उट्ठाणेइ वा, परक्कमे इ वा, ते किं न देवा ? अह णं, देवा ! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ उट्ठाणेणं जाव परक्कमेणं लद्धा, पत्ता, अभिसमन्नागया, तो जं वदसि सुंदरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती नत्थि उट्ठाणे इ वा, जाव नियया सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ

महावीरस्स धम्मपण्णत्ती अत्थि उट्ठाणे इ वा, जाव अणियया सव्वभावा, तं ते मिच्छा।"

१६८. तब श्रमणोपासक कुंडकौलिक ने उस देव से पुनः प्रश्न किया–"देव ! यदि तुम्हें इस प्रकार की अलौकिक देव-ऋद्धि उत्थान यावत् पुरुषकार–पराक्रम के बिना ही प्राप्त हुई है तो जिन जीवों में उत्थान यावत् पराक्रम नहीं है तो वे देव क्यों नहीं हुए? देव ! यदि तुमने यह ऋद्धि उत्थान यावत् पराक्रम के द्वारा प्राप्त की है, तो तुम्हारा उक्त कथन मिथ्या है कि मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति समीचीन है और श्रमण भगवान महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति समीचीन नहीं है।"

168. Then Kundkaulik again asked—"O Angel ! If you have got such a unique angelic splendour without *Utthan* (upto) *Purushkar* or *Parakram,* why then those living being who have not done any *Utthan* (upto) *Parakram,* could not get angelic life. O Angel ! If you have got the angelic splendour due to *Utthan* (upto) *Parakram,* your said statement that the preaching of Goshalak is rational and correct is not true. Your statement that Mahavir's preaching are not correct also becomes untrue."

देव निरुत्तर हुआ

१६९. तए णं से देवे कुंडकोलिएणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए जाव कलुससमावन्ने नो संचाएइ कुंडकोलियस्स समणोवासयस्स किंचि पामोक्खमाइक्खित्तए; नाममुद्दयं च उत्तरिज्जयं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

१६९. श्रमणोपासक कुंडकौलिक द्वारा इस प्रकार उत्तर देने पर देव के मन में शंका उत्पन्न हो गई। वह हतप्रभ हो गया और कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। तब उसने कुंडकौलिक की नाम मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र को पृथ्वी शिलापट्ट पर रख दिया तथा जिधर से आया था उसी दिशा में वापस चला गया।

SILENCE OF THE ANGEL

169. With this reply of Kundkaulik, the angel became sceptical. He felt dejected and could not give any comment.

He then placed Kundkaulik's ring and upper cloth on the stony platform and went away in the same direction from where he had come.

भगवान महावीर का आगमन

१७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे।

१७०. उस काल और उस समय भगवान महावीर स्वामी उस नगर में पधारे।

BHAGAVAN MAHAVIR'S ARRIVAL

170. At that time, in that period, Bhagavan Mahavir came to that town.

१७१. तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ, जाव पज्जुवासइ। धम्मकहा।

१७१. कुंडकौलिक श्रमणोपासक भी श्रमण भगवान महावीर के आने का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कामदेव के समान दर्शन करने गया। भगवान की पर्युपासना की। धर्मदेशना सुनी।

171. Kundkaulik felt very happy to learn about arrival of Bhagavan Mahavir. He went like Kamdev to greet the Lord. He sat there and listened to his preaching.

१७२. "कुंडकोलिया !" इ समणे भगवं महावीरे कुंडकोलियं समणोवासयं एवं वयासी-"से नूणं कुंडकोलिया ! कल्लं तुब्भं पुव्वावरण्ह-काल-समयंसि असोयवणियाए एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे नाममुद्दं च तहेव जाव पडिगए। से नूणं कुंडकोलिया ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हन्ता ! अत्थि।"

"तं धन्नेसि णं तुमं कुंडकोलिया !" (जहा कामदेवो) "अज्जो !" इ समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे य निग्गंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी-"जइ ताव, अज्जो ! गिहिणो गिहिमज्झा वसंता णं अन्नउत्थिए अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य निप्पट्ठ-पसिणवागरणे करेंति, सक्का पुणाइं, अज्जो !

चित्र परिचय ११

Illustration No. 11

कुंडकौलिक ने देव को निरुत्तर किया

एक समय श्रमणोपासक कुंडकौलिक दोपहर के समय अपनी अशोक वाटिका में धर्माराधना कर रहा था। आकाश में एक देव प्रकट हुआ। उसने कुंडकौलिक का उत्तरीय और अँगूठी उठा ली। फिर उसे सम्बोधित कर मंखलीपुत्र गौशालक की धर्मप्रज्ञप्ति की प्रशंसा की और भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित पुरुषार्थवाद की निन्दा करने लगा।

कुंडकौलिक ने देव को अनेक तर्क युक्तियों द्वारा नियतिवाद को अव्यावहारिक सिद्ध कर पुरुषार्थवाद की सार्थकता व युक्तिमत्ता स्थापित की। देव उसकी तर्कसंगत बातों का उत्तर नहीं दे सका और निरुत्तर होकर चला गया।

दूसरे दिन भगवान महावीर कांपिल्यपुर में पधारे। कुंडकौलिक दर्शन करने गया। तब श्रमण-श्रमणियों की सभा में भगवान ने पिछले दिन का देव-प्रसंग सुनाते हुए सबके समक्ष कुंडकौलिक की तत्त्वज्ञता और दृढ़ श्रद्धालुता की प्रशंसा की।

–उपासकदशा, अ. ६, सूत्र १६६-१७५

KUNDKAULIK'S SUCCESS OVER THE ANGEL

Once at noon, *Shramanopasak* Kundkaulik was engaged in spiritual practices in his Ashok Vatika. An angel appeared in space. He picked up the ring and the cloth of Kundkaulik. Then addressing Kundkaulik the angel praised the religious faith of Mankhaliputra Goshalak and criticized the faith in efforts (*Purusharthvad*) as propounded by Bhagavan Mahavir.

Kundkaulik, by his logic-based arguments showed the hollowness of *Niyativad* (belief in fate alone) and that this dogma is not practical. He further succeeded in establishing the truth based on logic in *Purusharthvad* (the faith in efforts). The angel could not reply to his arguments and disappeared.

The following day Bhagavan Mahavir came to Kampilyapur. Kundkaulik came to see him. Then the Lord narrating the incident of the previous day to ascetics in the congregation appreciated the spiritual knowledge and firmness in belief of Kundkaulik.

—Upasak-dasha, Ch. 6, Sutra 166-175

समणेहिं निग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं अन्नउत्थिया अट्ठेहि य जाव निप्पट्ठ-पसिणवागरणा करित्तए।''

१७२. भगवान महावीर ने श्रमणोपासक कुंडकौलिक को सम्बोधित करते हुए कहा–''कुंडकौलिक ! कल अशोकवनिका (वाटिका) में एक देव तुम्हारे समक्ष प्रकट हुआ तथा आगे जैसे घटित हुआ था वह कहा यावत् वह तुम्हारी नाम मुद्रिका और उत्तरीय को उठाकर आकाश में ले गया। देव प्रगट होने से लेकर तिरोधान होने तक सारा वृत्तान्त भगवान ने बतलाया और पूछा–कुंडकौलिक ! क्या यह ऐसा ही है ?''

''हाँ भगवन् ! यह ठीक है (कुंडकौलिक ने उत्तर दिया)।''

तत्पश्चात् भगवान ने जैसा कामदेव से कहा था उसी प्रकार उससे कहा–''कुंडकौलिक ! तुम धन्य हो।'' भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को सम्बोधित करके कहा–''आर्यो ! यदि घर में रहने वाला एक गृहस्थ भी अन्य मतानुयायियों (अन्ययूथिकों) को विविध प्रश्नों, हेतुओं, युक्तियों एवं व्याख्याओं द्वारा निरुत्तर कर सकता है तो हे आर्यो ! द्वादशांग गणिपिटक का अध्ययन करने वाले आप लोग तो समर्थ हैं। आपको भी चाहिए कि इसी प्रकार अन्य मतानुयायियों को अर्थ, हेतु तथा युक्ति आदि के द्वारा निरुत्तर करें।''

172. Addressing Kundkaulik, Bhagavan Mahavir said—"Kundkaulik ! Yesterday in Ashok-Vanika, an angel appeared before you. He further mentioned the entire event that had happened including picking up his name bearing ring and the upper cloth by the angel, the talk and the ultimate disappearance of the angel. He then asked—Kundkaulik ! Did it actually happen ?"

Kundkaulik replied—"Yes sir ! It is true."

Then Bhagavan Mahavir told him as he had mentioned to Kamdev—"O Kundkaulik ! You are praise-worthy." Addressing the monks and nuns, Bhagavan Mahavir said—"O holy persons ! If a householder can satisfactorily reply to the queries raised by the followers of other faith with reason, logic and detailed narration, then you people who are well versed in the twelve holy books must also be capable of

replying to in such matters. You should also reply to the question raised by laymen of other faith with reason, logic and proper explanation."

१७३. तए णं समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स "तह" त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

१७३. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों ने-"ऐसा ही है भगवन् !" यह कहकर श्रमण भगवान महावीर का उक्त कथन विनयपूर्वक स्वीकार किया।

173. Monks and nuns accepted the words of Bhagavan Mahavir with gratitude saying—"O Lord ! It is as you say."

विवेचन-श्रमण भगवान महावीर द्वारा धर्मसभा में श्रमण-श्रमणियों के सामने कुंडकौलिक श्रावक के तत्त्वज्ञान की प्रशंसा करना यह सूचित करता है कि सद्गुण कहीं भी हो उसकी प्रशंसा करना महानता का लक्षण है। इससे चित्त-शुद्धि होती है। दूसरों को सद्गुणों की प्रेरणा मिलती है। सद्गुणी प्रोत्साहित होता है।

सूत्र में अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण पाँच शब्द आए हैं। इनका उन दिनों शास्त्रार्थ में उपयोग होता था। इनका अर्थ नीचे लिखे अनुसार है-

(१) **अर्थ**-अर्थात् अपने सिद्धान्त में प्रतिपादित जीव, अजीव आदि तत्त्वों की स्थापना अथवा प्रमाण रूप में उद्धृत आगम पाठ का अर्थ।

(२) **हेतु**-वह वस्तु जिसके आधार पर लक्ष्य या साध्य को सिद्ध किया जाए। जैसे-धुएँ के आधार पर अग्नि का अस्तित्व सिद्ध करना।

(३) **प्रश्न**-इसका अर्थ है-प्रतिवादी से विविध प्रकार के प्रश्न पूछना, जिससे वह अपनी मिथ्या धारणा को छोड़ दे, इसे शास्त्रार्थ में विश्लेषणात्मक पद्धति (Analytical approach) कहते हैं।

(४) **कारण**-युक्तियों द्वारा पक्ष का प्रस्तुत करना।

(५) **व्याकरण**-प्रतिवादी द्वारा पूछे गए प्रश्न की व्याख्या या खुलासा।

Explanation—The appreciation of Kundkaulik's spiritual knowledge by Mahavir in the congregation in presence of monks and nuns indicates that good quality must be appreciated wherever it is noticed. It is a symbol of greatness. It purifies the mind. It inspires others to imbibe good qualities. It inspires the person having such traits.

In the *Sutra,* five words viz. *Arth, Hetu, Prashna, Karan* and *Vyakaran* have been used. They were used in spiritual dialogue during those days. Their meanings are as under—

(1) **Arth**—To establish the existence of elements viz. living beings, non-living beings etc. as mentioned in philosophy. Or to distinctively explain the meaning of the relevant para in the scriptures (*Agam*).

(2) **Hetu**—That thing on the basis of which the proposition is proved e.g. fire is proved by the existence of smoke.

(3) **Prashna**—It means to ask various types of questions from the opposite party so as to inspire him to discard his wrong faith. In spiritual dialogue it is called analytical approach.

(4) **Karan**—To establish one's statement by logic.

(5) **Vyakaran**—To explain in detail the query raised by the other side.

कुंडकौलिक का प्रत्यागमन

१७४. तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठमादियइ, अट्ठमादित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। सामी बहिया जणवय विहारं विहरइ।

१७४. तब कुंडकौलिक श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान महावीर को भक्तिपूर्वक वन्दना नमस्कार किया, प्रश्न पूछे, समाधान प्राप्त किया और वापस चला गया। भगवान महावीर भी अन्य जनपदों में विहार करने लगे।

KUNDKAULIK'S RETURN

174. Then Kundkaulik bowed to the Lord in respect, asked questions, got clarification and came back. Bhagavan Mahavir left for other places.

उपसंहार

१७५. तए णं तस्स कुंडकोलियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स

अन्नया कयाइ (जहा कामदेवो तहा) जेट्ठपुत्तं ठवेत्ता तहा पोसहसालाए जाव धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। एवं एक्कारस उवासगपडिमाओ तहेव जाव सोहम्मे कप्पे अरुणज्झए विमाणे जाव अंतं काहिइ। निक्खेवओ।

।। सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं छट्ठं कुंडकोलियज्झयणं समत्तं ।।

१७५. तब श्रमणोपासक कुण्डकौलिक को विविध प्रकार के शील एवं व्रतों के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। पन्द्रहवाँ वर्ष आधा व्यतीत होने पर उसने कामदेव श्रावक के समान घर का भार ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और स्वयं पौषधशाला में रहकर भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्मप्रज्ञप्ति अंगीकार करके पौषध उपवास आदि द्वारा धर्म आराधना करने लगा। क्रमशः उसने ग्यारह प्रतिमाएँ स्वीकार कीं और अन्त में संलेखनापूर्वक शरीर त्यागकर सौधर्मकल्प के अरुणध्वज नामक विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यवकर वह भी महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और कर्मों का अन्त करेगा।

।। सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का छठा कुण्डकौलिक अध्ययन समाप्त ।।

CONCLUSION

175. Kundkaulik spent fourteen years purifying his self with various restraints, the partial vows, and the supporting vows. When half of the fifteenth year passed, he, like Kamdev, transferred his family responsibilities to his eldest son and devoted his entire time in spiritual practices including *Paushadhopvas* in the *Paushadhshala*. He followed the eleven *Pratimas* of householder in their respective order. In the end he left the physical body in *Samlekhana* and was re-born in Arun-Dhwaj Viman of Saudharm Devlok. From there he shall be re-born in Mahavideh and attain salvation.

● **SIXTH CHAPTER CONCLUDED** ●

सकडालपुत्र : सप्तम अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ भगवान महावीर का समय विभिन्न धार्मिक मतवादों, सम्प्रदायों तथा अनेक प्रकार के कर्मकांडों से संकुल था। उत्तर भारत में उस समय अवैदिक विचारधारा के अनेक आचार्य विद्यमान थे। उनमें से अनेक अपने आपको अर्हत्, जिन, केवली या सर्वज्ञ भी कहते थे। दूसरे अंग सूत्रकृतांग में भगवान महावीर के समसामयिक सैद्धान्तिकों के चार वर्ग बतलाए हैं–क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञानवादी। वे अपने समवसरण–सिद्धान्त या वाद का भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिपादन करते थे। सूत्रकृतांग वृत्ति में ३६३ धार्मिक मतवादों का उल्लेख है।

✦ मंखलिपुत्र गोशालक का जैन और बौद्ध दोनों साहित्यों में नियतिवादी के रूप में विस्तार से वर्णन है।

✦ गोशालक को अष्टांग निमित्त का कुछ ज्ञान था। उसके द्वारा वह लोगों को लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण के विषय में सही उत्तर दे सकता था। अतः जो भी उसके पास आते, वह उन्हें उस प्रकार की बातें बताता जिससे प्रभावित हो उसके हजारों अनुयायी हो गए थे।

✦ पोलासपुर में सकडालपुत्र नामक एक कुंभकार व्यापारी गोशालक के प्रमुख अनुयायियों में था। (इस नाम से ध्वनित होता है वह अपने पिता के नाम से ही प्रसिद्ध था। अवश्य ही उसका पिता नगर का प्रमुख व प्रसिद्ध व्यक्ति रहा होगा।)

✦ सकडालपुत्र का प्रमुख व्यवसाय मिट्टी के बर्तन तैयार कराना और बेचना था। पोलासपुर नगर के बाहर उसकी पाँच सौ कर्मशालाएँ (कारखाने) थीं, जहाँ अनेक कर्मचारी काम करते थे। प्रातःकाल होते ही वे वहाँ आ जाते और अनेक प्रकार के छोटे-बड़े बर्तन बनाने में लग जाते। सकडालपुत्र ने अनेक ऐसे व्यक्ति वेतन आदि पर नियुक्त कर रखे थे, जो नगर के राजमार्गों, चौराहों, मैदानों तथा सार्वजनिक स्थानों में बर्तनों की बिक्री करते थे।

✦ सकडालपुत्र की पत्नी का नाम अग्निमित्रा था। सकडालपुत्र अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् था। तदनुसार धर्मोपासना में भी अपना समय लगाता था।

✦ पहले सकडालपुत्र मंखलिपुत्र गोशालक का प्रमुख श्रावक था। गोशालक नियतिवादी था। उसकी मान्यता थी, संसार में उत्थान, कर्म, पुरुषार्थ आदि कुछ भी उपयोगी व आवश्यक नहीं है। जो कुछ हो रहा है वह पहले से ही निश्चित है। नियति का चक्र स्वतः ही घूमता रहता है, मनुष्य कुछ नहीं कर सकता।

✦ आगे की घटना मूलसूत्र में वर्णित है। भगवान महावीर के सम्पर्क में आने पर उनके अतिशय प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा सत्य व युक्तिपूर्ण कथन से प्रभावित होकर वह भगवान महावीर का अनुयायी ही नहीं, दृढ़ सम्यक्त्वी व्रतधारी श्रावक बन जाता है।

✦ जब गोशालक ने यह सुना तो उसे यह अच्छा नहीं लगा। उसने मन ही मन सोचा–'मुझे सकडालपुत्र को पुनः समझाना चाहिए और अपने मत में वापस लाना चाहिए।' वह पोलासपुर में आया। आजीविकों के उपाश्रय में रुका। अपने पात्र, उपकरण आदि वहाँ रखे तथा अपने कुछ शिष्यों के साथ सकडालपुत्र के पास पहुँचा। गोशालक के आने पर पहले सकडालपुत्र जो श्रद्धा, आदर एवं सम्मान दिखाता था, उसने वैसा कुछ नहीं किया, चुपचाप बैठा रहा। गोशालक खूब चालाक था। वह झट समझ गया। सकडालपुत्र को प्रसन्न करने के लिए उसने युक्ति निकाली। भगवान महावीर की गुण-स्तवना की। गोशालक के इस कूटनीतिक व्यवहार का रहस्य वह समझ नहीं सका। गोशालक की मंशा यह थी कि किसी प्रकार पुनः मुझे सकडालपुत्र के साथ धार्मिक बातचीत का अवसर मिल जाय तो मैं इसकी बुद्धि बदलूँ। भगवान महावीर के प्रति गोशालक द्वारा दिखाए गए आदर भाव के कारण सकडालपुत्र ने शिष्टतावश अनुरोध किया–"आप मेरी कर्मशाला में रुकें, आवश्यक वस्तुएँ लें।" गोशालक तो बस यही अवसर चाहता था। उसने झट स्वीकार कर लिया और वहाँ गया। वहाँ सकडालपुत्र के साथ तात्त्विक वार्त्तालाप करने का अनेक बार अवसर मिला। उसने सकडालपुत्र को बदलने का बहुत प्रयास किया, पर सर्वथा विफल रहा। निराश होकर गोशालक वहाँ से विहार कर गया। सकडालपुत्र पूर्ववत् अपनी धर्मोपासना में लगा रहा।

✦ यों चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। पन्द्रहवाँ वर्ष आधा बीत चुका था। एक बार आधी रात के समय सकडालपुत्र अपनी धर्माराधना में निरत था। एक मिथ्यात्वी देव उसे व्रत-च्युत करने के लिए आया, व्रत छोड़ देने के लिए उसके पुत्रों को मार डालने की धमकी दी और अन्त में उसकी जीवन सहयोगिनी भार्या अग्निमित्रा की भी दुर्दशा करने की धमकी दी। तब सकडालपुत्र उसे बचाने के लिए विचलित हो गया। यह सब घटना सूत्र में वर्णित है।

✦ इस घटना से यह ध्वनित होता है कि पुत्र, धन, शरीर आदि की तरह पत्नी का मोह भी एक दृढ़ बंधन है और साधक को उसे भी जीतना आवश्यक है।

GIST OF THE CHAPTER

- The period of Bhagavan Mahavir was studded with different faiths, religious rituals and various practices in the name of religions. Many teachers of non-Vedic faith were present then in North India. Many of them called themselves *Arhat, Jin, Kevali,* or those having knowledge of every thing. In the second *Ang Sutra—Sutra Kritang,* four different faiths in existence at the time of Bhagavan Mahavir have been described. They are *Kriyavadi, Akriyavadi, Vinayavadi* and *Ajnanavadi.* They used to explain their faith in different versions in their congregation. In *Sutra Kritang* 363 different spiritual faiths have been mentioned.
- There is a detailed description of Mankhaliputra Goshalak as *Niyativadi* (firm believer in faith alone) in Jain and Buddhist literature.
- Goshalak had some knowledge of *Ashtang Nimitta* (scriptures of augury). With this knowledge he was able to give correct replies to his followers about worldly gain, loss, happiness, pain, life and death. So whosoever came to him, he used to tell him about such matters. This conduct led to increase the number of his followers to thousands.
- In Polaspur, Sakadalputra—a potter was his chief follower.
- The main profession of Sakadalputra was to prepare earthen pots and sell them. He had five hundred factories outside Polaspur where his employees were working for him. Since early morning they used to start the work of preparing small and large pots. He had employed many salesmen who were selling his pots at the state highways, crossings, open grounds and public places.
- Agnimitra was Sakadalputra's wife. Sakadalputra was very faithful towards his spiritual principles. He was doing spiritual practices accordingly.
- Further description is available in the scriptures. By coming in contact with Mahavir, he was deeply impressed by his unique

personality, his judicious and logical preachings. He became his follower, a staunch supporter of his faith and firmly accepted the vows of householder.

- Earlier Sakadalputra was the prime follower of Mankhaliputra Goshalak.
- When Goshalak heard this change in him, he did not like it. He thought that 'he should again preach to Sakadalputra and bring him back to his faith.' He came to Polaspur. He stayed at the religious place of Ajiviks. He kept his pots, clothes etc. there and went to Sakadalputra with some of his followers. Sakadalputra earlier used to show his faith, sense of respect and honour to Goshalak. But now he did not show any such thing and remained sitting. Goshalak was very clever. He understood the situation. He thought of a plan in order to please him. He praised Bhagavan Mahavir. Sakadalputra could not understand the secret behind this conduct. Goshalak desired that somehow he should get a chance to enter in spiritual discussion with Sakadalputra so that he may change his mind. In view of the appreciation and respect shown by Goshalak for Mahavir, Sakadalputra requested Goshalak "to stay in his factory and to accept the needful." Goshalak inwardly desired it. So he immediately accepted the offer and came there for his stay. During his stay, Goshalak had many occasions for spiritual discussion with Sakadalputra. He made great effort to change the faith of Sakadalputra but all in vain. Ultimately feeling disappointed, he left the factory. Sakadalputra engaged himself in spiritual practices learnt (from Mahavir) as before.
- Fourteen years passed in the practices. When half of the fifteenth year passed, once at mid-night Sakadalputra was deeply engaged in his spiritual meditation. A demon-god appeared there in order to inspire him to discard his faith. He threatened him that he would kill his sons. He further threatened he would misbehave with his wife Agnimitra and make her condition wretched. Then Sakadalputra felt bewildered and got up to save her from his clutches. All this incident is mentioned in the *Sutra*.
- This incident indicates that like attachment for sons, wealth, one's own body, the attachment for wife is also a bondage and true follower of religion should subdue it in the same way as he subdues other attachments.

सद्दालपुत्त सत्तमज्झयणं
सकडालपुत्र : सप्तम अध्ययन
SAKADALPUTRA : SEVENTH CHAPTER

१७६. सत्तमस्स उक्खेवओ।

पोलासपुरे नामं नयरे। सहस्संबवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया।

१७६. यहाँ सप्तम अध्ययन का उपक्षेप इस प्रकार कहना चाहिए।

[आर्य जम्बू ने सुधर्मा स्वामी से पूछा-"सिद्ध गति प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के छठे अध्ययन का यदि यह अर्थ कहा है तो भगवन् ! सातवें अध्ययन का क्या अर्थ बतलाया है ?"]

तब आर्य सुधर्मा ने कहा-उस काल उस समय पोलासपुर नामक नगर था। वहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था। जितशत्रु वहाँ का राजा था।

176. [Arya Jambu said to Sudharma Swami—"I have heard from you the sixth chapter of *Upasak-dasha* as narrated by Bhagavan Mahavir. Now kindly tell me the meaning of the Seventh Chapter."]

Then Arya Sudharma said—At that time, in that period, there was a city called Polaspur. There was a garden named Sahasra-Amra Van. Jitshatru was the ruler of that area.

१७७. तत्थ णं पोलासपुरे नयरे सद्दालपुत्ते नामं कुंभकारे आजीविओवासए परिवसइ। आजीविय-समयंसि लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे, अट्ठि-मिंज-पेमाणुराग-रत्ते य "अयमाउसो ! आजीवियसमए अट्ठे, अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे" त्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

१७७. पोलासपुर में आजीविक मत का अनुयायी आजीविकोपासक सकडालपुत्र नामक कुंभकार रहता था। उसने आजीविक मत के सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझा था, स्वीकार किया था, जिज्ञासा एवं उत्तर द्वारा स्पष्ट किया था, निश्चित रूप में

आत्मसात् किया था और सम्यक् प्रकारेण जाना था। आजीविक सिद्धान्तों का अनुराग पूर्णतया उसकी अस्थि तथा मज्जा में रम चुका था। वह सबको कहता था–"हे आयुष्मन् ! आजीविक सिद्धान्त ही अर्थ (सार) है। यही परमार्थ है। अन्य सभी सिद्धान्त अनर्थ–व्यर्थ हैं।" इस प्रकार आजीविक सिद्धान्तों के अनुसार आत्मा को भावित करता रहता था।

177. Sakadalputra, the potter—an *Ajivikopasak*—a staunch follower of Ajivik religion lived there. He had properly understood the principles of Ajivik religion, accepted them, clarified them by discussion and deep study, analyzed them and known them from various points of view. Ajivik faith had completely been in the core of his heart. He was telling everyone—"O the long-lived ! The real philosophy is the Ajivik. It is the best philosophy leading to salvation. All other schools are useless and misleading." So he was strictly following the principles of Ajivik faith.

१७८. तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्का हिरण्णकोडी निहाणपउत्ता, एक्का वुड्ढिपउत्ता, एक्का पवित्थरपउत्ता, एक्के वए दस गोसाहस्सिएणं वएणं।

१७८. आजीविकोपासक सकडालपुत्र के पास एक करोड़ सुवर्ण-मुद्रा कोष में संचित थीं, एक करोड़ व्यापार में लगी हुई थीं और एक करोड़ घर तथा सामान में लगी थीं। एक व्रज था जिसमें दस हजार गायें थीं।

178. *Ajivikopasak* Sakadalputra had ten million gold coins in his treasure, ten million in business and ten million in the house. He had one *gokul* of ten thousand cattle.

१७९. तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गिमित्ता नामं भारिया होत्था।

१७९. उस आजीविकोपासक सकडालपुत्र की पत्नी का नाम अग्निमित्रा था।

179. Agnimitra was *Ajivikopasak* Sakadalputra's wife.

१८०. तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया होत्था। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा कल्लाकल्लिं बहवे करए य वारए य पिहडए य घडए य अद्धघडए य कलसए य अलिंजरए य जंबूलए य उट्टियाओ य करेंति। अन्ने य से बहवे पुरिसा दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा कल्लाकल्लिं तेहिं बहूहिं करएहि य जाव उट्टियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

१८०. पोलासपुर नगर के बाहर सकडालपुत्र के पाँच सौ आपण (बर्तन बनाने की कर्मशाला) थे, जहाँ प्रतिदिन सैकड़ों व्यक्ति प्रातः होते ही पहुँच जाते थे और भृति–दैनिक मजदूरी, भक्त–भोजन तथा वेतन प्राप्त करके, करक–घड़ा, वारक–गुल्लक-गड़ुआ-लोटा, पिटर–आटा गोंदने या दही जमाने के काम आने वाली परातें या कुण्डें, घटक–बड़े मटके जो कुआँ, तालाब आदि से पानी लाने के काम आते थे, अर्द्धघटक–छोटे मटके, कलशक–कलशा, अलिंजर–पानी रखने के बड़े मटके, जंबूलक–सुराहियाँ, उष्ट्रिका–तेल, घी रखने के काम आने वाले लम्बी गर्दन तथा बड़े पेट वाले बर्तन कूँपे इत्यादि अनेक प्रकार के बर्तन बनाये जाते थे। इसी प्रकार अन्य बहुत से पुरुष दैनिक मजदूरी तथा वेतन पर सुबह होते ही उन बर्तनों को नगर के चौराहों पर, मार्गों पर बेचते थे और इस प्रकार आजीविका कमाते थे।

180. Sakadalputra had five hundred factories of pot-making at the outskirts of Polaspur where hundreds of employees used to come for work since morning. They were working on daily wages **(Bhriti)** and food or salary **(Bhakt)**. Pots **(Katak)**, long-necked pitcher **(Varak)**, flat vessels to knead floor or to prepare curd **(Pitar)**, large pitchers **(Ghatak)** used to bring water from tanks or wells, small pitchers **(Ardh ghatak)**, kalasha **(Kalashak)**, pots to store water **(Alinger)**, long-necked pitchers **(Jamboolak)**, the long-necked pots to store oil **(Ushtrika)** were prepared. Thus many daily-wage labourers and salaried employees used to carry the earthen vessels to crossings, state highways since morning for sale.

विवेचन—इस वर्णन से पता चलता है कि बर्तन बनाने की कर्मशालाएँ तथा कुम्हारों के अलाव नगर से बाहर होते थे, जिससे उनसे उठने वाले धुएँ के कारण नगर में प्रदूषण नहीं फैलता था और न ही नगरवासियों को किसी प्रकार की असुविधा होती थी। सकडालपुत्र के पास पाँच सौ कर्मशालाएँ थीं, जिससे ज्ञात होता है वह बहुत बड़ा व्यापारी था। नगर में भी उसकी अनेक बड़ी दुकानें थीं तथा कर्मचारी नगर के चौराहों आदि पर भी बर्तन बेचते थे। उस समय कर्मकरों को तीन प्रकार से पारिश्रमिक देने का संकेत इस सूत्र में मिलता है–(१) दैनिक मजदूरी, (२) भोजन (भत्ता), या (३) साप्ताहिक अथवा मासिक वेतन।

विविध प्रकार के बर्तनों के नामोल्लेख से यह भी पता चलता है कि बर्तन बनाने की कला उस समय काफी विकसित हो चुकी थी। घर गृहस्थी के कार्यों में उपयोग आने वाले अनेक कलात्मक मिट्टी के बर्तन उस समय बनते थे।

Explanation—This description shows that the pot-factories and the kilns of the potters were outside the city so that their smoke did not pollute the city. The citizens were also not feeling disturbed by their presence. Sakadalputra had 500 factories. It shows that he was a great businessman. He had many shops in the city. He had engaged many employees for selling his products. Wages of three types were prevalent in those days—(1) daily wages, (2) food, (3) weekly or monthly salary.

The description of various types of pots indicates that pottery was well-developed. Many types of pots were purchased for the use of the householders.

१८१. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

१८१. एक समय वह आजीविकोपासक सकडालपुत्र दोपहर के समय अपनी अशोकवनिका में गया और गोशालक मंखलिपुत्र के पास स्वीकृत धर्मप्रज्ञप्ति अनुसार उपासना करने लगा।

181. Once *Ajivikopasak* Sakadalputra came at noon to Ashok-Vanika and engaged himself in spiritual practices learnt from Mankhaliputra Goshalak.

१८२. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

१८२. उस समय आजीविकोपासक सकडालपुत्र के समक्ष एक देव प्रकट हुआ।

182. Then an angel appeared before *Ajivikopasak* Sakadalputra.

१८३. तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने सखिंखिणियाइं जाव परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"एहिइ णं देवाणुप्पिया ! कल्लं इहं महामाहणे, उप्पन्नणाणदंसणधरे, तीय-पडुपन्न-मणागय-जाणए, अरहा जिणे केवली, सव्वण्णू, सव्वदरिसी, तेलोक्क-वहिय-महिय-पूइए, सदेव मणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे, वंदणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं जाव पज्जुवासणिज्जे, तच्चकम्म-संपयासंपउत्ते। तं णं तुमं वंदेज्जाहि जाव पज्जुवासेज्जाहि, पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सिज्जासंथारएणं उवनिमंतेज्जाहि।" दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

१८३. वह देव छोटी-छोटी घण्टियाँ व घुँघरू लगे सुन्दर वस्त्र पहने हुए था, आकाश में स्थित होकर आजीविकोपासक सकडालपुत्र से कहने लगा—"देवानुप्रिय ! कल प्रातःकाल यहाँ महामाहन अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारक, अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के ज्ञाता, अरिहंत, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीनों लोक जिनका ध्यान, दर्शन, स्तुति तथा पूजन को उत्सुक रहता है। देव, मनुष्य तथा असुरों आदि सभी के द्वारा अर्चनीय, वंदनीय, सत्कारणीय तथा सम्मांननीय हैं, जो कल्याण स्वरूप, मंगल स्वरूप, देवता स्वरूप और दिव्य ज्ञान, तेजस् व शक्ति युक्त पर्युपासनीय है। **तथ्य-कर्म संपदा**—सत्कर्म रूप सम्पदा के स्वामी हैं, वे कल यहाँ आयेंगे। तुम उनकी वन्दना यावत् पर्युपासना करना। उन्हें **प्रातिहारिक** (उपयोग में लेकर वापस देने योग्य) पीठ, पाट, फलक, बाजोट, **शय्या**—ठहरने का स्थान और **संस्तारक**—बिछाने के लिए पुआल घास आदि के लिए आमन्त्रित करना।" देवता ने यों दूसरी बार और तीसरी बार भी कहा और जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में वापस चला गया।

183. That angel was wearing beautiful clothes studded with small ringing bells. He said—"O beloved of gods ! Tomorrow morning, Maha-mahan is arriving, who is in

possession of undefiable knowledge and perception, who is knower of past, present and future, who is *Arihant, Jin, Kevali, Sarvajna, Sam-darshi,* who is honoured and respected by the residents of all the three worlds, who is honoured by angels, human beings and demon-gods, praised and worshipped by them. He is beneficial, auspicious, god-like, bestower of higher knowledge, brightness and strength to all. So he is worthy of worship. He is owner of good qualities **(Sat-Karm sampada).** He shall came here tomorrow. You bow to him and serve him, offer him bed, pot etc. **(Pratiharik)**; offer him place of stay **(Shayya)**, offer him straw-bedding **(Sanstarak)**. The angel said it twice and thrice and then disappeared.

विवेचन–इस सूत्र में आये भगवान महावीर के कुछ विशेषण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत करते हैं। जैसे–

महामाहण–आचार्य अभयदेवसूरि इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं–**'मा-हन' इत्येवमाचष्टे यः स माहनः**–जो स्वयं हिंसा नहीं करता है तथा दूसरों को उपदेश देता है। **मा-हन**–किसी को मत मार उसे 'माहन' कहा जाता है। अहिंसा धर्म के परम उपदेशक के अर्थ में यहाँ 'महा माहन' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

प्राकृत में 'ब्राह्मण' का भी 'माहण' रूप बनता है। आगमों में अनेक स्थानों पर **'समण-माहणं'** श्रमण-ब्राह्मण शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राकृत भाषा में 'ब्राह्मण' रूप के साथ ही 'माहण' रूप भी बनता है। भारतीय संस्कृति में ब्राह्मण का अर्थ किसी जाति विशेष का व्यक्ति नहीं होकर ज्ञानी, सदाचारी, तेजस्वी तथा उज्ज्वल चरित्र सम्पन्न व्यक्तित्व से है। वैदिक ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन आगम उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन २५ में जयघोष मुनि ने ब्राह्मण का अत्यन्त आदर्श त्यागमय स्वरूप बताया है। इसी प्रकार बौद्धों के धम्मपद में भी ब्राह्मण को निर्लिप्त संयमी, सच्चरित्र पुरुष के रूप में परिभाषित किया है। वास्तव में 'ब्राह्मण' उज्ज्वल पवित्र गुण–कर्म का प्रतीक है। यहाँ पर भगवान को 'महा माहन' महान् ब्राह्मण के रूप में एक अत्यन्त तेजस्वी ज्ञानवान सत्पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है।

भगवान का एक विशेषण–**तच्च-कम्मसंपया संपउत्ते**–तथ्य-कर्म सम्पदा से संप्रयुक्त है। **तथ्य-कर्म सम्पदा** का अर्थ किया गया है जीवन को सफल बनाने वाली उच्च कोटि की चारित्र सम्पदा के स्वामी। इससे भगवान की पुरुषार्थवादी जीवन दृष्टि का सूचन होता है।

प्रातिहारिक–शब्द का अर्थ है–वे वस्तुएँ जिन्हें काम पूरा हो जाने पर लौटा दिया जाता है। यहाँ दो शब्द मननीय हैं–आहार और प्रतिहार। जो वस्तु एक बार लाकर वापस नहीं की जाती उसे आहार कहा जाता है। भोजन इसी प्रकार की वस्तु है। इसके विपरीत बैठने का पीढ़ा, सोने के लिए चौकी आदि वस्तुएँ जो कुछ दिनों के लिए लाई जाती हैं और काम पूरा हो जाने पर वापस कर दी जाती हैं इन्हें प्रतिहार कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में प्रतिहारी के रूप चार वस्तुओं का उल्लेख है–(१) पीठ–पीढ़ा–बैठने की चौकी, (२) फलक–पट्टा या सोने की चौकी (पंजाबी में इसे फट्टा कहा जाता है), (३) शय्या–निवास स्थान, तथा (४) संस्तारक–बिछौना के लिए घास या चटाई आदि।

Explanation—In this sutra, some adjectives used for Bhagavan Mahavir point at some important facts.

Maha-Mahan—Acharya Abhaydev has explained it as under—**ma-han**—he who neither commits violence nor propagates violence, **ma-han**—Do not kill any one. Here **ma-han** is used for the prime propagator of non-violence.

In Prakrit, Brahmin is also called **ma-han**. In scriptures at many places word **'Saman-Mahan'** is used. In Indian culture, Brahman word is not limited to a particular sect or caste. It denotes the learned, one of good conduct, honoured, one of grand character. In addition to vedic literature, even in Jain Scriptures (*Agams*) namely *Uttaradhyan* in the twenty fifth chapter Muni Jayaghosh was a Brahmin of extremely ideal, ascetic conduct. In Buddhist Scripture *Dhammapad,* Brahmin is non-attached person of good conduct.

१८४. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तेणं देवेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने–'एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते, से णं महामाहणे उप्पन्नणाणदंसणधरे जाव तच्च कम्मसंपया-संपउत्ते, से णं कल्लं इहं हव्वमागच्छिस्सइ। तए णं तं अहं वंदिस्सामि जाव पज्जुवासिस्सामि पाडिहारिएणं जाव उवनिमंतिस्सामि।'

१८४. उस देव के यों कहने पर आजीविकोपासक सकडालपुत्र के मन में यह विचार आया, चिन्तन जगा कि 'मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक गोशालक मंखलिपुत्र जो महामाहन, अप्रतिहत ज्ञान, दर्शन के धारक यावत् तथ्यकर्म रूप सम्पत्ति के स्वामी हैं वे

कल यहाँ आयेंगे। मैं उनकी वन्दना करूँगा, उनका सत्कार सम्मान करके उनकी पर्युपासना करूँगा। उन्हें प्रातिहारिक पीठ-फलकादि के लिए आमन्त्रित करूँगा।'

184. At the advice of the angel, *Ajivikopasak* Sakadalputra thought and brooded 'My preceptor and spiritual master Mankhaliputra Goshalak who is *Mahamahan* (a meticulous follower of non-violence), possessor of indefiable knowledge and perception, and rich in spiritual true wealth; would be coming here tomorrow. I shall bow to him, honour him, greet him and serve him. I shall offer him the stool, the bed and other articles needed.'

१८५. तए णं कल्लं जाव जलंते समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए। परिसा निग्गया। जाव पज्जुवासइ।

१८५. दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर भगवान महावीर वहाँ पधारे। परिषद् धर्म श्रवण के लिए निकली। धर्मदेशना सुनकर भगवान की पर्युपासना करने लगी।

185. Next day early in the morning, shortly after sunrise Bhagavan Mahavir arrived there. The congregation was held for his discourse. Thereafter, the people started greeting him.

१८६. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे–'एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता पहाए जाव पायच्छित्ते सुद्ध प्पावेसाइं जाव अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरे मणुस्सवग्गुरा-परिगए साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पोलासपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, नमंसित्ता जाव पज्जुवासइ।

१८६. आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने जब यह समाचार सुना कि श्रमण भगवान महावीर पोलासपुर नगर में पधारे हैं। सहस्राम्रवन उद्यान में ठहरे हैं। उसने सोचा–'मैं

जाकर भगवान की वन्दना नमस्कार करता हूँ यावत् पर्युपासना करता हूँ।' इस प्रकार सोचकर उसने स्नान किया, कौतुक मंगलाचार किये। धर्मसभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र पहने। अल्प भार वाले किन्तु बहुमूल्यवान आभूषणों द्वारा अपने शरीर को अलंकृत/विभूषित किया और अनेक लोगों के साथ घर से निकलकर पोलासपुर नगर के मध्य में होता हुआ सहस्राम्रवन उद्यान में जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे वहाँ पहुँचा। आकर उसने भगवान को वन्दना नमस्कार किया और पर्युपासना करने लगा।

186. When *Ajivikopasak* Sakadalputra heard that Bhagavan Mahavir is staying in Sahasra-Amra-Van garden of Polaspur, he thought—'I shall go to greet him and serve him.' He then took his bath, performed auspicious rituals, dressed himself suitably for a spiritual gathering; decorated his body with light but costly ornaments and passed through the streets of Polaspur alongwith many persons. He reached Sahasra-Amra-Van garden where Bhagavan Mahavir was staying. He greeted Bhagavan Mahavir and seated himself near him.

१८७. तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइ जाव धम्मकहा समत्ता।

१८७. तब श्रमण भगवान महावीर ने उस विशाल परिषद् में आजीविकोपासक सकडालपुत्र को धर्मकथा कही। यावत् धर्मसभा समाप्त हुई।

187. Then, Bhagavan Mahavir gave his sermon to *Ajivikopasak* Sakadalputra in that big gathering. Later the congregation dispersed.

१८८. "सद्दालपुत्ता !" इ समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"से नूणं, सद्दालपुत्ता ! कल्लं तुमं पुव्वावरण्ह कालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जाव विहरसि। तए णं तुब्भं एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने एवं वयासी—"हंभो सद्दालपुत्ता !" तं चेव सव्वं जाव "पज्जुवासिस्सामि।" से नूणं, सद्दालपुत्ता ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता ! अत्थि !"

"नो खलु, सद्दालपुत्ता ! तेणं देवेणं गोसालं मंखलिपुत्तं पणिहाय एवं वुत्ते।"

१८८. तत्पश्चात् भगवान महावीर ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र को सम्बोधित करके कहा–"सकडालपुत्र ! कल दोपहर के समय तुम जब अशोक वाटिका में थे, तब एक देव तुम्हारे समक्ष आकाश में प्रकट हुआ और उसने तुम्हें यों कहा कि कल प्रातः अरिहंत केवली आयेंगे।" भगवान ने सकडालपुत्र के आगमन से पर्युपासना करने के निश्चय तक समूची घटना कह सुनायी और अन्त में पूछा–"सकडाल पुत्र ! क्या यह बात ठीक है ?"

सकडालपुत्र ने उत्तर दिया–"हाँ भगवन् ! ठीक है।"

भगवान ने फिर कहा–"सकडालपुत्र ! उस देव ने यह बात मंखलिपुत्र गोशालक को लक्ष्य करके नहीं कही थी।"

188. Thereafter, addressing *Ajivikopasak* Sakadalputra, Mahavir said—"O Sakadalputra ! Yesterday at noon when you were in Ashok Vatika, an angel had appeared before you in the sky. He had told you that the following morning, Arihant Kevali shall arrive." Bhagavan Mahavir narrated the entire incident from the arrival of Sakadalputra upto the decision to greet Bhagavan and in the end asked—"Sakadalputra, is it true ?"

Sakadalputra replied—"Yes, O Lord ! It is correct."

Then Mahavir said—"Sakadalputra ! That angel had not said so in the context of Mankhaliputra Goshalak."

सकडालपुत्र का चिन्तन

१८९. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासयस्स समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४–"एस णं समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पन्ननाणदंसणधरे, जाव तच्च-कम्म-संपया-संपउत्ते तं सेयं खलु ममं समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता पाडिहारिएणं पीढ-फलग जाव उवनिमंतित्तए।" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं

वंदइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-"एवं खलु भंते ! ममं पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया पंच कुम्भकारावणसया। तत्थ णं तुब्भे पाडिहारियं पीढ जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ।"

१८९. श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार कहने पर आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने मन में विचार किया-'यह श्रमण भगवान महावीर ही महा माहन हैं, ये ही अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक यावत् सत्कर्म सम्पदा के स्वामी हैं। मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं इन्हें वन्दना नमस्कार करके प्रातिहारिक पीठ-फलक आदि के लिए आमन्त्रित करूँ।' ऐसा विचार कर वह उठा, श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार किया और निवेदन किया-"हे भन्ते ! पोलासपुर नगर के बाहर मेरे पाँच सौ आपण हैं। वहाँ पर आप प्रातिहारिक पीठ-फलक, संस्तारक ग्रहण करके मुझे अनुगृहीत करें।"

SAKADALPUTRA'S BROODING

189. At the said talk of Bhagavan Mahavir, Sakadalputra thought to himself—'Shraman Bhagavan is the true Maha-mahan. He is possessor of indefiable knowledge and perception. He is possessor of the wealth of truth. It is ideal for me to greet him and offer him wooden platform, bed etc., He then got up, bowed to Bhagavan Mahavir and requested—"Bhante ! I have five hundred factories outside Polaspur. Please favour me by accepting wooden platform, straw bedding and bed from me at that place."

भगवान महावीर का कुंभकारापण में आगमन

१९०. तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पंच कुंभकारावणएसु फासु एसणिज्जं पाडिहारियं पीढ फलग जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ।

१९०. तब श्रमण भगवान महावीर ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र की इस प्रार्थना को स्वीकार किया और उसकी पाँच सौ कर्मशालाओं से प्रासुक, एषणीय और प्रातिहारिक पीठ-फलक, शय्या-संस्तारक आदि ग्रहण करके अवस्थित हुए।

ARRIVAL OF MAHAVIR AT THE FACTORY OF THE POTTER

190. Then Bhagavan Mahavir accepted the offer of *Ajivikopasak* Sakadalputra and he stayed at his factory after accepting the wooden pank, straw bed etc. from him according to prescribed norm.

१९१. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ वायाहययं कोलालभंडं अंतो सालाहिंतो बहिया नीणेइ, नीणित्ता आयवंसि दलयइ।

१९१. एक समय आजीविकोपासक सकडालपुत्र हवा से कुछ सूखे हुए बर्तनों को कर्मशाला के अन्दर से लाकर बाहर धूप में सुखा रहा था।

191. Once Sakadalputra *Ajivikopasak* was drying up his slightly dried pots in the sun outside his factory.

१९२. तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी–"सद्दालपुत्ता ! एस णं कोलालभंडे कओ ?"

१९२. तब श्रमण भगवान महावीर ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र से पूछा– "सकडालपुत्र ! यह मिट्टी के बर्तन कैसे बने ?"

192. Then, Bhagavan Mahavir asked—"O Sakadalputra ! How did you prepare these earthen pots ?"

१९३. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी–"एस णं भंते ! पुव्विं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं निगिज्जइ, निगिज्जित्ता छारेण य करिसेण य एगयाओ मीसिज्जइ, मीसिज्जित्ता चक्के आरोहिज्जइ, ताओ बहवे करगा य जाव उट्टियाओ य कज्जति।

१९३. तब सकडालपुत्र ने श्रमण भगवान महावीर से कहा–"भंते ! सर्वप्रथम मिट्टी लायी जाती है, फिर उसे पानी में भिगोया जाता है। तत्पश्चात् राख और गोबर के साथ मिलाकर गूँथा जाता है, फिर चाक पर चढ़ाया जाता है। तब यह घड़े, बर्तन आदि बनाये जाते हैं।

193. Then, Sakadalputra replied—"Bhante ! First of all the earth is brought. It is made wet with coal dust and cow-

चित्र परिचय १२

Illustration No. 12

भगवान के साथ सकडालपुत्र की तत्त्वचर्चा

एक समय भगवान महावीर पोलासपुर पधारे। देव-वचनों से प्रेरित सकडालपुत्र ने भगवान के दर्शन कर अपनी कर्मशाला में पधारने का अनुरोध किया।

सकडालपुत्र की प्रार्थना पर भगवान महावीर उसकी कर्मशाला (कारखाना) पर पधारे। एक दिन दोपहर के समय जब अनेक कर्मचारी बर्तनों को हवा देने के लिए धूप में रख रहे थे तथा सूखे बर्तन उठाकर भीतर ले जा रहे थे। तब भगवान ने सकडालपुत्र को नियतिवाद की असारता तथा पुरुषार्थवाद की उपयोगिता समझाने की दृष्टि से सकडालपुत्र से पूछा-"सकडालपुत्र ! ये बर्तन कैसे बनते हैं ?"

सकडालपुत्र बताता है-"कर्मचारियों ने पहले मिट्टी एकत्र की, उसमें पानी डाला। फिर राख-गोबर मिलाकर गूँथा, एकाकार किया। फिर उसे चाक पर चढ़ाया और फिर उन्हें आवे में अग्नि से पकाया। तब ये बर्तन तैयार हुए।"

इसी प्रक्रिया के सहारे भगवान ने उसे पुरुषार्थवाद की तार्किकता समझाई। सकडालपुत्र ने उसे स्वीकार कर लिया।

-उपासकदशा, अ. ७, सूत्र १९७-२००

SPIRITUAL DIALOGUE OF SAKDALPUTRA WITH BHAGAVAN MAHAVIR

At one time, Bhagavan Mahavir came to Polaspur. Inspired by the words of a god, Sakdalputra came there and requested the Lord to come to his factory.

At the request of Sakdalputra, Bhagavan Mahavir came to his factory. One day at noon, many employees were placing the pots in the sun to dry them up and the dried pots in the room inside. Then the Lord, in order to bring home the hollowness of the doctrine of *Niyativad* and the benefits of *Purusharthvad,* asked—"Sakdalputra ! How are these pots prepared ?"

Sakdalputra replied—"The employees first collected the earth and added water to it. It was then kneaded after adding ash and cow-dung and made smooth. It was then placed on the wheel to give it shape of pots. The pots were then placed in a kiln and baked in fire. Thus, the pots were prepared."

Referring to the steps taken in preparing the pots, Bhagavan Mahavir made him understand the rationale of *Purusharthvad.* Sakdalputra accepted it.

—Upasak-dasha, Ch. 7, Sutra 197-200

dung is mixed in it. It is then properly kneaded. It is then placed on the potter's wheel and shaped into different types of pots.

१९४. तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी–"सद्दालपुत्ता ! एस णं कोलालभंडे किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कार-परक्कमेणं कज्जंति उदाहु अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कार-परक्कमेणं कज्जंति ?"

१९४. तब भगवान महावीर ने पुनः प्रश्न किया–"सकडालपुत्र ! ये मिट्टी के बर्तन क्या उत्थान प्रयत्न यावत् पुरुषकार, पराक्रम द्वारा बनते हैं अथवा उनके बिना ही बन जाते हैं ?"

194. Then, Bhagavan Mahavir again asked—"Sakadalputra ! Are these earthen pots prepared with due *Utthan,* planning (upto) human efforts (*Purushakar, Parakram*) or they take the shape without any such thing ?"

१९५. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी–"भंते ! अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कार-परक्कमेणं, नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा।"

१९५. आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने उत्तर दिया–"भंते ! यह सब बर्तन प्रयत्न, पुरुषार्थ, पुरुषकार, पराक्रम के बिना ही बने हैं। उत्थान आदि का कोई अर्थ या स्थान नहीं है। समस्त होने वाले भाव नियत हैं।"

195. *Ajivikopasak* Sakadalputra replied—"Bhante ! The pots have been prepared without planning, efforts, human will (*Purushakar, Parakram*). *Utthan* etc. has no place in their formation. All this was to happen so it has happened."

१९६. तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी–"सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेज्जासि ?"

"भंते ! अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधेज्जा वा महेज्जा वा तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा निच्छोडेज्जा वा निब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जा।"

"सद्दालपुत्त ! नो खलु तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरइ वा जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरइ, नो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जसि वा हणेज्जसि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जसि, जइ नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा नियया सव्वभावा। अह णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा जाव विहरइ, तुमं ता तं पुरिसं आओसेसि वा जाव ववरोवेसि। तो जं वदसि नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव नियया सव्वभावा, तं ते मिच्छा।"

एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए संबुद्धे।

१९६. तब आजीविकोपासक सकडालपुत्र से श्रमण भगवान महावीर ने इस प्रकार पूछा–"सकडालपुत्र ! यदि कोई पुरुष हवा लगे हुए अथवा पके हुए तुम्हारे इन मिट्टी के बर्तनों को चुरा ले या कहीं बाहर ले जाकर बिखेर दे या उनमें छेद कर दे, या उन्हें फोड़ दे, अथवा उठाकर बाहर रख दे अथवा कोई अनार्य पुरुष और तुम्हारी अग्निमित्रा भार्या के साथ काम-भोग सेवन करे तो तुम उस पुरुष को क्या दण्ड दोगे ?"

सकडालपुत्र बोला–"भंते ! मैं उस पुरुष को फटकारूँगा, पीटूँगा, बाँध दूँगा, पैरों तले कुचल डालूँगा, धिक्कारूँगा, ताड़ना करूँगा, नोंच डालूँगा, भला-बुरा कहूँगा, अथवा उसके प्राण भी ले लूँगा।"

भगवान ने कहा–"हे सकडालपुत्र ! तुम्हारी मान्यता के अनुसार यदि उत्थान, कर्म, प्रयत्न, उधम आदि कुछ नहीं है। सभी भाव नियत हैं तो फिर न तो कोई पुरुष बर्तनों को चुराता है, न ही उन्हें फोड़ता है। न ही अग्निमित्रा भार्या के साथ दुराचार करता है। न ही तुम उस पुरुष को दण्ड देते हो या मारते हो। क्योंकि जो कुछ होता है अपने आप होता है, यदि तुम मानते हो कि कोई पुरुष तुम्हारे बर्तनों को वास्तव में चुराता है, या अग्निमित्रा भार्या के साथ दुराचार सेवन करता है और तुम उस पुरुष को फटकारते हो

यावत् मारते हो तो तुमने उत्थान, प्रयत्न, पुरुषार्थ कुछ नहीं होने की और सब भाव पहले से ही नियत होने की जो बात कही है वह मिथ्या है।''

यह सुनकर आजीविकोपासक सकडालपुत्र वास्तविकता को समझ गया। उसे सम्बोध प्राप्त हुआ।

196. Then, Bhagavan Mahavir asked—"O Sakadalputra ! If any person steals your dried or baked pots, scatters them after taking them away to some unknown place, makes holes in them or breaks them, or places them away, or some wretched fellow rapes your wife Agnimitra—shall you punish him ?"

Sakadalputra replied—"Bhante ! I shall insult him, beat him, tie him down, tremble him, condemn him, threaten him, bite him, abuse him and even kill him."

Mahavir said—"O Sakadalputra ! According to your belief, *Utthan, Karm, Prayatna* (efforts), *Udyam* (working) etc. has no meaning. All is pre-determined. Then neither anyone steals the pottery, breaks them nor anyone misbehaves with your wife Agnimitra. You also do not punish him or kill him. All what happens, occurs of its own. If you believe that someone steals your pots or misbehaves with your wife in reality, and you condemn and even kill that person, your earlier version that *Utthan, Prayatna, Purusharth* are meaningless becomes untrue."

After hearing this, *Ajivikopasak* Sakadalputra understood the reality. He accepted the true knowledge.

१९७. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–''इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए धम्मं निसामेत्तए।''

१९७. तब आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया और अनुरोध किया–"भंते ! मैं आपसे धर्म सुनना चाहता हूँ।"

197. Then, *Ajivikopasak* Sakadalputra bowed respectfully to Mahavir and requested—"Bhante ! I want to hear religious sermon from you."

१९८. तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य जाव धम्मं परिकहेइ।

१९८. तब श्रमण भगवान महावीर ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र को तथा उपस्थित परिषद् को धर्मदेशना दी।

198. Then, Bhagavan Mahavir gave spiritual discourse to *Ajivikopasak* Sakadalputra and the congregation.

सकडालपुत्र द्वारा व्रत ग्रहण

१९९. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव हियए जहा आणंदो तहा गिहिधम्मं पडिवज्जइ। नवरं एगा हिरण्णकोडी निहाणपउत्ता, एगा हिरण्णकोडी वुड्ढिपउत्ता, एगा हिरण्णकोडी पवित्थरपउत्ता, एगे वए दस गोसाहस्सिएणं वएणं।

जाव समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव पोलासपुरे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोलासपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए गिहे, जेणेव अग्गिमित्ता भारिया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अग्गिमित्तं एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे, तं गच्छाहि णं तुमं, समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।"

१९९. श्रमण भगवान महावीर की धर्मदेशना सुनकर आजीविकोपासक सकडालपुत्र अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। उसने भी आनन्द की भाँति गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। आनन्द से केवल इतना ही अन्तर है कि सकडालपुत्र के पास एक करोड़ सुवर्ण कोष में थे, एक करोड़ व्यापार में और एक करोड़ गृह और उपकरणों में लगे हुए थे। दस हजार गायों का एक व्रज था।

सकडालपुत्र ने श्रमण भगवान महावीर को पुनः वन्दना नमस्कार किया और पोलासपुर नगर में से होता हुआ अपने घर पहुँचा। घर पर पहुँचकर उसने अग्निमित्रा भार्या से कहा–"देवानुप्रिये ! यहाँ पर श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं। (सकडालपुत्र ने सब वृत्तान्त कहा) तुम जाओ, उन्हें वन्दना नमस्कार करो, उनकी पर्युपासना करो। उनसे पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म स्वीकार करो।"

SAKADALPUTRA ACCEPTS VOWS

199. After hearing Mahavir's spiritual talk, Sakadalputra felt immensely pleased and satisfied. He also accepted vows of a householder like Anand. The only difference is that Sakadalputra had only ten million gold coins in treasure, ten million in business and ten million in household. He had one *gokul* of ten thousand cows.

Sakadalputra again greeted the Lord and came to his house passing through Polaspur. After arriving at his house, he told his wife Agnimitra—"O blessed of gods ! Bhagavan Mahavir has arrived here, and narrated the entire incident. He then advised her to go, greet and sit near Bhagavan Mahavir and accept twelve vows of a householder."

विवेचन–इस वर्णन में ध्यान देने की बात यह है कि सकडालपुत्र जो आजीविकोपासक सम्प्रदाय का प्रमुख प्रभावशाली व्यक्ति था, वह एक ही बार में भगवान महावीर की तर्क एवं युक्ति पुरस्सर देशना सुनकर प्रबुद्ध हो गया और पूर्व ग्रहीत नियतिवाद को झट से त्यागकर भगवान महावीर से श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया।

सकडालपुत्र की सत्य ग्रहण की दृष्टि, उसके प्रति श्रद्धा–निष्ठा और तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता वास्तव में ही अनुकरणीय है।

Explanation—The point worth studying in this passage is that Sakadalputra was an influential person of Ajivik faith. He listened to the discourse of Bhagavan Mahavir only once which was based on reason and logic. He at once discarded the earlier accepted Ajivik faith and accepted the *Shravak Dharm* as propounded by Bhagavan Mahavir.

The true bent of mind, belief to accept truth and to decide quickly was in reality exemplary in Sakadalputra.

२००. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया सद्दालपुत्तस्स समणोवासगस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएण पडिसुणेइ।

२००. तब अग्निमित्रा ने कहा–"आप ठीक कहते हैं।" इस प्रकार सकडालपुत्र के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

200. Then, Agnimitra replied—"Your statement is true." Saying so, she accepted his advice with gratitude.

२०१. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! लहुकरण-जुत्त-जोइयं सम-खुर-बालिहाण समलिहिय-सिंगएहिं, जंबूणयामय-कलाव-जोत्त पइविसिट्ठएहिं रययामय-घंट-सुत्त-रज्जुग वरकंचण-खइय-नत्था-पग्गोहोग्गहियएहिं, नीलुप्पलकयामेलएहिं, पवर-गोण-जुवाणएहिं नाणा-मणि-कणगघंटियाजाल-परिगयं सुजाय-जुग-जुत्त-उज्जुग-पसत्थ-सुविरइय-निम्मियं पवर-लक्खणोववेयं जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

२०१. तब श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–"देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तेज चलने वाला रथ तैयार करो। उसमें नई उमर के ऐसे उत्तम बैलों की जोड़ी जोतना, जिनके खुर तथा पूँछ एक ही रंग के हों, जिनके सींग विभिन्न रंगों से रंगे हुए हों, उनके गले में सोने के आभूषण हों, चाँदी की घण्टियाँ लटक रही हों। नाक की (नकेल) रस्सी भी पतली हों और सुवर्ण के तारों से सुशोभित हों। मस्तक नीले कमलों से सजा हो। रथ नाना प्रकार की मणियों से मण्डित हो। (जुआ) सुन्दर लकड़ी का बना हुआ हो। जिसकी बनावट समीचीन, ऋजु तथा दर्शनीय हो। धार्मिक कार्यों के लिए उपयोग में आने वाला हो ऐसा उत्तम रथ तैयार करके यहाँ उपस्थित करो और आज्ञा का पालन करके मुझे सूचित करो।"

201. Then *Shramanopasak* Sakadalputra advised his domestic servants—"O the blessed ! Prepare the fast-moving

chariot soon. Select young and best bullocks of same colour and hoofs and tails of same colour, horns painted in different colours, wearing gold ornaments with dangling silver bells. The string in their nose should be decorated with golden threads. Their foreheads should be decorated with blue lotus flowers. Various types of pearls should be studded in the chariot. The yoke should be made of beautiful wood. The chariot should be straight, unique and worth seeing. After preparing such a chariot for the purpose of spiritual activities, bring it here and inform me about the compliance of my order."

२०२. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

२०२. सकडालपुत्र के सेवकों ने उसकी आज्ञा विनयपूर्वक स्वीकार की और तदनुरूप रथ तैयार करके सकडालपुत्र को सूचित किया।

202. The employees of Sakadalputra accepted the order with gratitude and after preparing the chariot informed Sakadalputra.

भगवान के दर्शन हेतु अग्निमित्रा का प्रस्थान

२०३. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया ण्हाया जाव पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्प महग्घाभरणालंकियसरीरा चेडिया-चक्कवाल-परिकिण्णा धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता पोलासपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता चेडिया चक्कवालपरिवुडा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो जाव वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नाइदूरे जाव पंजलिउडा ठिइया चेव पज्जुवासइ।

२०३. तब सकडालपुत्र की पत्नी अग्निमित्रा ने स्नान किया। सभा में प्रवेश करने योग्य उत्तम वस्त्र धारण किये यावत् अल्प भार किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से अपने शरीर को विभूषित किया। दासियों के समूह से घिरी हुई वह उत्तम धार्मिक रथ पर सवार हुई तथा पोलासपुर नगर के मध्य से होती हुई सहस्राम्रवन उद्यान में पहुँची। वहाँ

रथ से नीचे उतरकर दासी परिवार से घिरी हुई भगवान महावीर के पास पहुँची। वहाँ पहुँचकर भगवान महावीर को तीन बार वन्दना नमस्कार किया, भगवान से न बहुत निकट, न अति दूर सम्मुख उपस्थित हुई तथा हाथ जोड़कर उपासना करने लगी।

DEPARTURE OF AGNIMITRA TO SEE THE LORD

203. Then, Agnimitra, wife of Sakadalputra, took a bath. She wore the dress worthy of a congregation. She wore light but costly ornaments. She rode the spiritual chariot accompanied with a large gathering of her maid-servants. Passing through the middle of Polaspur, she reached Sahasra-Amra-Van garden. She saluted Bhagavan Mahavir thrice, greeted him with joined palms and seated herself near him—neither very far nor very near.

२०४. तए णं समणे भगवं महावीरे अग्गिमित्ताए तीसे य जाव धम्मं कहेइ।

२०४. तब श्रमण भगवान महावीर ने अग्निमित्रा को एवं उस उपस्थित परिषदा को धर्मोपदेश दिया।

204. Then Bhagavan Mahavir gave his spiritual discourse to Agnimitra and the gathering present.

२०५. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासी–"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता जाव अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

"अहासुहं, देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

२०५. श्रमण भगवान महावीर का धर्मोपदेश सुनकर अग्निमित्रा अत्यन्त प्रसन्न व सन्तुष्ट हुई। उसने भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार किया और बोली–"भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ। मुझे यह रुचिकर लगा है। यह सत्य है। जिस तरह आप कहते हैं, यह उसी प्रकार है। आप देवानुप्रिय के पास जिस भाँति बहुत से

उग्रवंशी भोगवंशी राजा, मंत्री आदि प्रव्रजित हो चुके हैं, मैं उस प्रकार आपके पास प्रव्रजित होने में समर्थ नहीं हूँ। अतः मैं आपके पास पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार करना चाहती हूँ।''

भगवान ने कहा-''देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो। विलम्ब मत करो।''

205. Agnimitra felt highly pleased and satisfied on hearing the spiritual lecture. She bowed to the Lord and said—"Sir ! I have faith in *Nirgranth Pravachan* (the discourse of the detached). It has appealed to me. It is true. It is as your honour has narrated. Many kings of famous clans and grand splendour, ministers and others have accepted monkhood under your patronage, I find myself unable to accept nunship. So I want to undertake twelve vows of the householder namely five partial vows and seven supporting vows."

Bhagavan Mahavir replied—"O the blessed ! You do as you wish to do. But do not delay to put into practice the good decision."

२०६. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुवइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

२०६. तब अग्निमित्रा ने श्रमण भगवान महावीर के पास पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म अंगीकार किया। फिर श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार किया और उसी धार्मिक रथ पर सवार होकर जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में वापस चली गई।

206. Then, Agnimitra accepted five partial vows and seven supporting vows—in all twelve vows of the householder. Later she bowed to Bhagavan Mahavir and returned in her chariot following the same direction.

२०७. तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ पोलासपुराओ नयराओ सहस्संबवणाओ पडिनिग्गच्छइ पडिनिग्गच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

२०७. इसके पश्चात् एक दिन श्रमण भगवान महावीर ने पोलासपुर के सहस्राम्रवन उद्यान से विहार किया और अन्य जनपदों में विचरने लगे।

207. Later, one day Bhagavan Mahavir left Sahasra-Amra-Van garden of Polaspur to deliver his spiritual discourse to others.

२०८. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए जाए अभिगए जीवाजीवे जाव विहरइ।

२०८. तदनन्तर सकडालपुत्र जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता बनकर धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगा।

208. Thereafter, Sakadalputra deeply studied and gained knowledge of living beings and non-living beings. He then started his spiritual life accordingly.

गोशालक का आगमन

२०९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—'एवं खलु सद्दालपुत्ते आजीवियसमयं वमित्ता समणाणं निग्गंथाणं दिट्ठिं पडिवन्ने। तं गच्छामि णं सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं समणाणं निग्गंथाणं दिट्ठिं वामेत्ता पुणरवि आजीवियदिट्ठिं गेण्हावित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता आजीवियसंघसंपरिवुडे जेणेव पोलासपुरे नयरे जेणेव आजीवियसभा, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आजीवियसभाए भंडग-निक्खेवं करेइ, करेत्ता कइवएहिं आजीविएहिं सद्धिं जेणेव सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

२०९. कुछ समय बाद मंखलिपुत्र गोशालक ने यह समाचार सुना कि सकडालपुत्र आजीविक सिद्धान्तों को छोड़कर श्रमण निर्ग्रन्थों का अनुयायी बन गया है। तब उसने मन ही मन विचार किया कि 'मैं पोलासपुर जाऊँ। सकडालपुत्र को समझाऊँ। निर्ग्रन्थ श्रमणों की मान्यता छुड़वाकर पुनः आजीविक सम्प्रदाय में लाऊँ।' यह विचार कर आजीविक संघ को साथ लेकर वह पोलासपुर पहुँचा और आजीविक सभा में अपने

भाण्डोपकरण–पात्र उपकरण आदि रखकर अनेक आजीविकों के साथ सकडालपुत्र श्रमणोपासक के पास आया।

GOSHALAK'S ARRIVAL

209. After sometime Mankhaliputra Goshalak heard that Sakadalputra had discarded the principles of Ajivik faith and has become a follower of *Nirgranth* (the name then used for Jains—free from knots of attachment and hatred). He then thought—'I should go to Polaspur, bring round Sakadalputra, prepare him to discard faith in principles of *Nirgranth* monks and again bring him to his fold viz. Ajivik faith.' He then with his follower-monks reached Polaspur and after placing the articles of his use—pots etc. in the Ajivik Hall, came to Sakadalputra with many followers of Ajivik faith.

२१०. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाइ, नो परिजाणइ, अणाढायमाणे, अपरिजाणमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

२१०. श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक को आते हुए देखा, किन्तु न तो उसका आदर किया और न ही परिचित जैसा व्यवहार किया।

210. *Shramanopasak* Sakadalputra saw Mankhaliputra Goshalak coming but he did not honour him nor behaved in the way of already acquainted one.

२११. तए णं से गोसालेमंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणे अपरिजाणिज्जमाणे पीढ-फलग-सिज्जा-संथारट्ठयाए समणस्स भगवओ महावीरस्स गुणकित्तणं करेमाणे सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी–"आगए णं, देवाणुप्पिया ! इहं महामाहणे ?"

२११. सकडालपुत्र द्वारा कुछ भी आदर नहीं मिलने पर तथा अपरिचित जैसा व्यवहार होने पर मंखलिपुत्र गोशालक ने उससे पीठ, फलक, शय्या तथा संस्तारक

आदि प्राप्त करने के लिए श्रमण भगवान महावीर का गुण कीर्तन करते हुए पूछा–"हे देवानुप्रिय ! क्या यहाँ पर महामाहन आये थे ?"

211. Mankhaliputra Goshalak after finding that he has not been honoured at all and that he has been treated as a stranger, praised Bhagavan Mahavir and with a view to inspire him to offer wooden platform (plank), bed, straw bedding etc. asked him—"O the blessed ! Did Maha-mahan come here ?"

२१२. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–"के णं देवाणुप्पिया ! महामाहणे ?"

२१२. श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक से पूछा–"देवानुप्रिय ! महामाहन कौन हैं ?"

212. *Shramanopasak* Sakadalputra asked Goshalak—"O the blessed ! Who is Maha-mahan ?"

२१३. (१) तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी–"समणे भगवं महावीरे महामाहणे।"

"से केणट्ठेणं, देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महामाहणे ?"

"एवं खलु सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पन्न-नणाण दंसणधरे जाव महिय-पूइए जाव तच्चकम्म-संपया-संपउत्ते। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महामाहणे।"

२१३. (१) श्रमणोपासक सकडालपुत्र से मंखलिपुत्र गोशालक ने कहा–"श्रमण भगवान महावीर महामाहन हैं।"

सकडालपुत्र–"हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर को किस अभिप्राय से आप महामाहन कहते हैं ?"

गोशालक–"सकडालपुत्र ! क्योंकि श्रमण भगवान महावीर अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक हैं। तीनों लोक में महिमावंत, महित–पूजा योग्य यावत् सत्यकर्म सम्पदा के स्वामी हैं। इसलिए श्रमण भगवान महावीर महामाहन कहलाते हैं।"

213. (1) Then, Mankhaliputra Goshalak said—"O blessed Sakadalputra ! Shraman Bhagavan Mahavir is Maha-mahan."

Sakadalputra said—"O the blessed ! In what context do you say that Shraman Bhagavan Mahavir is Maha-mahan ?"

Goshalak said—"O Sakadalputra ! Since Bhagavan Mahavir possesses undefiable knowledge and perception. He is praised in all the three worlds and he is in possession of true action (*Sat-Karma Sampada*), he is Maha-mahan."

(२) "आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महागोवे ?"

"के णं, देवाणुप्पिया ! महागोवे !"

"समणे भगवं महावीरे महागोवे।"

"से केणट्ठेणं, देवाणुप्पिया ! जाव महागोवे ?"

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेण सारक्खमाणे संगोवेमाणे, निव्वाण-महावाडं साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं, सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महागोवे।"

(२) गोशालक-"सकडालपुत्र ! क्या यहाँ महागोप आए थे ?"

सकडालपुत्र-"हे देवानुप्रिय ! कौन महागोप हैं ?"

गोशालक-"श्रमण भगवान महावीर महागोप हैं।"

सकडालपुत्र-"देवानुप्रिय ! किस अभिप्राय से आप श्रमण भगवान महावीर को महागोप कहते हो ?"

गोशालक-"श्रमण भगवान महावीर इस संसार अटवी में सन्मार्ग से च्युत होते हुए, नष्ट होते हुए, भटकते हुए, विविध कष्टों से पीड़ित होते हुए, विनष्ट होते हुए, छिन्न-भिन्न, क्षत एवं विक्षत किए जाते हुए प्राणियों की, धर्मरूपी दण्ड लेकर रक्षा करते हैं, उनका संगोपन करते हैं, बचाते हैं और निर्वाणरूपी विशाल बाड़े में सहारा देकर पहुँचाते हैं। इसलिए श्रमण भगवान महावीर महागोप कहलाते हैं।"

(2) Goshalak further said—"Sakadalputra ! Did Maha-gope come here ?"

Sakadalputra replied—"O the blessed ! Who is Maha-gope ?"

Goshalak said—"Shraman Bhagavan Mahavir is Maha-gope."

Sakadalputra said—"O the blessed ! With what point of view you call Mahavir Maha-gope ?"

Goshalak replied—"Shraman Bhagavan Mahavir protects those who are falling from the true spiritual path in this world, who have discarded the true path, who have gone astray, who are suffering from various troubles, who are badly treated, killed, pierced, threatened and badly condemned. He protects them with his spiritual stick. He protects them and herds them into the great yard of salvation with his support. So Bhagavan Mahavir is called Maha-gope (the great cowherd)."

(३) "आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महासत्थवाहे ?"

"के णं देवाणुप्पिया ! महासत्थवाहे ?"

"सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे।"

"से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! जाव महासत्थवाहे ?"

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे निव्वाण महापट्टणाभिमुहे साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे।"

(३) गोशालक-"सकडालपुत्र ! क्या यहाँ महासार्थवाह आए थे ?"

सकडालपुत्र-"देवानुप्रिय ! महासार्थवाह किसे कहते हैं ?"

गोशालक-"सकडालपुत्र ! श्रमण भगवान महावीर महासार्थवाह हैं।"

गौशालक द्वारा भगवान की महिमा PRAISE OF BHAGAVAN MAHAVIR BY GOSHALAK

चित्र परिचय १३

Illustration No. 13

गौशालक द्वारा भगवान महावीर की महिमा

सकडालपुत्र को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए गौशालक भगवान महावीर की महिमा का वर्णन करते हुए कहता है-

(१) श्रमण भगवान महावीर **महागोप** हैं, क्योंकि वे संसाररूपी अटवी में भ्रमण करते पशु समान अज्ञानी प्राणियों को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करते हैं तथा धर्मरूपी दण्ड हाथ में लेकर मिथ्यात्व आदि वन्य जीवों से उनका संरक्षण करते हैं।

(२) भगवान महावीर **महासार्थवाह** हैं, क्योंकि सार्थवाह की तरह वे संसाररूपी वन से पार जाने वाले यात्रियों को सुरक्षित धर्ममार्ग पर बढ़ने में सहयोग करते हुए मोक्ष नगरी तक पहुँचाते हैं।

(३) भगवान महावीर **महानिर्यामक** हैं क्योंकि संसार-समुद्र में डूबते जीवों को धर्मरूपी नौका में बैठाकर सुरक्षित रूप में मोक्षरूपी किनारे तक पहुँचा देते हैं।

(४) भगवान महावीर **महाधर्मकथी** हैं क्योंकि सत्पथ से भ्रष्ट उन्मार्गगामी जीवों पर करुणा कर वे सत्य व न्याययुक्त धर्म का प्ररूपण करते हैं।

- उपासकदशा, अ. ७, सूत्र २१८

PRAISE OF BHAGAVAN MAHAVIR BY GOSHALAK

In order to attract Sakdalputra, Goshalak appreciating Bhagavan Mahavir says—

(1) *Shraman* Bhagavan Mahavir is a great protector (*Maha Gope*). The ignorant human beings are moving about in the world like animals. He brings them on the real spiritual path. He, holding the rod of spirituality in his hand, protects them from other beasts viz. wrong faith etc.

(2) Bhagavan Mahavir is a great inspirer (*Maha Sarthvah*). He helps the travellers who wish to cross the jungle of mundane world. He guides them to move ahead on the safe spiritual path till they reach salvation.

(3) Bhagavan Mahavir is a great sailor (*Maha Niryamak*). He lifts the people drawning in the mundane world, carries them in the ship of spirituality and drives them to the abode of liberated souls at the other bank.

(4) Bhagavan Mahavir is a great outer of spirituality (*Maha Dharmakathi*). He feels compassion at those living beings who have discarded the proper path and propagates for them the faith based on truth and justice.

—Upasak-dasha, Ch. 7, Sutra 197-200

सकडालपुत्र-"आप किस अभिप्राय से कहते हैं कि श्रमण भगवान महावीर महासार्थवाह हैं?"

गोशालक-"श्रमण भगवान महावीर संसार अटवी में भटकते हुए, विविध प्रकार के कष्टों से पीड़ित क्षत-विक्षत छिन्न-भिन्न होते प्राणियों को धर्ममार्ग पर आगे बढ़ाते हैं और निर्वाणरूपी महानगर की ओर ले जाते हैं। इस अभिप्राय से श्रमण भगवान महावीर महासार्थवाह कहे जाते हैं।"

(3) Goshalak said—"Sakadalputra ! Did the Maha-sarthvah come here ?"

Sakadalputra asked—"Who is the great Sarthvah you are asking for ?"

Goshalak further said—"Sakadalputra ! Mahavir is the great Sarthvah (the great guide, supporter)."

Sakadalputra asked—"How do you believe that Bhagavan Mahavir is Maha-sarthvah ?"

Goshalak replied—"There are many living beings in this world who have gone astray from the true spiritual path, who are undergoing various types of sufferings; who are dejected, who are heart-broken. Bhagavan Mahavir encourages them to go ahead on the true spiritual path. He takes them towards the grand abode of liberated souls. So Bhagavan Mahavir is Maha-sarthvah."

(४) "आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाधम्मकही ?"

"के णं देवाणुप्पिया ! महाधम्मकही ?"

"समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही।"

"से केणट्ठेणं समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ?"

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे महइ महालयंसि संसारंसि बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवन्ने सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्त बलाभिभूए अट्ठविह कम्म-तम-पडल-

पडोच्छन्ने, बहूहिं अट्ठेहि य जाव वागरणेहि य चाउरंताओ संसारकंताराओ साहत्थिं नित्थारेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही।''

(४) गोशालक-''सकडालपुत्र ! क्या महाधर्मकथी यहाँ आए थे ?''

सकडालपुत्र-''देवानुप्रिय ! कौन हैं महाधर्मकथी ?''

गोशालक-''श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथी हैं।''

सकडालपुत्र-''आप श्रमण भगवान महावीर को किस अभिप्राय से महाधर्मकथी कहते हैं ?''

गोशालक-''देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर इस विशाल संसार में भटकते हुए, सत्पथ से भ्रष्ट होते हुए, कुमार्गगामी, मिथ्यात्व में फँसे हुए तथा आठ प्रकार के कर्मरूपी अन्धकार से घिरे हुए प्राणियों को अनेक प्रकार की युक्तियों, उपदेशों यावत् व्याख्याओं द्वारा सत्तत्त्व समझाकर भयंकर संसार अटवी के पार पहुँचाते हैं। इस अभिप्राय से श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथी कहे जाते हैं।''

(4) Goshalak further asked—"Sakadalputra ! Did Maha-dharm-kathi (the preacher of the great philosophy) come here ?"

Sakadalputra asked—"O the blessed ! Who is Maha-dharm-kathi ?"

Goshalak said—"Bhagavan Mahavir is Maha-dharm-kathi."

Sakadalputra then asked—"How do you call Mahavir, Maha-dharm-kathi ?"

Goshalak said—"O the blessed ! In this world there are many who have lost the true path, who have discarded the true spiritual path, who are heading on the wrong path, who are trapped in unrighteousness, who are engrossed in the darkness caused by eight types of Karmas. Bhagavan Mahavir, with his logic, lectures and sermons, making them aware of the true spiritual path, enables them to cross the

dreadful worldly wilderness. So Bhagavan Mahavir is called Maha-dharm-kathi."

(५) "आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महानिज्जामए ?"

"के णं देवाणुप्पिया ! महानिज्जामए ?"

"समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए।"

"से केणट्ठेणं समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए ?"

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसार-महासमुद्दे बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे ४ बुड्डमाणे निबुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए नावाए निव्वाण तीराभिमुहे साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए।"

(५) गोशालक-"क्या महानिर्यामक यहाँ आए थे ?"

सकडालपुत्र-"महानिर्यामक कौन हैं ?"

गोशालक-"श्रमण भगवान महावीर महानिर्यामक हैं।"

सकडालपुत्र-"आप श्रमण भगवान महावीर को किस अभिप्राय से महानिर्यामक कहते हैं ?"

गोशालक-"देवानुप्रिय ! संसाररूपी महासमुद्र में बहुत जीव नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, डूबते जा रहे हैं, गोते खा रहे हैं और बहते जा रहे हैं उन जीवों को धर्मरूपी नौका द्वारा निर्वाणरूपी तट पर ले जाने वाले श्रमण भगवान महावीर हैं। इसलिए श्रमण भगवान महावीर महानिर्यामक अथवा महाकर्णधार कहे जाते हैं।"

(5) Goshalak again asked—"Did Maha-niryamak come here ?"

Sakadalputra replied—"Who is Maha-niryamak ?"

Goshalak said—"Shraman Bhagavan Mahavir is Maha-niryamak."

Sakadalputra asked—"In what respect is Bhagavan Mahavir Maha-niryamak ?"

Goshalak replied—"O the blessed ! Many living beings are dying in the great ocean of the world. They are gasping, drowning, moving astray and flowing with the current. Bhagavan Mahavir is the preceptor who brings them to the sea-shore in the spiritual boat. So he is Maha-niryamak or the Great Sailor."

विवेचन—सकडालपुत्र को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए गोशालक ने भगवान महावीर की विशेषताओं का वर्णन किया है, यह मिथ्या-स्तुति नहीं होकर वास्तविकता है, भले ही इसके पीछे गोशालक का उद्देश्य अपनी स्वार्थ-पूर्ति का था, परन्तु कभी-कभी अपना स्वार्थ साधने के लिए भी सत्य का सहारा लेना पड़ता है।

(१) **महामाहन**—विशेषण के सम्बन्ध में सूत्र १८४ के विवेचन में लिखा जा चुका है। अन्य चार विशेषणों की संक्षिप्त चर्चा इस प्रकार है–

(२) **महागोप**—गायों की देखभाल करने वाला ग्वाला गोप कहलाता है। वह हाथ में दंड लेकर गायों का रक्षण और पालन करता है। हरी-हरी घास खिलाता हुआ उत्पथ से या कुमार्ग में चरने या भटकने से रोकता है। जंगली हिंसक पशुओं से उनकी रक्षा करता है। सुबह उनको अपने साथ लेकर निकलता है, सायंकाल सुरक्षित उनके स्थान पर पहुँचा देता है। इस प्रकार संरक्षण और पालन का दुहरा दायित्व निभाता है। अज्ञानी जीव को पशु या भोली गाय के समान बताकर भगवान को महागोप के रूप में उनका रक्षक/पालक बताया है।

(३) **महासार्थवाह**–'सार्थ' या 'काफिला' उन व्यापारियों के समूह को कहा जाता है जो एक साथ मिलकर दूर-दूर तक स्थल-मार्ग या जल-मार्ग से व्यापार यात्राएँ करते थे। क्योंकि उन दिनों यात्रा का मार्ग बड़ा बीहड़ और चोर-लुटेरों आदि से असुरक्षित था। इसलिए व्यापारी समूहबद्ध होकर भोजन व सुरक्षा आदि का पक्का प्रबंध करके यात्रा करते थे। व्यापारिक समूह का जो नेता होता था उसे सार्थवाह या सार्थपति कहा जाता था। सार्थवाह स्वयं यात्रा मार्ग का अनुभवी दूर दृष्टि, वीर, साहसी और सबकी देखभाल करने में निपुण होता था।

ज्ञातासूत्र में धन्य सार्थवाह का वर्णन आता है। जब वह यात्रा पर जाना चाहता है तो पहले नगर में घोषणा करवाता है कि जो कोई व्यापार के लिए चलना चाहे वह अपने सामान के साथ, गाड़े, गाड़ियाँ लेकर जहाज पर आ जाए, उसकी यात्रा की सब व्यवस्था सार्थवाह की ओर से होगी। मार्ग में भोजन के अतिरिक्त यदि किसी को धन की कमी पड़ जाय तो वह भी सार्थवाह पूरी कर देगा। सार्थवाह अपने साथ अनेक वाहन, गाड़िया, रथ तथा सुरक्षा का भी प्रबंध रखता था।

भगवान महावीर भी संसार यात्रा करने वाले जीवों को अपने नेतृत्व में उन्हें मोक्ष नगर तक की यात्रा सुरक्षित रूप में करवाते हैं। संसार को विशाल अटवी की उपमा दी जाती है। उसमें अनेक यात्री रास्ता भूल जाते हैं। सार्थवाह उन सबकी रक्षा करता हुआ उन्हें पार ले जाता है और नगर तक पहुँचा देता है। भगवान महावीर को भी इसी प्रकार मोक्षरूपी नगर तक पहुँचाने वाला सार्थवाह बताया गया है।

(४) **महाधर्मकथी**—इसका अर्थ है कुशल धर्मोपदेशक। धर्मोपदेशक का कार्य है पथभ्रष्टों को सत्पथ दिखाना। जो मिथ्यात्वरूपी अन्धकार में पड़े हुए हैं। उन्हें प्रकाश देना तथा जीवन के उलझे हुए मार्ग को सुलझाना। भगवान महावीर लोक भाषा में विविध प्रकार के दृष्टान्त, युक्ति, कथा, प्रश्नोत्तरों की शैली में मनोवैज्ञानिक रीति से जनता को धर्म का रहस्य समझाया करते थे। उनकी वाणी में ओज, माधुर्य, गांभीर्य, समयज्ञता आदि विशिष्ट गुण थे जो दूसरों की वाणी में संभव नहीं थे। इसलिए उन्हें महाधर्मकथी कहा गया है।

(५) **महानिर्यामक**—इसका अर्थ है महाकर्णधार। संसार एक समुद्र के समान है, जिसमें अनेक प्राणी डूब रहे हैं, भँवर में फँसे हुए हैं। भगवान महावीर उन्हें धर्मरूपी नौका द्वारा पार उतारते हैं। अतः वे महाकर्णधार हैं। कुशल नाविक हैं।

Explanation—In order to attract Sakadalputra, Goshalak narrated special qualities of Mahavir. It is based on reality and not a false hymn—may be the purpose of Goshalak in these words of praise was fulfilment of his selfish interest. Sometimes one has to take the help of truth to grind his axe.

(1) Word **Maha-mahan** has been explained in the commentary of *Sutra* 184. The other four adjectives are discussed in brief as under—

(2) Maha-gope—A cowherd is called 'gope'. He looks after the cows and rears them with a stick in his hand. He allows them to eat green grass, stops them to graze on zigzag path or wild path leading them astray. He protects them from wild ferocious animals. He starts in the morning with them and brings them back to their respective destination in the evening. Thus, he performs the dual responsibility of their protection and rearing them up. The ignorant are here mentioned as cattle or innocent cow. Bhagavan Mahavir is the Maha-gope who protects them and rears them.

(3) Maha-sarthvah—'Sarth' or 'Caravan' is a group of traders who move together to distant places on the land-route or sea-route for the purpose of trade. In those days, the trade-route was very wild. It was not safe from undesirable elements like thieves and robbers. So the traders collectively used to make arrangements for food, safety etc. and then start for trade. The head of the traders was called Sarthvah or Sarthpati. Sarthvah had personal experience of the trade route, he was far-sighted, brave, courageous and expert in ensuring the protection of every member of the caravan.

In *Jnata-dharm-katha Sutra,* there is a mention of Dhanna Sarthvah. Before going out for trade, he made a proclamation in the city that who-so-ever wanted to accompany him for his trade, should reach with his carts etc. and goods to the ship. All the arrangements during the journey shall be the responsibility of the Sarthvah. In case during the journey one finds shortage of money or food, he shall provide the same. Sarthvah had with him many vehicles and carts and had all the arrangements of safety during the journey.

Bhagavan Mahavir also under his leadership, took the worldly beings safely on journey to the place of salvation (*Moksh Nagar*). World has been mentioned as great wilderness. There many travellers lose their way. Sarthvah gives protection to all of them and takes them to the other side and then to the destination. So Bhagavan Mahavir is also described as Sarthvah helping the worldly beings to reach the area of *Moksha*.

(4) Maha-dharm-kathi—It means expert lecturer in scriptures. The duty of spiritual teacher is to show the proper path to those who have gone astray. To those, who are in the darkness of wrong faith, he provides the sunshine and helps in solving the hurdles. Bhagavan Mahavir used to explain in detail the secrets of life in the common language with many types of examples, stories, logic or in question-answer style so that psychologically it reaches the very mind of the recipient. There was force, sweetness, equanimity, solemnity in his words

and his speech was according to the grasping capacity of the listeners. Such qualities were not possible in others. So he was called Maha-dharm-kathi.

(5) Maha-niryamak—It means the great sailor. World is like a great ocean in which many persons are drowning, many are in wilderness unable to find the path to cross it. Bhagavan Mahavir brings them to the shore as a perfect boatman.

गोशालक को भगवान के साथ तत्त्वचर्चा के लिए कहना

२१४. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इय च्छेया जाव इय निउणा, इय नयवादी, इय उवएसलद्धा, इय विण्णाणपत्ता, पभू णं तुब्भे मम धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?"

"नो तिणट्ठे समट्ठे !"

"से केणट्ठेणं, देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ नो खलु पभू तुब्भे ममं धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?"

"सद्दालपुत्ता ! से जहा नामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं जाव निउण सिप्पोवगए एगं महं अयं वा, एलयं वा, सूयरं वा, कुक्कुडं वा, तित्तिरं वा, वट्टयं वा, लावयं वा, कवोयं वा, कविंजलं वा, वायसं वा, सेणयं वा, हत्थंसि वा, पायंसि वा, खुरंसि वा, पुच्छंसि वा, पिच्छंसि वा, सिंगंसि वा, विसाणंसि वा, रोमंसि वा, जहिं जहिं गिण्हइ, तहिं तहिं निच्चलं निप्फंदं धरेइ। एवामेव समणे भगवं महावीरे ममं बहूहिं अट्ठेहिं य हेऊहिं य जाव वागरणेहिं य जहिं जहिं गिण्हइ, तहिं तहिं निप्पट्ठ पसिण-वागरणं करेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ नो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए।"

२१४. इसके पश्चात् श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक से कहा–"देवानुप्रिय ! आप इतने छेक–चतुर, विदग्ध–विद्वान्, अवसर के ज्ञाता, निपुण, नीतिज्ञ तथा सुशिक्षित हो। तो क्या आप मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर के साथ तत्त्वचर्चा कर सकते हो ?"

गोशालक-"नहीं, मैं नहीं कर सकता।"

सकडालपुत्र-"देवानुप्रिय ! कैसे कह रहे हैं आप कि मेरे धर्माचार्य के साथ तत्त्वचर्चा नहीं कर सकते ?"

गोशालक-"सकडालपुत्र ! जैसे कोई तरुण, बलवान्, भाग्यशाली, युवा, नीरोग तथा सुदृढ़ कलाई, हाथ, पैर, पसवाड़े, पीठ के मध्य भाग तथा सुदृढ़ जंघाओं वाला, कला-कौशल का जानकार पुरुष किसी बकरे, मेंढ़े, सूअर, मुर्गे, तीतर, काक और बाज को खुर, पूँछ, पंख, सींग, दाँत, रोमादि जहाँ से भी पकड़ लेता है वहीं से निश्चल (गति शून्य) और निःस्पन्द कर देता है और उसे जरा भी हिलने नहीं देता। इसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर अनेक अर्थों, हेतुओं यावत् व्याकरणों एवं प्रश्नोत्तरों द्वारा जहाँ कहीं से भी मुझे पकड़ते हैं, वहीं मुझे निरुत्तर कर देते हैं। सकडालपुत्र ! इसीलिए मैं कहता हूँ कि तुम्हारे धर्माचार्य भगवान महावीर के साथ तत्त्वचर्चा करने में समर्थ नहीं हूँ।"

ASKING GOSHALAK FOR SPIRITUAL DIALOGUE (WITH MAHAVIR)

214. Thereafter, *Shramanopasak* Sakadalputra said to Mankhaliputra Goshalak—"O the blessed ! You are so much clever **(chhek)**, brave **(vidagdh)**, expert in knowing the situation, intelligent, sound in politics and well-educated. Can you enter in spiritual dialogue with my spiritual teacher, spiritual master, Bhagavan Mahavir ?"

Goshalak replied—"Oh, I cannot do."

Sakadalputra said—"O the blessed ! Why are you saying that you cannot have a spiritual dialogue ?"

Goshalak replied—"Sakadalputra ! When a young, strong, fortunate and healthy person having well-built wrists, hands, feets, shins, back, thighs, expert in physical exercises, catches a he-goat, sheep, pig, cock, quail, crow or eagle from its hoof, tail, wings, horns, teeth, nerves etc. he makes it static and motionless. He does not allow it to move even a little. Same is the case with Bhagavan Mahavir. He with his

different interpretations, reasons, grammatical conations, and question-answer style, makes me unable to reply to his queries whenever he comes across any point in spiritual discussion. So I say that I am not capable for a spiritual dialogue with your spiritual master Bhagavan Mahavir."

२१५. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी-"जम्हा णं, देवाणुप्पिया ! तुब्भे मम धम्मायरियस्स जाव महावीरस्स संतेहिं, तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेह, तम्हा णं अहं तुब्भे पाडिहारिएणं पीढ जाव संथारएणं उवनिमंतेमि। नो चेव णं धम्मोत्ति वा, तवोत्ति वा, तं गच्छह णं तुब्भे मम कुम्भारावणेसु पाडिहारियं पीढ फलग जाव ओगिण्हित्ताणं विहरइ।"

२१५. तब श्रमणोपासक सकडालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक से कहा-"देवानुप्रिय ! चूँकि आप मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर का सत्य, तथ्य-यथार्थ तथा सद्भूत भावों से गुण कीर्तन कर रहे हैं इसलिए मैं आपको प्रातिहारिक, पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक के लिए आमंत्रित करता हूँ; यद्यपि मैं इसमें धर्म और तप नहीं मानता। तथापि आप मेरे कुम्भकारापण जाकर पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि ग्रहण करके सुखपूर्वक निवास करें।"

215. Then, *Shramanopasak* Sakadalputra said to Mankhaliputra Goshalak—"O the blessed ! Since you have praised my spiritual master with a true, factual and proper inclination, I offer you articles of your use viz. wooden plank, bed, place for stay and straw bedding. Although I do not believe it to be a spiritual act or an austerity, you are welcome to my pot-factory to accept the plank, stool, place of stay and the straw bedding and stay there in peace."

२१६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कुम्भारावणेसु पाडिहारियं पीढ जाव ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

२१६. मंखलिपुत्र गोशालक ने श्रमणोपासक सकडालपुत्र के वचन सुने तथा तदनुसार उसके कार्यशालाओं से प्रातिहारिक रूप में पीठ, फलक आदि ग्रहण कर लिया।

216. Mankhaliputra Goshalak listened to Sakadalputra and accordingly accepted the stool, the bed etc. from his factories.

२१७. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते पोलासपुराओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

२१७. जब मंखलिपुत्र गोशालक अनेक प्रकार की आख्यापनाओं–सामान्य कथनों से, प्रज्ञापनाओं–विविध तर्क-वितर्कों से, संज्ञापनाओं–प्रतिबोधों तथा विज्ञापनाओं–मन के अनुकूल वचनों से, श्रमणोपासक सकडालपुत्र को निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, चंचल, क्षुब्ध–शंकित और विरुद्ध न कर सका। तब श्रान्त (निराश) खिन्न और अत्यन्त दुःखी होकर पोलासपुर नगर से बाहर प्रस्थान कर गया और अन्य जनपदों में विहार करने लगा।

217. When Mankhaliputra Goshalak could not succeed in making Sakadalputra shaky in the principles of *Nirgranth (Nirgranth Pravachan),* dejected, sceptical and discarder of the said faith by his logic, arguments, detailed lectures, interesting discussion he felt disgusted and extremely dejected. He then left Polaspur for other places.

देव द्वारा उपसर्ग

२१८. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील. जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स पुव्वरत्ताऽवरत्तकाले जाव पोसह ल ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

२१८. इस प्रकार बहुत से शील यावत् व्रत नियम आदि के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए श्रमणोपासक सकडालपुत्र को चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। जब पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था तब एकदा आधी रात के समय वह पौषधशाला में श्रमण भगवान

महावीर के पास अंगीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति के अनुसार धर्म की आराधना कर रहा था।

TURBULATIONS OF THE DEMON-GOD

218. Thus observing many restraints and following the partial vows and supporting vows, Sakadalputra spent fourteen years. When the fifteenth year was in progress, he was engaged in spiritual meditation in *Paushadhshala* strictly as prescribed by Bhagavan Mahavir.

२१९. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्ताऽवरत्तकाले एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

२१९. एकदा अर्धरात्रि के समय में उस सकडालपुत्र के निकट एक देव प्रकट हुआ।

219. One day at mid-night a demon-god appeared before him.

२२०. तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी–(जहा चुलणीपियस्स तहेव देवो उवसग्गं करेइ। नवरं एक्केक्के पुत्ते नव मंससोल्लए करेइ) जाव कणीयसं घाएइ, घाइत्ता जाव आयंचइ।

२२०. उस देव ने हाथ में नीलकमल के समान प्रभा वाली एक बड़ी तीक्ष्ण तलवार लेकर श्रमणोपासक सकडालपुत्र से कहा, उसी प्रकार उपसर्ग किया जिस प्रकार चूलनीपिता के साथ किया था। सकडालपुत्र के बड़े मँझले व छोटे पुत्र की हत्या की, तथा उसी प्रकार माँस व रक्त के छींटे दिये। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ देव ने एक-एक पुत्र के शरीर के नौ-नौ खंड–टुकड़े किये।

220. That demon-god had a long sharp sword shining like blue lotus. He addressed *Shramanopasak* Sakadalputra the same way as had happened with Chulanipita. He murdered the eldest, middle and the youngest son of Sakadalputra and sprinkled meat and blood on him. The only difference is that in the present case the demon-god cut the bodies into nine pieces each.

२२१. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए अभीए जाव विहरइ।

२२१. ऐसा सुनकर भी श्रमणोपासक सकडालपुत्र निर्भीकतापूर्वक धर्मध्यान में स्थिर रहा।

221. At this threat of the demon-god Sakadalputra remained unaffected in his spiritual meditation.

२२२. तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता चउत्थंपि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी-"हंभो सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! अपत्थियपत्थया ! जाव न भंजसि तओ जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुह-दुक्ख-सहाइया, तं ते साओ गिहाओ नीणेमि, नीणित्ता तव अग्गओ घाएमि, घाइत्ता नव मंस-सोल्लए करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएणं य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट जाव ववरोविज्जसि।"

२२२. तब देव ने सकडालपुत्र को निर्भय यावत् समाधि भाव में स्थिर देखा तो चौथी बार धमकी देते हुए बोला-"अरे श्रमणोपसक सकडालपुत्र ! मृत्यु को चाहने वाले ! यदि तू अपने शीलादि व्रतों को भंग नहीं करेगा तो तेरी अग्निमित्रा भार्या को जोकि तेरी धर्म-सहायिका-धर्म में सहायता देने वाली है, धर्म की वैद्य (अर्थात् वैद्य जिस प्रकार रोगों से रक्षा करता है उसी प्रकार वह तुम्हारे धर्म-जीवन को सुरक्षित रखने वाली) है, धर्म के अनुराग में रँगी हुई तथा दुःख-सुख में तेरी सहायक है, मैं उसे तेरे घर से लाऊँगा, तेरे सामने मारकर नौ टुकड़े करूँगा। उबलते तेल भरे कड़ाहे में तलूँगा। उसके खून एवं माँस से तेरे शरीर पर छींटे दूँगा, जिससे तू चिन्तित, दुःखी तथा विवश होकर आर्त्तध्यान करता हुआ असमय में ही प्राणों से हाथ धो बैठेगा।"

222. When the demon-god saw Sakadalputra unaffected and fine in equanimity, he threatened the fourth time and said—"O *Shramanopasak* Sakadalputra ! Desirous of death ! If you do not abandon your partial vows and supporting vows I shall take away your wife Agnimitra who co-operates with you in spiritual practices, who protects you from any weakness in performance of spiritual activities just as a

doctor cures the diseases, who is well imbibed in spiritual faith, and who is helpful to you in both-happiness and pain. I shall kill her in you presence, cut her into nine pieces fry her in boiling oil and sprinkle her meat and blood on you. You shall then feel dejected, morose and helpless and shall die an untimely death in sad thoughts.

२२३. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

२२३. देव द्वारा इस प्रकार कहने पर भी सकडालपुत्र श्रमणोपासक भयमुक्त रहकर धर्मध्यान में स्थिर रहा।

223. Even at this threat of the demon-god, Sakadalputra remained unaffected and firm in spiritual meditation.

२२४. तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-"हंभो सद्दालपुत्ता ! समणोवासया !" तं चेव भणइ।

२२४. तब उस देव ने सकडालपुत्र को दूसरी तथा तीसरी बार पुनः वैसा ही कहा।

224. Then, Sakadalputra repeated the same threat twice and thrice.

२२५. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयं अज्झत्थिए समुप्पन्ने ४ एवं जहा चुलणीपिया, तहेव चिंतेइ। "जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं, जेणं ममं मज्झिमयं पुत्तं, जेणं ममं कणीयसं पुत्तं जाव आयंचइ, जावि य णं ममं इमा अग्गिमित्ता भारिया समसुहदुक्ख-सहाइया, तंपि य इच्छइ, साओ गिहाओ नीणित्ता ममं अग्गओ घाएत्तए। तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्ति" कट्टु उद्धाइए। (जहा चुलणीपिया तहेव सव्वं भाणियव्वं) नवरं अग्गिमित्ता भारिया कोलाहलं सुणित्ता भणइ। सेसं जहा चुलणीपिया वत्तव्वया, नवरं अरुणभूए विमाणे उववन्ने। जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं सत्तमं सद्दालपुत्तमज्झयणं समत्तं ॥

२२५. उस देव द्वारा पुनः दूसरी बार, तीसरी बार वैसा ही कहने पर श्रमणोपासक सकडालपुत्र के मन में विचार आया, चिन्तन उठा कि 'इस अनार्य पुरुष ने मेरे ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ पुत्र को मार डाला है। उनके टुकड़े-टुकड़े किए और मेरे शरीर पर उनके रुधिर और माँस से छींटे दिए। वह अब मेरी पत्नी अग्निमित्रा को जो सुख-दुःख एवं धर्म-कार्यों में सहायक है, उसे घर से लाकर मेरे सामने मारना चाहता है तो मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं इसे पकड़ लूँ।' यों विचार करके वह पकड़ने दौड़ा। इस प्रकार आगे का वृत्तान्त चूलनीपिता के समान समझना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि कोलाहल सुनकर चूलनीपिता की माता आई थी और यहाँ पत्नी अग्निमित्रा आई। सकडालपुत्र भी अन्त में आयुष्य पूर्ण करके अरुणभूत विमान में उत्पन्न हुआ और महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा।

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का सप्तम सकडालपुत्र अध्ययन समाप्त ॥

225. At the repeated threats of the demon-god, the demon-god thought that 'this wretched person has killed my eldest, middle and youngest son. He cut them into pieces and sprinkled their meat and blood on me. He now wants to bring my wife from my house and kill her in my presence. My wife Agnimitra co-operates with me in days of prosperity and adversity, she is helpful in my spiritual practices. It is, therefore, proper for me to catch hold of him.' He then immediately ran to catch the demon-god. Further description may be considered same as had been in case of Chulanipita with the only difference, that mother had came on hearing shrieks of Chulanipita but here his wife Agnimitra came. Sakadalputra in the end after completing the span of life was re-born in Arunbhoot Viman. He shall attain salvation from Mahavideh area.

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अग्निमित्रा के लिए प्रयुक्त चार विशेषण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। पति के प्रति पत्नी के उस उत्तरदायित्व का सूचन करते हैं जो वास्तव में ही नारी के आदर्श चरित्र के आवश्यक गुण हैं–

(१) **धम्मसहाइया**—पत्नी पति के सांसारिक भोग-विलास सुखों में तो सहभागिता करती है परन्तु वह पति को धार्मिक कार्यों और उसके कर्त्तव्यों का पालन कराने में भी उसी प्रकार सहायता करती है। प्रत्येक धार्मिक क्रिया के संपादन में केवल प्रेरणा–प्रोत्साहन ही नहीं, हर प्रकार की सहायता भी करती है।

(२) **धम्मबिइज्जिया**—इसका संस्कृत रूप है धर्म-वैद्या। पत्नी के लिए यह विशेषण अनूठा है। वैद्य जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने व रोग होने पर चिकित्सा करने में कुशल होता है, उसी प्रकार पत्नी धार्मिक जीवन में शिथिलता (रुग्णता), कुंठा, अस्वस्थता, धर्म के प्रति अनुत्साह, धर्म की बात अप्रिय लगने (पीड़ा) पर पति की मानसिक व्याधि मिटाने में भी कुशल वैद्य की भूमिका निभाती है।

(३) **धम्माणुरागरत्ता**—धर्म के रंग में रँगी हुई। पति को केवल प्रेरणा व सहायता ही नहीं देती अपितु स्वयं भी उसके साथ धर्मानुष्ठान करती है।

(४) **सम-सुहदुक्ख सहाइया**—पति के साथ दुःख में बराबर की भागीदारी रखती है। उसका दुःख बँटाने तथा सुख के समय हर प्रकार में साथ रहती है।

इन विशेषणों में नारी का वह आदर्श रूप झलकता है, जिसके प्रति प्रत्येक पति के मन में गौरव, सम्मान और आत्मीयता भाव रहता है।

Explanation—In the present *Sutra* the four adjectives for Agnimitra are very important. These adjectives indicate the duties of a wife towards her husband. In fact they are necessary qualities of a woman of (ideal) exemplary character—

(1) Dhamma-Sahaiya—A wife shares worldly comforts and pleasures with her husband. She also co-operates with her husband in performance of spiritual practices and religious duties. She not only inspires in proper performance of every spiritual act but actively helps him therein.

(2) Dhamma-Bi-ijjia—The Sanskrit transliteration is Dharm Vaidya—It is a unique adjective for a housewife. Just as a doctor is expert in keeping his patient physically fit and in curing him whenever he is ill, the wife is expert in removing weakness, lethargy unhealthiness, dejection and indifference of her husband in religious faith whenever she notices the same.

(3) Dammanu-ragaratta—Well versed in spirituality. She not only inspires and co-operates with her husband in spiritual practices, but also follows the practices alongwith.

(4) Sam-Suh-Dukkh-Sahaiya—To share equally happiness and sorrow with her husband. She constantly accompanies him sharing his troubles and also in days of happiness.

These qualities indicate the ideal state of a wife for which her husband always feels a sense of pride, honour and oneness.

● **SEVENTH CHAPTER CONCLUDED** ●

महाशतक : अष्टम अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ राजगृह उत्तर भारत का सुप्रसिद्ध नगर था। राजा श्रेणिक जो बिम्बिसार नाम से भी प्रसिद्ध है, वहाँ का शासक था। राजगृह में महाशतक नामक गाथापति निवास करता था। धन, सम्पत्ति, वैभव, प्रभाव, मान-सम्मान आदि में नगर में उसका बहुत ऊँचा स्थान था। आठ करोड़ कांस्य-पात्र परिमित स्वर्ण-मुद्राएँ सुरक्षित धन के रूप में उसके निधान में थीं, उतनी ही स्वर्ण-मुद्राएँ व्यापार में लगी थीं और उतनी ही घर के वैभव, साज-सामान और उपकरणों में लगी थीं।

✦ पिछले सात अध्ययनों में श्रमणोपासकों की सम्पत्ति का परिमाण मुद्राओं की संख्या के रूप में बताया है, महाशतक की सम्पत्ति का विस्तार स्वर्ण-मुद्राओं से भरे हुए कांस्य-पात्रों की गणना के रूप में वर्णित हुआ है। कांस्य-पात्र का अर्थ है कांसी का पात्र। इस पात्र में भरकर धन का मान किया जाता था। गाथापति महाशतक के पास इतनी अधिक सम्पत्ति थी कि उसकी गिनती संख्या में नहीं की जाती थी। अतः स्वर्ण-मुद्राओं से भरे पात्र को एक इकाई मानकर उसकी सम्पत्ति का परिमाण बताया गया है। जिनके पास विपुल सम्पत्ति होती–इतनी होती कि मुद्राएँ गिनने में भी श्रम माना जाता हो, वहाँ मुद्राओं की गिनती न कर मुद्राओं से भरे पात्रों की गिनती की जाती थी। महाशतक ऐसी ही विपुल, विशाल सम्पत्ति का स्वामी था। उसके यहाँ दस-दस हजार गायों के आठ गोकुल थे।

✦ उस युग में बहु-विवाह की प्रथा भी बड़े और सम्पन्न लोगों में प्रचलित थी। सांसारिक विषय-सुख के साथ-साथ संभवतः उसमें बड़प्पन के प्रदर्शन का भी भाव रहा हो। महाशतक के तेरह पत्नियाँ थीं, जिनमें रेवती प्रमुख थी। महाशतक की पत्नियाँ भी बड़े घरों की थीं। रेवती को उसके पीहर से आठ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ और दस-दस हजार गायों के आठ गोकुल–व्यक्तिगत सम्पत्ति–प्रीतिदान के रूप में मिली थीं। शेष बारह पत्नियों को अपने-अपने पीहर से एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ और दस-दस हजार गायों का एक-एक गोकुल व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में प्राप्त था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों बड़े लोग अपनी पुत्रियों को विशेष रूप में ऐसी सम्पत्ति देते थे, जो तब की सामाजिक परम्परा के अनुसार उनकी पुत्रियों के अपने अधिकार में रहती। इससे उन बड़े घर की पुत्रियों का अपने ससुराल में प्रभाव और रौब भी रहता। आर्थिक दृष्टि से वे स्वावलम्बी भी होतीं।

✦ एक समय, श्रमण भगवान महावीर राजगृह में पधारे। महाशतक भी अन्य लोगों की तरह भगवान महावीर के दर्शन करने पहुँचा, उपदेश सुना, आत्म-प्रेरणा जगी, आनन्द की तरह उसने भी श्रावक व्रत स्वीकार किए।

✦ महाशतक की प्रमुख पत्नी रेवती व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में भी बहुत धनाढ्य थी, पर उसके मन में अर्थ और भोग की अदम्य लालसा थी। एक बार आधी रात के समय उसके मन में विचार आया कि 'यदि मैं अपनी बारह सौतों की हत्या कर दूँ तो सहज ही उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर मेरा अधिकार हो जाय और महाशतक के साथ मैं एकाकिनी मनुष्य-जीवन का विपुल विषय-सुख भोगती रहूँ।' उसने किसी तरह अपनी इस दुर्लालसा को पूरा कर लिया। अपनी सौतों को मरवा डाला। जिसमें अर्थ और भोग की इतनी घृणित लिप्सा होती है, वैसे क्रूर जीवन में और भी दुर्व्यसन होते हैं। रेवती माँस और मदिरा में लोलुप और आसक्त रहती थी। रेवती माँस में इतनी आसक्त थी कि उसके बिना वह रह नहीं पाती थी।

✦ एक बार राजगृह में राजा की ओर से अमारि-घोषणा करा दी गई। प्राणि-वध निषिद्ध हो गया। रेवती के लिए बड़ी कठिनाई हुई। पर उसने एक मार्ग खोज निकाला। अपने पीहर से प्राप्त नौकरों के द्वारा उसने अपने पीहर के गोकुलों से प्रतिदिन दो-दो बछड़े मारकर लाने की व्यवस्था की। गुप्त रूप से ऐसा चलने लगा।

✦ श्रमणोपासक महाशतक का जीवन दूसरी ओर बढ़ता जा रहा था। वह व्रतों की उपासना, आराधना में आगे से आगे बढ़ रहा था। ऐसा करते चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। उसने अपना कौटुम्बिक और सामाजिक उत्तरदायित्व अपने बड़े पुत्र को सौंप दिया। स्वयं पौषध, ब्रह्मचर्य आदि की आराधना में अधिकाधिक निरत रहने लगा। रेवती को यह बहुत अखरने लगा।

✦ एक दिन की बात है, महाशतक पौषधशाला में धर्मोपासना कर रहा था। शराब के नशे में उन्मत्त बनी रेवती लड़खड़ाती हुई, अपने बाल बिखेरे पौषधशाला में आई। उसने श्रमणोपासक महाशतक को धर्मोपासना से डिगाने की चेष्टा की। बार-बार कामोद्दीपक हाव-भाव दिखाए।

✦ महाशतक सचमुच आत्म-बल का अप्रतिम धनी था। कामोद्दीपक चेष्टाएँ उसको जरा भी विचलित नहीं कर पाईं। वह धर्मध्यान में तल्लीन बना रहा।

✦ महाशतक ने क्रमशः ग्यारह प्रतिमाओं की सम्यक् रूप में आराधना की। उग्र तपश्चरण एवं धर्मानुष्ठान के कारण उसका शरीर बहुत कृश हो गया। उसने सोचा-'अब इस अवशेष जीवन का उपयोग साधना में ही करना चाहिए।' तदनुसार उसने मारणान्तिक संलेखना, आमरण अनशन स्वीकार किया। अत्यन्त शुभ अध्यवसायों में उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ।

✦ उधर, रेवती वासना की भीषण ज्वाला में जल रही थी। उससे रहा नहीं गया। वह फिर श्रमणोपासक महाशतक को व्रत से च्युत करने हेतु चल पड़ी। पौषधशाला में आई। बड़ा आश्चर्य है, माँस और मदिरा में लोलुप व्यसनी, पापी मनुष्यों का विवेक नष्ट हो जाता है। वे नीचे से नीचे गिरते जाते हैं। घोर से घोर पाप कार्यों में फँसते जाते हैं।

✦ रेवती एक कुलांगना थी, सम्माननीय गाथापति की पत्नी थी। पर, दुर्व्यसनों में फँसकर वह धर्म, प्रतिष्ठा, कुलीनता सब भूल जाती है और निर्लज्ज भाव से अपने साधक पति को व्रत से भ्रष्ट करना चाहती है।

✦ रेवती के द्वारा बार-बार ऐसा निर्लज्ज व्यवहार करने पर श्रमणोपासक महाशतक, जो अब तक शान्त था, आत्मस्थ था, कुछ क्षुब्ध हुआ। उसने अवधिज्ञान द्वारा रेवती का भविष्य देखा और बोला-"रेवती ! तुम सात रात के अन्दर भयानक अलसक रोग से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःख, व्यथा, वेदना और क्लेश भोगती हुई मर जाओगी। मरकर प्रथम नारक भूमि रत्नप्रभा के लोलुपाच्युत नरक में चौरासी हजार वर्ष की आयु वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न होगी। फिर इतने से अल्प जीवन के लिए क्यों ऐसा घोर पापकर्म कर रही हो?"

✦ रेवती ने ज्यों ही यह सुना, उसे साँप सूँघ गया। अब तक वह मदिरा के नशे में और भोग के उन्माद में पागल बनी थी, सहसा उसकी आँखों के आगे मौत की काली छाया नाचने लगी। उल्टे पैरों वह वापस लौट गई। वह सात दिन में भीषण अलसक व्याधि से पीड़ित आर्त्तध्यान और असह्य वेदना भोगती हुई नरकगामिनी हुई।

✦ भगवान महावीर उस समय राजगृह में पधारे। महाशतक के साथ जो कुछ घटित हुआ था, वह सब जानते थे। उन्होंने अपने प्रमुख अन्तेवासी गौतम को यह बतलाया और कहा-"गौतम ! महाशतक से भूल हो गई है। अन्तिम संलेखना और अनशन स्वीकार किये हुए उपासक के लिए सत्य, यथार्थ एवं तथ्य भी यदि अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय और अमनोज्ञ हो, तो कहना कल्पनीय नहीं है। तुम जाकर महाशतक से कहो, वह इसके लिए आलोचना-प्रतिक्रमण करे, प्रायश्चित्त स्वीकार करे।"

✦ गौतम महाशतक के पास आए। भगवान का सन्देश कहा। महाशतक ने सविनय शिरोधार्य किया। आलोचना-प्रायश्चित्त कर वह शुद्ध हुआ।

MAHASHATAK : EIGHTH CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- Rajagriha was a famous city of North India. King Shrenik who was also known as Bimbisar was its ruler. Mahashatak *Gathapati* lived in Rajagriha. He commanded a high position in terms of wealth, property, prosperity influence and respect in Society. He had eighty million *Kansya-patra* measure gold coins in his treasure, an equivalent amount million in trade as well as in household.
- In the earlier seven chapters, the measure of wealth had been that of gold coins. In case of Mahashatak it is based on the number of *Kansya-patra* (bronze bowls) filled with gold coins. With these bowls, the wealth was measured. Mahashatak had so much wealth that it could not be counted in figures. So the bowl filled with coins was considered as a unit of measurement. His wealth has been described in *Kansya-patra* measure. Those who had huge wealth its counting was laborious. The coins were not individually counted but the bronze bowl was considered a measure and filling them with coins, the bowls were counted. Mahashatak was the owner of such a wealth. He had eight *gokuls* of ten thousand cows each.
- There was the practice of polygamy in well-to-do and respectable families at that time. Possibly, alongwith worldly pleasures, it was a factor in depicting ones greatness—Mahashatak had thirteen wives. Revati was the head-wife. Mahashatak's other wives also belonged to respectable well-to-do families. Revati had got eighty million gold coins and eight *gokuls* of ten thousand cows each in her marriage as her *Stri-dhan.* The twelve wives had got ten million gold coins each and one *gokul* each consisting of ten thousand cows in their marriage from their parents. It appears that in those days the parents of rich families used to give their daughter a substantial amount of wealth in marriage. That wealth used to remain in the personal ownership of the women as per the

practice then prevalent. So the daughters of rich families commanded a great influnence and respect in the house of their husband. Economically they were self-dependent.

- Once Bhagavan Mahavir came to Rajagriha. Mahashatak also went to him like others, heard his spiritual discourse. He felt inspired by the lecture and adopted the vows of a householder like Anand.
- His master-wife Revati was individually very rich. She also had a keen desire for wealth and sex. Once at mid-night, she thought that in case she kills the twelve co-wives she shall have full authority over entire property and shall have full sexual satisfaction with Mahashatak. She somehow put her plan in action and got the twelve wives of her husband killed. A person who has such a condemnable keen desire for wealth and sex, she becomes prey to many evils in her abominable life. Revati remained intoxicated in wine and meat. She was so much addicted to it that she could not live without meat and drink.
- Once the king declared that no living being be killed in the state. Revati felt highly perturbed. She thought of a plan. She made arrangements to get killed two calves daily through her servants from the *gokuls* of her parents and bring their meat to her. Secretly it all happened daily.
- *Shramanopasak* Mahashatak on the other hand was going ahead on the path of liberation. He was increasing his restraints, spiritual practices and the firmness in partial vows and supporting vows. He spent fourteen years as follower of householder's vows. He handed over his family and social responsibilities to his eldest son. He, then completely engaged himself in practice of *paushadh, brahamcharya* (complete avoidance of sex and amorous activities). He also increased their frequency. Revati did not like it.
- One day, when Mahashatak was engaged in spiritual practice in the *Paushadhshala,* Revati came there, completely intoxicated with wine, staggering and with scattered hair. She tried her best to

inspire Mahashatak to abandon his religious practices. She made lusty poses again and again.

- Mahashatak was in reality a person of great self-discipline. Revati's sexy attempts and postures could not affect him even slightly. He remained firm in his spiritual meditation.
- Mahashatak accepted eleven *pratimas* of a householder one after the other. His health had become very weak due to austerities and spiritual practices. He thought that 'he should spend remaining part of his life only in spiritual practices.' So he accepted *Samlekhana* and left taking food or water for good. Due to extremely pure mental thoughts he was blessed with super-natural knowledge (*Avadhi Jnan*).
- Revati, however, was dying in hunger for sex. She again came to the *Paushadhshala* to influence Mahashatak for discarding the vows. It is strange that the person addicted to wine and meat, and those engaged constantly in evil habits lose there sense of discrimination. They lower down further and further in their character. They engage themselves in the most dreadful, sinful activities.
- Revati belonged to a respectable family, she was the wife of an influential *Gathapati*. But having been addicted to evil habits, she forgot completely spirituality, respectability, morality and worthiness of the family. She wanted to get her pious hushand discard his vows by her shameless behaviour.
- At the repeated shameless conduct of Revati, *Shramanopasak* Mahashatak who was yet in equanimity and self-discipline felt some what perturbed. He saw the future of Revati with his super-natural knowledge and said—"O Revati ! You shall die in seven days affected by dreadful *Alasak* disease bearing extreme pain and in a fit of extreme restlessness. After death you shall be re-born in Lolupachyut area of the first hell where the hellish being with a life-span of eighty four thousand years are born. So for such a small life-span (that you now have) why are you doing ghastly sins.

- When Revati heard it, she felf extremely dejected. Till then she was mad in the intoxicated state due to wine and meat. Suddenly she saw the darkness of dreadful death dancing before her. She came back. In seven days, she became a prey to dreadful *Alasak* disease, and died in extreme pain and ill thoughts. She was re-born in hell.
- At that time Bhagavan Mahavir came to Rajagriha. He knew all that had happened to Mahashatak. He told it to his chief disciple, Gautam. He further said—"O Gautam ! Mahashatak has committed a mistake. It is not proper for a practitioner of final *Samlekhana* and who has left food and water forever to speak, unfortunate, non-desirable, non-loveable words even if they are true and based on facts. You go to Mahashatak and advise him to repent for it, to take a pledge not to do such an act in future and also to accept penance for the same."
- Gautam came to Mahashatak and conveyed the message of Bhagavan Mahavir to him. Mahashatak accepted it with gratitude. He repented for his words and purified his soul by penance.

महासययं : अट्ठमज्झयणं
महाशतक : अष्टम अध्ययन
MAHASHATAK : EIGHTH CHAPTER

२२६. अट्ठमस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिले चेइए। सेणिए राया।

२२६. यहाँ अष्टम अध्ययन का उपक्षेप इस प्रकार कहना चाहिए।

[आर्य जम्बू ने प्रश्न किया–''भंते ! सिद्धि प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के सातवें अध्ययन का यह भाव कहा है तो आठवें अध्ययन का क्या भाव बताया है ?'']

आर्य सुधर्मा ने उत्तर में कहा–जम्बू ! उस काल, उस समय राजगृह नामक नगर था। गुणशील चैत्य था। वहाँ पर राजा श्रेणिक राज्य करते थे।

226. [Arya Jambu said to Sudharma Swami—"Bhante ! I have heard from you the details about the seventh chapter of *Upasak-dasha* as narrated by Bhagavan Mahavir. Kindly tell me in detail what is in the eighth chapter ?"]

Sudharma replied—Jambu ! At that time during that period, there was a city called Rajagriha. In it there was a temple named Gunasheel. King Shrenik ruled there.

२२७. तत्थ णं रायगिहे महासयए नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे, जहा आणंदो। नवरं अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ निहाणपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ वुड्ढिपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ठ वया दस गोसाहस्सिएणं वएणं।

२२७. राजगृह नगर में महाशतक नामक गाथापति निवास करता था। वह समृद्धि तथा प्रभाव आदि में आनन्द श्रावक के समान था। उसके कांस्य परिमित आठ करोड़

सुवर्ण-मुद्राएँ कोष में, आठ करोड़ व्यापार में और आठ करोड़ घर तथा सामान में लगी हुई थीं। पशु-धन के आठ व्रज थे, जिनमें ८० हजार गायें थीं।

227. Mahashatak *Gathapati* lived in Rajagriha. He was rich and influential like Anand *Shravak.* He had eighty million bronze-bowl measure of gold coins in his treasure, eighty million in trade and eighty million worth household. He also had eight *gokuls* containing eighty thousand cows in all.

२२८. तस्स णं महासयगस्स रेवईपामोक्खाओ तेरस भारियाओ होत्था, अहीण जाव सुरूवाओ।

२२८. उस महाशतक के रेवती आदि तेरह पत्नियाँ थीं। सभी सम्पूर्ण अंगोपांग वाली यावत् रूप में सुन्दर थीं।

228. He had thirteen wives including Revati. All of his wives were well-built and beautiful.

२२९. तस्स णं महासयगस्स रेवईए भारियाए कोलघरियाओ अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था। अवसेसाणं दुवालसण्हं भारियाणं कोलघरिया एगमेगा हिरण्णकोडी एगमेगे य वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

२२९. महाशतक की पत्नी रेवती के पास पितृ-कुल–पीहर से प्राप्त आठ करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ थीं और प्रत्येक में दस हजार गायों वाले आठ गोकुल थे। बाकी बारह पत्नियों में प्रत्येक के पास पितृ-कुल से प्राप्त एक-एक करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ और दस हजार गायों वाला एक-एक व्रज व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में था।

229. Revati, the wife of Mahashatak, had received eighty million gold coins and eight *gokuls* each having ten thousand cows, from her parents. The remaining twelve wives had got one crore gold coins each and one *gokul* of ten thousand cows each in their marriage from their penents.

२३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा निग्गया। जहा आणंदो तहा निग्गच्छइ। तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ। नवरं अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ उच्चारेइ, अट्ठ वया रेवइपामोक्खाहिं तेरसहिं भारियाहिं अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ। सेसं सव्वं तहेव इमं च णं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ–"कल्लाकल्लिं च णं कप्पइ मे बे दोणियाए कंसपाईए हिरण्णभरियाए संववहरित्तए।"

२३०. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगरी में पधारे। परिषद् दर्शनार्थ गई। महाशतक भी आनन्द श्रावक की भाँति भगवान के दर्शन–वन्दन करने निकला और उसी प्रकार उसने भी श्रावक धर्म स्वीकार किया। विशेषता यही है कि उसने कांस्य परिमाण सहित आठ-आठ करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ कोष आदि में रखने की मर्यादा की। रेवती आदि तेरह पत्नियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से मैथुन सेवन का परित्याग किया। उसने बाकी अन्य सब प्रत्याख्यान आनन्द श्रावक के समान लिया। उसने यह एक विशेष मर्यादा रखी कि "मैं प्रतिदिन दो द्रोण सुवर्ण से भरे हुए कांस्य-पात्र द्वारा व्यापारिक लेन-देन करूँगा। इससे अधिक नहीं।"

ACCEPTANCE OF VOWS BY MAHASHATAK

230. At that time, during that period, once Bhagavan Mahavir came to Rajagriha. People came for his *darshan*. Mahashatak also came there like Anand *Shravak* to have his *darshan* and to greet him. He also accepted the vows of the householder. The only difference is that he had eighty million bronze-bowl measure of gold coins in treasure and same in trade and household respectively and took the vows not to transgress that limit. He took the vows to keep thirteen wives to whom he was already married and no more and to have sex only with them. His other vows were identical to those of Anand. His further speciality in acceptance of vows was that he decided that he shall do daily business with only two bronze-bowl measure full of *Dron* gold coins and no more.

विवेचन—प्राचीनकाल में जो माप-तोल प्रचलित थे, उसकी चर्चा अनुयोगद्वारसूत्र में तथा प्राचीन आयुर्वेद ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक है। विद्वानों का मत है कि कांस्य या कांस्य-पात्र माप का एक प्रचलित प्रकार यह था–जिस पात्र में चार सेर तोल की सामग्री समा सके वैसा पात्र कांस्य-पात्र कहा जाता था। दूसरा कांस्य-पात्र दो द्रोण के माप का भी होता था। इसी सूत्र में महाशतक दो द्रोण परिमाण कांस्य परिमित स्वर्ण-मुद्राओं का प्रतिदिन लेन-देन करने की मर्यादा करता है। दो द्रोण का अर्थ होता है ६४ तोले के सेर के हिसाब से जिसमें ३२ सेर तोल की वस्तुएँ समा सकें। उसे शूर्प या कुंभ भी कहा जाता है। इस व्याख्या से पता चलता है कि उसका कांस्य-पात्र लगभग ३२ सेर का एक माप हो सकता है।

Explanation—The prevalent weights and measure of that period have been discussed in detail in *Anuyog dvar Sutra* and in Ayurvedic literature of ancient times. It is the view of the learned that the prevalent bronze-measure (*Kansya* or *Kansya-patra* measure) was such that could contain substance weighing upto four *Ser* (an old measure : 1 *Ser* = 80 *Tolas*; 40 *Ser* = 37 Kilograms). Another bronze-vessel was of two *Dron* measure. According to this *Sutra,* Mahashatak was doing daily trade upto a limit of two *Dron* measure. Two *Dron* measure means a vessel that could contain things of 32 *Ser* weight where one *Ser* is equal to 80 *Tolas.* It was also called *shoorp* or *kumbh.* This commentary indicates that the bronze-vessel was approximately a thitry two *Ser* measure.

२३१. तए णं से महासयए समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।

२३१. महाशतक जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर चुका था और वह श्रमणोपासक होकर धार्मिक जीवन बिताने लगा।

231. Mahashatak had received sufficient knowledge about living and non-living being. He had started his life as a *Shramanopasak.*

२३२. तए णं समणे भगवं महावीरे बहिया जणवयविहारं विहरइ।

२३२. तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर अन्य जनपदों में विहार कर गये।

232. Later Bhagavan Mahavir left for other areas.

रेवती की क्रूर अभिलाषा

२३३. तए णं तीसे रेवईए गाहावइणीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्ब. जाव इमेयारूवे अज्झत्थिए—"एवं खलु अहं इमासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं विघाएणं नो संचाएमि महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए। तं सेयं खलु मम एयाओ दुवालसवि सवत्तियाओ अग्गिप्पओगेणं वा, विसप्पओगेणं वा जीवियाओ ववरोवित्ता एयासिं एगमेगं हिरण्णकोडिं, एगमेगं वयं सयमेव उवसंपज्जित्ता णं महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं जाव विहरित्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतराणि य, छिद्दाणि य, विवराणि य पडिजागरमाणी विहरइ।

२३३. किसी एक समय रेवती गाथापत्नी अर्धरात्रि के समय पारिवारिक विषयों की चिन्ता में जग रही थी, उस समय उसके मन में यह विचार आया–'मैं इन अपनी बारह सौतों के विघ्न के कारण अपने पति महाशतक श्रमणोपासक के साथ इच्छानुसार मनुष्य-जीवन सम्बन्धी काम-भोग नहीं भोग सकती। अच्छा होगा कि इन सौतों को अग्नि-प्रयोग, शस्त्र-प्रयोग या विष-प्रयोग द्वारा मार डालूँ। प्रत्येक की एक-एक करोड़ सुवर्ण-मुद्रा रूप सम्पत्ति तथा गोकुलों पर अपना अधिकार जमा लूँ और महाशतक के साथ स्वेच्छानुसार काम-भोगों का आनन्द उठाती रहूँ।' यह सोचकर वह उनको मारने के लिए अनुकूल अवसर, सूनापन, एकान्त स्थान या गुप्त भेदों की टोह में रहने लगी।

DREADFUL AMBITION OF REVATI

233. Once Ravati was awake at mid-night brooding about family matters. She thought—'In view of the presence of twelve other wives, I am not able to spend my life according to my inner desire with my hushand Mahashatak nor have complete sex fulfilment. It would be better for me if I kill them by means of fire, weapons or poison. I shall have full authority on their wealth of ten million gold coins each and their *gokuls*. I shall also enjoy life to my full satisfaction with Mahashatak.' Having planned in this fashion, she was always on the look out for proper occasion, solitude and secret lonely place to put her plans into action.

रेवती द्वारा सपत्नियों की हत्या

२३४. तए णं सा रेवई गाहावइणी अन्नया कयाइ तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतरं जाणित्ता छ सवत्तीओ सत्थप्पओगेणं उद्दवेइ, उद्दवेत्ता छ सवत्तीओ विसप्पओगेणं उद्दवेइ, उद्दवेत्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं कोलघरियं एगमेगं हिरण्णकोडिं, एगमेगं वयं सयमेव पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं भोगभोगइं भुंजमाणी विहरइ।

२३४. एक दिन रेवती को अपनी बारह सपत्नियों की गुप्त हत्या करने का अनुकूल अवसर मिल गया। उनमें से छह को शस्त्र द्वारा और छह को विष देकर मार डाला। यों उनको मारकर उनकी सुवर्ण-मुद्राओं और गोकुलों को अपने अधिकार में कर लिया तथा महाशतक के साथ सुख भोगने लगी।

MURDER OF CO-WIVES BY REVATI

234. One day, she got the proper opportunity of killing her companions (wives of Mahashatak). She killed six of them with weapon and six with poison. She then got control over their gold coins and *gokuls* and started living to her full satisfaction with Mahashatak.

२३५. तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया, गिद्धा, गढिया, अज्झोववन्ना बहुविहेहिं मंसेहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च मज्जं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणी (विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी) विहरइ।

२३५. तब वह रेवती गाथापत्नी स्वच्छन्द होकर माँस तथा मदिरा में आसक्त रहने लगी। शूलक, घी आदि में तले हुए, भुने हुए तथा अन्य प्रकार के माँसों के साथ सुरा, मधु, मेरक, मद्य, सीधु, प्रसन्ना तथा अन्य प्रकार की मदिराओं का (आस्वादन करती, मजा लेती, छककर) सेवन करती रहती थी।

235. Now she became totally free and independent. She remained always intoxicated with wine and meat. She was having baked, roasted and otherwise prepared meat products with wine of various types such as *Sura, Madhu, Merak, Madya, Seedhu, Prasanna* etc.

विशेष शब्दों के अर्थ–शूलक–लोहे की सलाख पर सेके हुए माँस के खण्ड तथा सुरा आदि विविध प्रकार की मदिरा। जैसे–

सुरा–जो शालि व साठीधान की पीठी से तैयार होती है।

मधु–मद्य–जिसमें अन्य वस्तुओं के साथ मधु–शहद का मिश्रण होता है।

मेरक–इसे मैरेय भी कहते हैं। यह सुरा, आसव तथा मधु तीनों के मिश्रण से बनती है।

मद्य–द्राक्षा, अंगूर या मुनक्का से तैयार की जाती है।

सीधु–ईख के रस से तैयार की जाती है।

प्रसन्ना–सुरा का ऊपर का निथरा हुआ स्वच्छ भाग।

Meaning of Technical Terms—Shoolak—Meat roasted on an iron needle.

Sura—Wine prepared with paddy or the paste of a type of paddy (*Sathi-dhan*).

Madhu—Wine mixed with other things including honey.

Merak—It is also called Maireya. It is a mixture of *Sura, Aasav* and *Madhu.*

Madya—Wine prepared with grapes, dry grapes etc.

Sedhu—Wine prepared with molasses, the sugar cane juice.

Prasanna—The upper layer of *Sura.*

राजगृह में अमारि घोषणा

२३६. तए णं रायगिहे नयरे अन्नया कयाइ अमाघाए घुट्ठे यावि होत्था।

२३६. एक बार राजगृह नगर में अमाघात–अमारि अर्थात् प्राणि-हिंसा न करने की घोषणा हुई।

DECLARATION OF AMNESTY IN RAJAGRIHA

236. Once it was proclaimed in Rajagriha that *Amaghat—Amari* shall be observed. No violence to the living being shall be done.

२३७. तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया ४ कोलघरिए पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-"तुब्भे देवाणुप्पिया ! मम कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे दुवे गोणपोयए उद्दवेह, उद्दवित्ता ममं उवणेह।"

२३७. रेवती तो माँस खाने की लोलुप और अत्यन्त आसक्त थी। उसने अपने पितृगृह के-पीहर के नौकरों को बुलाकर कहा-"तुम मेरे लिए पीहर के व्रजों में से दो गोपोतक-गाय के बछड़े मारकर प्रतिदिन लाकर दिया करो।"

237. Revati was addicted to meat and keenly desired it. She called the servants of her parents and asked them to kill two calves daily from the *gokuls* of her parents and bring their meat for her.

२३८. तए णं ते कोलघरिया पुरिसा रेवईए गाहावइणीए 'तहत्ति' एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता रेवईए गाहावइणीए कोलघरएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे दुवे गोणपोयए वहेंति, वहित्ता रेवईए गाहावइणीए उवणेंति।

२३८. तब पीहर के नौकरों ने रेवती के इस कथन को 'जैसी आज्ञा' कहकर नम्रतापूर्वक स्वीकार किया और पीहर के गोकुल से प्रतिदिन गाय के दो बछड़ों को मारकर लाने लगे।

238. The servants of her parents accepted her orders with a sense of respect. They started bringing daily two calves from her parents, *gokuls* after killing them.

२३९. तए णं सा रेवई गाहावइणी तेहिं मंसेहिं सोल्लेहि य ४ सुरं च ६ आसाएमाणी ४ विहरइ।

२३९. तब वह रेवती उनके (बछड़ों के) माँस को शूलक आदि बनाकर खाने लगी और विविध प्रकार की मदिरा पीने में आसक्त रहने लगी।

239. Revati, then, prepared *Shoolak* etc. from the meat of those calves and included it in her food. She remained intoxicated with various types of wines.

२४०. तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता। एवं तहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ, जाव पोसहसालाए धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

२४०. इधर विविध प्रकार के व्रत-नियमों का पालन करते हुए तथा धर्म द्वारा आत्मा को संस्कारित करते हुए महाशतक श्रमणोपासक को चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। उसने भी आनन्द आदि की भाँति अपने ज्येष्ठ पुत्र को व्यापार व कुटुम्ब का भार सौंप दिया और स्वयं पौषधशाला में रहकर धर्मानुष्ठान करने लगा।

SPIRITUAL PRACTICES BY MAHASHATAK IN THE PAUSHADHSHALA

240. Mahashatak spent fourteen years observing his restraints and strictly following the vows accepted by him. He remained engaged in spiritual practices to train his self accordingly. He also handed over his trade and family responsibilities to his eldest son and started his religious practices in the *Paushadhshala*.

२४१. तए णं सा रेवई गाहावइणी मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकड्ढेमाणी २ जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोहुम्मायजणणाइं सिंगारियाइं इत्थिभावाइं उवदंसेमाणी २ महासययं समणोवासयं एवं वयासी-"हंभो महासयय ! समणोवासया ! धम्मकामया ! पुण्णकामया ! सग्गकामया ! मोक्खकामया ! धम्मकंखिया ! ४, धम्मपिवासिया ४, किण्णं तुब्भं देवाणुप्पिया ! धम्मेण वा, पुण्णेण वा, सग्गेण वा, मोक्खेण वा जण्णं तुमं मए सद्धिं उरालाइं जाव भुंजमाणे नो विहरसि ?"

२४१. एक दिन रेवती माँस तथा मदिरा में आसक्त और काम-वासना से उन्मत्त होकर विक्षिप्त-सी लड़खड़ाती हुई पौषधशाला में धर्माराधनारत महाशतक के पास आई। उसके बाल बिखरे हुए थे और साड़ी, ओढ़नी इधर-उधर फेंक रही थी। वहाँ पहुँचकर वह मोह तथा उन्माद पैदा करने वाले कामोद्दीपक हाव-भाव तथा शृंगारिक चेष्टाएँ करती हुई अपने स्त्री शरीर का प्रदर्शन करती हुई श्रमणोपासक महाशतक से बोली-

"देवानुप्रिय ! महाशतक ! तुम मेरे साथ मनमाने भोगों का आनन्द ले रहे थे। उन्हें छोड़कर यहाँ चले आये और स्वर्ग तथा मोक्ष की कामना करते हो, धर्म और पुण्य का संचय करने में लगे हो, किन्तु स्वर्ग और मोक्ष में इससे बढ़कर क्या सुख मिलेगा? धर्म और पुण्य का इससे बढ़कर और क्या फल होगा? तुम मेरे साथ मनुष्य सम्बन्धी सुखों का भोग क्यों नहीं करते हो?"

241. One day Revati came to Mahashatak in the *Paushadhshala.* She was completely intoxicated and was keen for having sex and was staggering. Her hair were ill-dressed and scattered. She was throwing her *Sari* and head covering hither and thither. After reaching there she started movements and poses that could trigger lust and desire to cling to her body. While doing amorous postures, she was showing her naked body. She said to *Shramanopasak* Mahashatak—"O the blessed ! Mahashatak ! You were having sex with me to your fill. You have left it and come over here. You are desiring heaven and liberation. You are busy in amassing spiritual value and the fruit of good deeds (*Punya*). But there is no better pleasure in heaven and liberation than the pleasure of the present. What more shall be the benefit of spiritual activities and charities etc. than the present enjoyment ? Why don't you have sex with me ?"

२४२. तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणाइ, अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

२४२. श्रमणोपासक महाशतक गाथापति ने रेवती की इन कुचेष्टाओं और बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, कोई आदर नहीं दिया तथा मौन रहकर धर्मानुष्ठान में लगा रहा।

242. *Shramanopasak* Mahashatak *Gathapati* did not pay any attention to such sexy gestures and talk of Revati.

He did not attend to it. He remained silent and busy in his spiritual practices.

२४३. तए णं सा रेवई गाहावइणी महासययं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी–"हंभो" ! तं चेव भणइ, सोवि तहेव जाव अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे विहरइ।

२४३. तब उस रेवती ने महाशतक श्रमणोपासक से दूसरी तथा तीसरी बार भी वही बात कही, किन्तु महाशतक पहले की भाँति आदर नहीं देता हुआ धर्मध्यान में स्थिर रहा।

243. Then Revati repeated her request twice and thrice. But Mahashatak did not consider them and remained steadfast in his meditation.

२४४. तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणी अपरियाणिज्जमाणी जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

२४४. इस प्रकार श्रमणोपासक महाशतक द्वारा आदर नहीं दिये जाने पर रेवती तिरस्कृत एवं अपमानित-सी होकर जिधर से आई थी उधर ही वापस चली गई।

244. Thus commanding no respect and having been insulted and condemned by *Shramanopasak* Mahashatak, Revati went back to the place from where she had come.

महाशतक द्वारा प्रतिमा ग्रहण

२४५. तए णं से महासयए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। पढमं अहासुत्तं जाव एक्कारसऽवि।

२४५. तदन्तर श्रमणोपासक महाशतक ने पहली उपासक प्रतिमा स्वीकार की। यों क्रमशः पहली से लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक सभी श्रावक प्रतिमाओं की शास्त्रोक्त विधिपूर्वक सम्यक् आराधना की।

ACCEPTANCE OF PRATIMAS BY MAHASHATAK

245. Later *Shramanopasak* Mahashatak accepted the first *pratima* of a *Shravak*. Subsequently he accepted the

other *pratimas* one after the other thus all the eleven *pratimas* in their order and observed them strictly according to the procedure prescribed in scriptures.

२४६. तए णं से महासयए समणोवासए तेणं उरालेणं जाव किसे धमणिसंतए जाए।

२४६. उस उग्र तपश्चरण के कारण उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया, इतनी क्षीणता आ गई कि उसकी नस-नस दिखाई देने लगी।

246. His body grew very weak due to the said austerities. He had become so much feeble that even the nerves in his body had became visible.

२४७. तए णं तस्स महासययस्स समणोवासयस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए ४–"एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं" जहा आणंदो तहेव अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणाए झूसियसरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

२४७. एक बार किसी समय अर्धरात्रि के समय धर्म-जागरणा करते हुए महाशतक के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि 'इस उग्र तपश्चरण के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। नसें दिखाई देने लगी हैं। मुझे अब यही उचित है कि अन्तिम मारणान्तिक संलेखना अंगीकार कर लूँ और शुभ विचारों के साथ शरीर का परित्याग करूँ।' यह विचार करके महाशतक ने भी आनन्द आदि के समान अन्तिम संलेखना व्रत ग्रहण किया और जीवन तथा मृत्यु दोनों की आकांक्षा–कामना से रहित होकर आत्म-चिन्तन में लीन रहने लगा।

247. Once at mid-night, while engaged in spiritual practices, he thought—'my body has become very weak due to austerities. My nerves have become visible. It is now proper for me to observe *Maranantik Samlekhana* (avoiding food and water till the last breath) and to leave this physical body with noble thoughts.' Then like Anand he accepted the vows of *Maranantik Samlekhana.* He engaged himself in

self-introspection and self-meditation without desiring further life or death.

महाशतक को अवधिज्ञान

२४८. तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स सुभेणं अज्झवसाणेणं जाव खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पन्ने। पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेत्तं जाणइ पासइ, एवं दक्खिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं जाणइ पासइ, अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीइवास सहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ।

२४८. श्रमणोपासक महाशतक को शुभ अध्यवसायों के कारण उत्तरोत्तर आत्मा की शुद्धि होती गई और अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। इसके परिणामस्वरूप वह पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में लवण समुद्र के भीतर एक-एक हजार योजन तक का क्षेत्र देखने लगा तथा उत्तर दिशा में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत तक देखने लगा। अधोदिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के अन्दर जहाँ जीवों की चौरासी हजार वर्ष की आयु है उस लोलुपाच्युत नरक तक देखने लगा।

SUPER-NATURAL KNOWLEDGE (AVADHI JNAN) TO MAHASHATAK

248. Due to pure thought currents Mahashatak made his soul more and more clean. Then the *Avadhi Jnana* obscuring Karma was removed to a great extent and he obtained super-natural knowledge. As a result thereof, he was able to see the area upto one thousand *Yojan* each in western and southern directions in the *Lavan Samudra* (the salty ocean surrouding Jambu *Dveep*). In the north he could see clearly upto Chull-Hemvant varsh-dhar mountain. Downwards, he could see upto Lolupachyut part of the first hell Ratna-Prabha where the life-span of the hellish beings is 84,000 years.

रेवती का पुनः उपद्रव

२४९. तए णं सा रेवई गाहावइणी अन्नया कयाई मत्ता जाव उत्तरिज्जयं विकड्ढेमाणी २ जेणेव महासयए समणोवासए जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता महासययं तहेव भणइ, जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी–"हंभो !" तहेव।

२४९. फिर एक दिन महाशतक गाथापति की पत्नी रेवती शराब के नशे में उन्मत्त होकर बाल बिखेरे हुए ओढ़नी को नीचे गिराती, फेंकती हुई, जहाँ पौषधशाला में महाशतक श्रावक था, वहाँ उसके पास आई और पहले की भाँति महाशतक से बोलने लगी। दूसरी तथा तीसरी बार उसी प्रकार बोली। (सूत्र २४२ के अनुसार)

REVATI'S SECOND DISTURBANCE

249. Then one day Revati, wife of Mahashatak *Gathapati,* in intoxicated condition, with hair scattered, loosening her dress and allowing it to fall down, came to the *Paushadhshala* where Mahashatak *Shravak* was present. She came to him and spoke to him as before. She repeated her request second time and again the third time.

२५०. तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ४ ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी–"हंभो रेवई ! अपित्थयपत्थिए ४ एवं खलु तुमं अंतो सत्त रत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया समाणी अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट असमाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीइ वाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।"

२५०. अपनी पत्नी रेवती द्वारा दूसरी बार, तीसरी बार यों उन्मत्त आचरण करने पर श्रमणोपासक महाश्रमण को क्रोध आ गया। उसने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर देखा, तो उसने रेवती का भविष्य जाना। तब उसने कहा–"हे रेवती ! तू सात रात के अन्दर अलसक रोग से पीड़ित होकर कष्ट भोगती हुई, आर्त्तध्यान करती हुई मर जायेगी और प्रथम नरक भूमि के लोलुपाच्युत नरक में ८४ हजार वर्ष की आयुष्य वाले, नैरयिक के रूप में उत्पन्न होगी।"

250. At the repeated lascivious behaviour of his wife Revati, *Shramanopasak* Mahashatak got enraged. He saw

in his super-natural knowledge the future of Revati. He then said—"O Revati ! You shall die within seven days, suffering from *Alasak* disease in great pain and ill-thoughts. You shall thereafter be re-born in Lolupachyut hell where the life-span shall be eighty four thousand years as a hellish being."

विवेचन–अलसक आमाशय तथा उदर सम्बन्धी एक अत्यन्त पीड़ाकारी रोग है। आयुर्वेद के अष्टांगहृदय ग्रन्थ में इस रोग के विषय में लिखा है–दुर्बल, मन्द अग्नि वाले मल-मूत्र आदि का वेग रोकने वाले व्यक्ति का वायु विमार्गगामी होकर पित्त और कफ को बिगाड़ देता है। वायु विकृत हो जाने पर खाया हुआ अन्न आमाशय के भीतर ही कफ से गाँठ जैसा रुद्ध होकर अटक जाता है। अलसीभूत अर्थात् गति शून्य हो जाता है, जिससे शूल जैसी चुभन भरी भयंकर पीड़ा उठती है। तीव्र दुःसह शूल उत्पन्न हो जाता है। वमन और शौच अवरुद्ध हो जाने पर अन्न बाहर नहीं निकलता, जिससे भीतर भयंकर पीड़ा होने लगती है। इसकी पीड़ा से आदमी कराहने लगता है, पेट पर आफरा छाया रहता है उस महाभयानक रोग को अलसक कहते हैं।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि रेवती मद्य-माँस का सेवन करती थी और अत्यन्त उग्र काम तृष्णा होने से उसे इस प्रकार का भयंकर रोग उत्पन्न हुआ होगा, इसमें ऐसा नहीं है कि महाशतक ने कोई शाप दिया हो, किन्तु उसने तो अवधिज्ञान का प्रयोग कर जब उसका भविष्य देखा तो उसे इस प्रकार का भयानक रोग होने वाला दीखा और उससे मृत्यु प्राप्त कर नरक गति में जाने वाली जानकर केवल उसका भविष्य बताया। इतने अल्प आयुष्य के लिए इतने घोर दुष्परिणाम का विचार किये बिना ही यह कैसा नृशंस, निर्लज्ज आचरण कर रही है।

Explanation—*Alasak* is an extremely painful disease relating to stomach and gastro-intestinal tract. In *Ayurveda* it has been mentioned in detail in the *Ashtang Hriday*. The wind passing through the body of a weak person with weak digestion, who restrains the natural urge for excretion, reverses its flow and spoils his *pitta* and *kaph* (bodily humours). Due to spoilt wind in the body the consumed food stays in stomach and turns into a hard substance due to *kaph*. It thus obstructs the passage. It becomes Alsibhoot, *i.e.*, it becomes motionless. Then one feels dreadful pinching pain. He then suffers from severe unbearable

pain. The stool and vomiting get choked. So there occurs dreadful pain in the body. The stomach is distended. This dreadly disease is called *Alasak* disease.

Here it is worth consideration that Revati was regularly taking meat and wine. The dreadful disease might have been caused by her extremely deep sex desire. Here it is not a fact that *Mahashatak* caused a spell on her. In fact he made use of his super-natural knowledge. Then saw her future and found that she was going to suffer such a dreadful disease leading to her death. He also through his *Jnan* found that she was going to be re-born in hell. Thus he simply narrated what was going to happen to her in future. He thought why she was behaving in such a shameless manner that was going to lead to an extremely dreadful end when her remaining life-span was so short.

२५१. तए णं सा रेवई गाहावइणी महासएणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणी एवं वयासी–"रुट्ठे णं ममं महासयए समणोवासए, हीणे णं ममं महासयए समणोवासए, अवज्झाया णं अहं महासयएणं समणोवासएणं, न नज्जइ णं, अहं केणवि कुमारेणं मारिज्जिस्सामि" त्ति कट्टु भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ओहय जाव झियाइ।

२५१. श्रमणोपासक महाशतक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर रेवती सोचने लगी। अपने आपसे कहने लगी–'महाशतक मुझ पर रुष्ट हो गया है। मेरे प्रति दुर्भावना ला रहा है। वह मेरा बुरा चाहता है। न मालूम मैं किस बुरी मौत से मारी जाऊँगी।' यह विचार कर वह भयभीत हुई, त्रस्त हुई, उद्विग्न होकर चिन्ता-शोक में डूब गई। वहाँ से निकलकर अपने घर जा पहुँची।

251. At these words of *Shramanopasak* Mahashatak Revati started thinking and said to herself—"Mahashatak has become angry with me. He has evil-thoughts against me. He thinks ill of me. I do not know in what dreadful state I shall die." She thus got frightened, dejected, bewildered and morose. She left that place and came back to her house.

२५२. तए णं सा रेवई गाहावइणी अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्ट-दुहट्ट-वसट्टा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीइ वाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ना।

२५२. तत्पश्चात् रेवती सात रात के भीतर अलसक नामक रोग से पीड़ित हो गई। व्यथित, चिन्तित, दुःखी तथा विवश होती हुई आर्त्तध्यान करती हुई मर गई और लोलुपाच्युत नरक में चौरासी हजार वर्ष की आयु वाले नैरयिक रूप में उत्पन्न हुई।

252. Later, within seven days, Revati got the dreadful *Alasak* disease. She died in ill-thoughts in a painful, morose, sad and helpless state. She was re-born in Lolupachyut hell where her life-span as a hellish being is eighty four thousand years.

२५३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरणं जाव परिसा पडिगया।

२५३. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह में पधारे। समवसरण में विराजमान हुए। परिषद् आई और धर्मदेशना सुनकर वापस चली गई।

253. At that time and during that period, Bhagavan Mahavir came to Rajagriha. A congregation was held. He addressed the congregation and after listening to his spiritual discourse the assembly dispersed.

महावीर द्वारा प्रेरणा सन्देश

२५४. "गोयमा !" इ समणे भगवं महावीरे एवं वयासी-"एवं खलु गोयमा ! इहेव रायगिहे नयरे ममं अंतेवासी महासयए नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणाए झूसियसरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

२५४. श्रमण भगवान महावीर ने गौतम को सम्बोधित कर कहा-"गौतम ! इसी राजगृह नगर में मेरा अन्तेवासी महाशतक श्रमणोपासक पौषधशाला में अन्तिम

(१) रेवती की काम चेष्टा

(३) मृत्यु के भय से व्याकुल रेवती

चित्र परिचय १४

Illustration No. 14
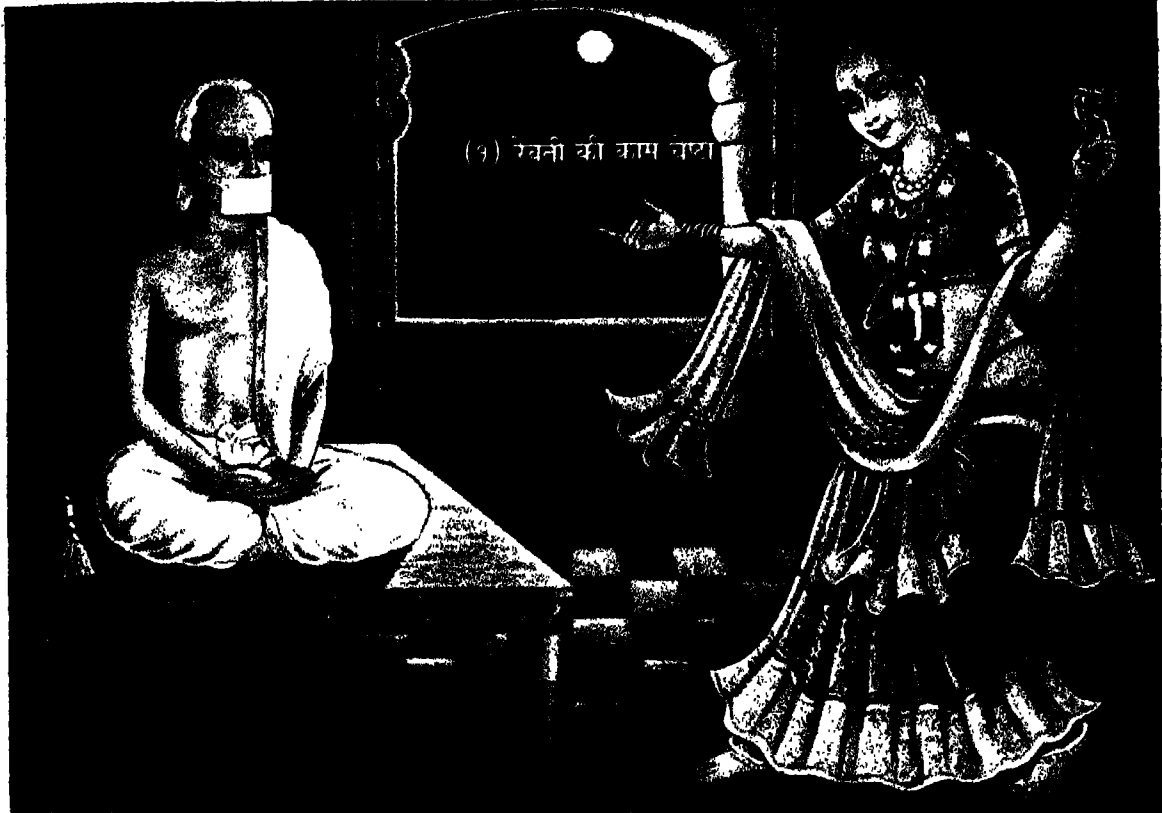
श्रमणोपासक महाशतक और रेवती

श्रमणोपासक महाशतक सांसारिक भोगों से विरक्त होकर एकान्त पौषधशाला में धर्माराधना कर रहा था। इसी क्रम में उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ।

किसी समय उसकी पत्नी रेवती, शराब के नशे में उन्मत्त हुई कामोत्तेजक हाव-भाव करती हुई अपने पति महाशतक से कहने लगी–"तुम जीवन के प्राप्त सुख क्यों नहीं भोगते हो और अप्राप्त स्वर्ग–मोक्ष की आशा से व्यर्थ इस शरीर को गला रहे हो? आओ, मेरे साथ सांसारिक सुख भोगो।"

पत्नी के बार-बार इस प्रकार प्रलाप करने पर महाशतक क्षुब्ध हो गया और उसने कहा–"रेवती ! तू सात दिन के पश्चात् तो अलसर महारोग से ग्रस्त होकर मर जायेगी। इस क्षण-भंगुर जीवन के लिए क्यों इतना उन्माद कर रही है?"

महाशतक की बात सुनकर रेवती घबरा गई। उसे लगा–'महाशतक मुझसे रुष्ट हो गया है, अब किसी भी समय यह मुझे मार डालेगा।' वह व्याकुल होकर एकान्त में चली गई। बार-बार उसे अपनी भयंकर मौत अट्टहास करती सामने दीखने लगी।

–उपासकदशा, अ. ८, सूत्र २५४-२५६

SHRAMANOPASAK MAHASHATAK AND REVATI

Shramanopasak Mahashatak was engaged in spiritual practices in the *Paushadhshala* after discarding the worldly comforts. After sometimes he got *Avadhi-jnan*—The power to know remote physical objects.

At one time, his wife Revati, completely intoxicated with wine, making sex-provoking gestures came to him and said—"Why are you not enjoying sexual pleasures available in this world ? Why are you destroying your physical strength in hope of pleasures in heaven not available at present and in expectation of liberation ? You come and enjoy sex with me."

At repeated invitation of his wife, Mahashatak felt dejected and said—"Revati ! You shall be affected by Alasak disease after seven days and die. Why are you feeling pride for this ephemeral life ?"

At these words of Mahashatak, Revati felt bewildered. She felt that "he has become angry and shall kill her any time.' She went to a lonely place in dejected mood. She was seeing the dreadful scene of her death laughing at her.

—Upasak-dasha, Ch. 8, Sutra 254-256

मारणान्तिक संलेखना द्वारा आहार-पानी का परित्याग करके मृत्यु की कामना न करते हुए धर्माराधना कर रहा है।''

EDIFYING MESSAGE FROM MAHAVIR

254. Addressing Gautam, Bhagavan Mahavir said—"Gautam ! In Rajagriha, my disciple Mahashatak *Shramanopasak* has completely left food and water; he is practicing without desiring death.

२५५. तए णं तस्स महासयगस्स रेवई गाहावइणी मत्ता जाव विकड्ढेमाणी २ जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए तेणेव उवागया, मोहुम्माय जाव एवं वयासी। तहेव जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी।

२५५. एकदा महाशतक श्रमणोपासक की पत्नी शराब के नशे में उन्मत्त होकर कपड़े बिखेरती हुई वहाँ आई और महाशतक के सामने, मोह–उन्माद शृंगार भरी चेष्टाएँ करके दुर्वचन बोलने लगी। उसने दूसरी बार, तीसरी बार मोहजनक दुर्वचन कहे।

255. Once Mahashatak's wife Revati came to him completely intoxicated with wine, throwing her garments. She started making lustful and erotic gestures. She further made ill talk. She repeated her bad words twice and thrice.

२५६. तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरत्ते ४ ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी—जाव उववज्जिहिसि।

''नो खलु कप्पइ, गोयमा ! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव झूसियसरीरस्स भत्त-पाणडियाइक्खियस्स परो संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरित्तए।''

''तं गच्छ णं, देवाणुप्पिया ! तुमं महासययं समणोवासयं एवं वयाहि—''नो खलु देवाणुप्पिया ! कप्पइ समणोवासगस्स अपच्छिम जाव भत्तपाण पडियाइक्खियस्स परो

संतेहिं जाव वागरित्तए। तुमे य णं देवाणुप्पिया ! रेवई गाहावइणी संतेहिं ४ अणिट्ठेहिं ५ वागरणेहिं वागरिया। तं णं तुमं एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव जहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।''

२५६. तब अपनी पत्नी रेवती द्वारा दूसरी तथा तीसरी बार ऐसा कहने पर महाशतक श्रमणोपासक को क्रोध आ गया। उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया, प्रयोग करके रेवती का भविष्य देखा और उसने सात दिन में मरकर नरक में उत्पन्न होने की बात कही।

''देवानुप्रिय ! मारणांतिक संलेखना द्वारा भक्त-पान का परित्याग करके अंतिम आराधना करने वाले श्रमणोपासक को सत्य, तथ्य तथा सद्‌भूत यथार्थ होने पर भी ऐसे वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जो अनिष्ट अर्थात् सुनने में कर्ण-कटु, अप्रिय तथा अमनोज्ञ हों, तथा जो अमणाम-मन जिन्हें सोचना नहीं चाहें, जो सत्य होने पर भी दूसरे को कष्टदायी हो।''

''अतः देवानुप्रिय ! तुम वहाँ जाओ और महाशतक से कहो, देवानुप्रिय ! तुमने रेवती से जो अप्रिय-अनिष्ट वचन कहे हैं, उस स्थान की, धर्म के प्रतिकूल आचरण की आलोचना एवं प्रायश्चित्त स्वीकार करो।''

256. Then at the repeated misbehaviour of his wife Revati, Mahashatak *Shramanopasak* became angry. He used his super-natural knowledge. Therein he saw the future of Revati. He then told her that she shall die within seven days suffering from *Alasak* disease.

"O the blessed ! A person observing, *Maranantik Samlekhana* who has completely left food and water and is engaged in spiritual practices, should not utter words that are harsh, unpleasant and repulsive that are not worthy of consideration and painful to others even if they are true, based on facts and depicting reality."

"So, O the blessed ! You go there and tell Mahashatak that he should repent for the unpalatable words he had used for Revati about the place when she was going to be re-born

and her anti-spiritual conduct. He should also accept penance for that statement."

२५७. तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स "तह" त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव महासयगस्स समणोवासयस्स गिहे जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

२५७. भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर बोले–"भंते ! आप ठीक फरमाते हैं।" इस प्रकार विनयपूर्वक स्वीकार किया। वे वहाँ से चले और राजगृह नगर में होते हुए जहाँ महाशतक श्रमणोपासक धर्म आराधना कर रहा था वहाँ पहुँचे।

257. Gautam then said—"Bhante ! What you say is true." He thus humbly accepted the order. He left the place and passing through Rajagriha came to the place where Mahashatak *Shramanopasak* was engaged in spiritual practices.

२५८. तए णं से महासयए समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव हियए भगवं गोयमं वंदइ नमंसइ।

२५८. तब श्रमणोपासक महाशतक ने भगवान गौतम को आते देखा तो हृदय में अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। उन्हें वन्दना नमस्कार किया।

258. When *Shramanopasak* Mahashatak saw Gautam coming to him, he felt overjoyed and satisfied. He greeted him in the prescribed manner.

२५९. तए णं से भगवं गोयमे महासययं समणोवासयं एवं वयासी–"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ, भासइ, पण्णवेइ, परूवेइ नो खलु कप्पइ, देवाणुप्पिया ! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव वागरित्तए। "तुमे णं देवाणुप्पिया ! रेवई गाहावइणी संतेहिं जाव वागरिआ, तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।"

२५९. तब भगवान गौतम ने महाशतक श्रमणोपासक से आकर कहा–"देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर ऐसा कहते हैं, ऐसी प्ररूपणा करते हैं, प्रतिपादन करते हैं कि अंतिम मारणांतिक संलेखना की आराधना करने वाले अनशन व्रतधारी श्रावक को ऐसा कहना नहीं कल्पता है जिस प्रकार कि तुमने अपनी पत्नी रेवती को ऐसा कहा है। अतः इस धर्म के प्रतिकूल आचरण रूप दोष की आलोचना करो यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त ग्रहण करो।"

259. Then Gautam said to Mahashatak *Shramanopasak*—"The blessed ! Bhagavan Mahavir says, explains and propounds as under—A person observing final *Maranantik Samlekhana,* completely avoiding food till the last breath, should not use such words as you have used for your wife Revati. Therefore, you should repent for your undesirable conduct against the principle of spirituality. You should also accept penance in lieu of such behaviour."

महाशतक द्वारा प्रायश्चित्त ग्रहण

२६०. तए णं से महासयए समणोवासए भगवओ गोयमस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव अहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जई।

२६०. तब श्रमणोपासक महाशतक ने भगवान गौतम के इस कथन को विनयपूर्वक 'तथेति' (आपका कथन सत्य है) कहकर स्वीकार किया और अपने दोषों के लिए आलोचना, प्रायश्चित्त ग्रहण किया।

ACCEPTANCE OF PENANCE BY MAHASHATAK

260. Then Mahashatak accepted the advice of Gautam with gratitude. He said—"Whatever you have said is really true." He then repented for his conduct and accepted penance.

२६१. तए णं से भगवं गोयमे महासयगस्स समणोवासयस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ,

निग्गच्छित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

२६१. उसके पश्चात् भगवान गौतम महाशतक श्रमणोपासक के पास से वापस निकले। राजगृह नगर के बीच होते हुए भगवान महावीर के पास आए। उन्हें वन्दना नमस्कार किया और संयम तथा तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

261. Thereafter Gautam came back from Mahashatak *Shramanopasak* and passing through Rajagriha, he came to Bhagavan Mahavir. He greeted the lord and engaged himself in self-control and austerities.

२६२. तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ।

२६२. इसके कुछ समय पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया, विहार करके अन्य जनपदों में विचरने लगे।

262. After sometime, Mahavir left Rajagriha for other areas.

२६३. तए णं महासयए समणोवासए बहूहिं सील जाव भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियायं पाउणित्ता, एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएण फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइए पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणवडिंसए विमाणे देवत्ताए उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अट्ठमं महासययं अज्झयणं समत्तं ॥

२६३. इस प्रकार महाशतक श्रमणोपासक ने अनेक प्रकार से शील एवं व्रत-नियमों द्वारा आत्मा को भावित किया। बीस वर्ष पर्यन्त श्रावक धर्म का पालन किया। ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की भली प्रकार आराधना की। एक मास की संलेखना

करके आत्मा को पवित्र किया, फिर साठ भक्तों-एक मास का अनशन किया। दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करके चित्त शुद्धि होने से समाधि-भाव प्राप्त किया। इस प्रकार धर्मानुष्ठान करते हुए समय आने पर समाधिमरण प्राप्त करके सौधर्म देवलोक के अरुणावतंसक विमान में, देवरूप में उत्पन्न हुआ और चार पल्योपम की आयु स्थिति प्राप्त की। वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और सिद्धि प्राप्त करेगा।

[निक्षेप (निगमन)-आर्य सुधर्मा बोले-"जम्बू ! सिद्धि प्राप्त भगवान महावीर ने आठवें अध्ययन का यही भाव प्रतिपादन किया है, जो मैंने तुम्हें बतलाया है।"]

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का अष्टम महाशतक अध्ययन समाप्त ॥

263. Thus Mahashatak *Shramanopasak* engaged his soul in strictly observing partial vows and supporting vows. He followed the conduct of *Shravak* for twenty years. He accepted eleven *pratimas* of a true *shravak* in their respective order. He purified his soul observing *Samlekhana* for one month. He observed complete fast for one month. He gained state of equanimity by repenting for his sins, doing *Pratikraman* (recollection of daily sins that had been committed and deciding not to repeat the sins). Thus while observing spiritual practice, he died in a state of equanimity and was re-born in Arunavatansak Viman of Saudharm Devlok as an angel. There his life-span is four *palyopam*. After completion of his life-span there, he shall take birth in Mahavideh area and attain salvation from there.

[**Conclusion**—Arya Sudharma said—"This is the detailed description of the eighth chapter as narrated by Bhagavan Mahavir."]

● **EIGHTH CHAPTER CONCLUDED** ●

नन्दिनीपिता : नवम अध्ययन

अध्ययन-सार

- श्रावस्ती नगरी में नन्दिनीपिता नामक एक समृद्धिशाली गाथापति रहता था। उसकी सम्पत्ति चार करोड़ सुवर्ण सुरक्षित, चार करोड़ व्यापार तथा चार करोड़ घर उपकरण में इस प्रकार बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं में थी। उसके दस-दस हजार गायों के चार गोकुल थे। उसकी पत्नी का नाम अश्विनी था।

- नन्दिनीपिता एक सुखी गृहस्थ का जीवन बिता रहा था। एक समय भगवान महावीर श्रावस्ती में पधारे। श्रद्धालु मानव दर्शन के लिए गये। नन्दिनीपिता भी गया। भगवान की देशना सुनी। त्याग की भावना जागी। गाथापति आनन्द की तरह उसने भी श्रावक धर्म स्वीकार किया।

- नन्दिनीपिता अपने व्रतमय जीवन को उत्तरोत्तर विकसित करता गया। यों चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। उसका मन धर्म में रमता गया। उसने पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों से मुक्ति पाने के लिए अपने स्थान पर ज्येष्ठ पुत्र को मनोनीत किया। स्वयं धर्म की आराधना में जुट गया। यह एक शुभ संयोग ही था कि उसकी आराधना, उपासना में किसी प्रकार का उपसर्ग या विघ्न नहीं हुआ। बीस वर्ष तक सम्यक् रूप में श्रावक धर्म का पालन किया। आनन्द की तरह साधनामय जीवन जीते हुए अन्त में समाधिमरण प्राप्त कर सौधर्मकल्प के अरुणगव विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

NANDINIPITA : NINTH CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- Nandinipita, well-to-do *Gathapati* was living in Shravasti. He had forty million gold coins in his treasure, forty million in trade and forty million in household assets. Thus he had total wealth of one hundred and twenty million. He had four *gokuls* of ten thousand cows each. Ashvini was his wife.
- Nandinipita was leading a happy life. Once Bhagavan Mahavir came to Shravasti. The devotees came for his *darshan*. Nandinipita also came there. He heard the spiritual discourse from Mahavir. A feeling for accepting vows appeared in his mind. He accepted the spiritual code of a *Shravak* like Anand.
- Nandinipita was moving ahead in his spiritual conduct and observance of vows. He nominated his eldest son at his seat in order to become totally free from social and family-related responsibilities. He then completely engaged himself in spiritual practices. It was fortunate that he did not face disturbance or turbulation in performing his spiritual practices. He led the conduct of a *Shravak* for full twenty years. Leading the spiritual life like Anand, he in the end got a quiet peaceful death. He was re-born as an angel in Arungav Viman of Saudharm Kalpa.

नंदिणीपिया : नवमज्झयणं
नन्दिनीपिता : नवम अध्ययन
NANDINIPITA : NINTH CHAPTER

२६४. नवमस्स उक्खेवओ।

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया। तत्थ णं सावत्थीए नयरीए नंदिणीपिया नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे। चत्तारि हिरण्णकोडिओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडिओ वुड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडिओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। अस्सिणी भारिया।

२६४. यहाँ नवम अध्ययन का उपक्षेप इस प्रकार कहना चाहिए।

सुधर्मा स्वामी ने कहा–जम्बू ! उस समय श्रावस्ती नामक नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नामक चैत्य था। जितशत्रु राजा वहाँ राज्य करता था। उस नगरी में नन्दिनीपिता नामक गाथापति निवास करता था। वह धन आदि से परिपूर्ण एवं प्रभावशाली था। उसकी चार करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ कोष में सञ्चित थीं, चार करोड़ व्यापार में लगी हुई थीं तथा चार करोड़ घर तथा सामान में लगी हुई थीं। प्रत्येक में दस हजार गायों के हिसाब से चार व्रज थे। उसकी पत्नी का नाम अश्विनी था।

264. Repeat the introduction to the ninth chapter (same as in preceding chapters).

Sudharma Swami said—Jambu ! At that time there was a town called Shravasti. A temple named Koshthak was there. Jitshatru was ruling there. Nandinipita *Gathapati* lived in that town. He was rich and well-to-do. He had forty million gold coins in treasure, forty million in trade and forty million in household assets. He had four *gokuls* each having ten thousand cows. Ashvini was his wife.

२६५. सामी समोसढे। जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ। सामी बहिया विहरइ।

२६५. एक समय भगवान महावीर श्रावस्ती में पधारे। आनन्द के समान नन्दिनीपिता ने दर्शन किये। धर्मदेशना सुनी तथा श्रावक धर्म स्वीकार किया। उसके बाद भगवान महावीर अन्य जनपदों में विहार कर गये।

265. Once Bhagavan Mahavir came to Shravasti. He had the *darshan* of Mahavir like Anand. He heard his (Mahavir's) spiritual discourse and accepted the conduct of a *Shravak.* Thereafter Mahavir left for other areas.

२६६. तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए जाए जाव विहरइ।

२६६. नन्दिनीपिता श्रावक धर्म स्वीकार करके श्रमणोपासक हो गया। धर्माराधनापूर्वक जीवन बिताने लगा।

266. After accepting the conduct of a *Shravak,* Nandinipita became a *Shramanopasak.* He started leading a spiritual life.

२६७. तए णं तस्स नंदिणीपियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सीलव्वय-गुण जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं। तहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ। धम्मपण्णत्तिं। वीसं वासाइं परियागं। नाणत्तं अरुणगवे विमाणे उववाओ। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं नवमं नन्दिणीपियाज्झयणं समत्तं ॥

२६७. तदनन्तर श्रमणोपासक नन्दिनीपिता को अनेक प्रकार से अणुव्रत, गुणव्रत आदि की आराधना से आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष बीत गए। आनन्द की तरह उसने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपा और भगवान से प्राप्त धर्मप्रज्ञप्ति का अनुष्ठान करने लगा। बीस वर्ष तक श्रमणोपासक अवस्था में श्रावक धर्म की आराधना की। शेष आनन्द आदि की तरह समझना चाहिए। इतना विशेष है कि देह त्यागकर सौधर्मकल्प के अरुणगव विमान में उत्पन्न हुआ।

[निगमन–सुधर्मा स्वामी ने कहा–"जम्बू ! सिद्धि गति प्राप्त भगवान महावीर ने नवमें अध्ययन का यही अर्थ प्रतिपादन किया है, जो मैंने तुम्हें बताया है।"]

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का नवम नन्दिनीपिता अध्ययन समाप्त ॥

267. Thereafter, *Shramanopasak* Nandinipita followed the partial vows and supporting vows in different manner according to prescribed code for fourteen years. He also handed over his family responsibilities to his eldest son like Anand. He then started strict Spiritual practices as accepted from Mahavir. He spent twenty years as *Shramanopasak* observing spiritual conduct of *Shravak.* Further account is similar to that of Anand, the only difference is that after death he was re-born in Arun-gav Viman of Saudharm Kalp.

[**Conclusion**—Sudharma Swami said—"Jambu ! This was the detailed description of the ninth chapter as narrated by Bhagavan Mahavir."]

● **NINTH CHAPTER CONCLUDED** ●

सालिहीपिता : दशम अध्ययन

अध्ययन-सार

✦ नन्दिनीपिता के समान ही श्रावस्ती में सालिहीपिता नामक एक धनाढ्य तथा प्रभावशाली गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था। नन्दिनीपिता की तरह सालिहीपिता की कुल सम्पत्ति भी बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं में थी, उसके पास भी दस-दस हजार गायों के चार गोकुल थे।

✦ एक समय भगवान महावीर श्रावस्ती नगरी में पधारे। भगवान के दर्शन एवं उपदेश-श्रवण हेतु परिषद् गयी। सालिहीपिता भी गया। भगवान के उपदेश से उसे अध्यात्म-जागरणा हुई। उसने गाथापति आनन्द की तरह श्रावक धर्म स्वीकार किया। चौदह वर्ष के बाद उसने अपने आपको अधिकाधिक धर्माराधना में जोड़ देने के लिए सांसारिक उत्तरदायित्व ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिये और स्वयं धर्माराधना में लग गया। उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की यथाविधि आराधना की।

✦ सालिहीपिता की आराधना–उपासना में कोई उपसर्ग नहीं आया। अन्त में उसने समाधिमरण प्राप्त किया और सौधर्मकल्प में अरुणकील विमान में चार पल्योपम की आयु स्थिति वाले देवरूप में उत्पन्न हुआ।

SALIHIPITA : TENTH CHAPTER

GIST OF THE CHAPTER

- Like Nandinipita, Salihipita a rich influential *Gathapati* was residing in Shravasti. Phalguni was his wife. His total wealth was also worth one hundred and twenty million gold coins and he had four *gokuls* of ten thousand cows each as had been the case of Nandinipita.
- Once Bhagavan Mahavir came to Shravasti. People came to have his *darshan* and to listen to his spiritual discourse. Salihipita also came there. His spiritual self awakened as a result of Mahavir's spiritual discourse. He accepted the conduct of *Shravak* like Anand. After fourteen years he handed over worldly responsibilities to his eldest son in order to pay greater attention to spiritual practices. He engaged himself completely in spirituality. He accepted eleven *Pratimas* of a *Shravak* in the prescribed manner.
- No disturbance or turbulation occurred during his spiritual practices. In the end he died in state of equanimity. He was re-bron in Arunkeel Viman as angel with a life-span of four *palyopam*.

सालिहीपिया : दसमज्झयणं
सालिहीपिता : दशम अध्ययन
SALIHIPITA : TENTH CHAPTER

२६८. दसमस्स उक्खेववो।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेण उवासगदसाणं नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। दसमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया। तत्थ णं सावत्थीए नयरीए सालिहीपिया नामं गाहावई परिवसइ। अड्ढे दित्ते। चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि वया दस गोसाहस्सिएणं वएणं। फग्गुणी भारिया।

२६८. यहाँ दशम अध्ययन का उपक्षेप इस प्रकार कहना चाहिए।

[आर्य जम्बू ने आर्य सुधर्मा से पूछा–"भंते ! यदि सिद्धि प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने उपासकदशा के नवम अध्ययन का यह भाव कहा है तो भगवन् ! दशम अध्ययन का क्या भाव बतलाया है ? कृपा कर बतलाएँ।"]

सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा–जम्बू ! उस काल उस समय जब श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, श्रावस्ती नगरी में कोष्ठक नामक चैत्य था और वहाँ जितशत्रु राजा था। श्रावस्ती नगरी में सालिहीपिता नामक गाथापति निवास करता था। वह धन-धान्य से समृद्ध, नगर में प्रभावशाली और प्रतिष्ठा-प्राप्त था। उसकी चार करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ कोष में सञ्चित थीं, चार करोड़ व्यापार में लगी हुई थीं तथा चार करोड़ घर तथा सामान में लगी हुई थीं। दस-दस हजार गायों वाले चार गोकुल थे। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था।

268. [Arya Jambu asked Sudharma Swami—"Bhante ! You have told me the detailed meaning of ninth chapter of *Upasak-dasha* as narrated by Bhagavan Mahavir who is

now in liberated state. Please tell me the meaning of tenth chapter of *Upasak-dasha*."]

Sudharma Swami replied—Jambu ! At that time during that period, when Bhagavan Mahavir was present, there was Koshthak temple in Shravasti town. King Jitshatru was ruling there. Salihipita *Gathapati* lived in Shravasti. He was rich, influential and well-respected in society. He had forty million coins in treasure, forty million in trade and forty million in household assets. He had four *gokuls* of ten thousand cows each. Phalguni was his wife.

२६९. सामी समोसढे ! जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ। जहा कामदेवो तहा जेट्ठं पुत्तं ठवेत्ता पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। नवरं निरुवसग्गाओ एक्कारसवि उवासगपडिमाओ तहेव भाणियव्वाओ, एवं कामदेवगमेणं नेयव्वं। जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकीले विमाणे देवत्ताए उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ।

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दसमं सालिहीपियाज्झयणं समत्तं ॥

२६९. एक समय श्रमण भगवान महावीर श्रावस्ती में पधारे। आनन्द श्रमणोपासक की भाँति सालिहीपिता ने भी धर्मदेशना सुनी यावत् उपासना करने लगा। श्रावक धर्म को स्वीकार किया। आनन्द के समान ज्येष्ठ पुत्र को परिवार आदि का उत्तरदायित्व सौंपकर पौषधशाला में भगवान महावीर से ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति की आराधना करने लगा। विशेष इतना है कि उसे कोई उपसर्ग नहीं हुआ। श्रावक की ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का प्रतिपादन उसी प्रकार है। शेष सभी घटनाएँ कामदेव श्रावक के समान हैं। अन्त में मासिक संलेखना तथा संथारा करके सौधर्मकल्प में अरुणकील विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी चार पल्योपम की आयु स्थिति है तथा वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।

॥ सप्तम अंग उपासकदशासूत्र का दशम सालिहीपिता अध्ययन समाप्त॥

269. Once Bhagavan Mahavir came to Shravasti. Salihipita also heard his religious discourse like Anand. He accepted the conduct of a *Shravak* like Anand. He handed over his family responsibilities etc. to his eldest son and started devoting full attention to spiritual practices in the *Paushadhshala* like Anand. Only difference is that he had not to face any disturbance. He accepted eleven *Pratimas* of *Shravak* in the prescribed manner. In the end he observed *Samlekhana* for one month and, dying in state of equanimity in *Santhara* (avoiding all food and water), he was re-born in Arun-keel Viman in Saudharm Kalp as angel. There his life-span is four *palyopam.* From there he will be re-born in Mahavideh and attain salvation from there.

● **TENTH CHAPTER CONCLUDED** ●

उपसंहार

२७०. दसण्ह वि पण्णरसमे संवच्छरे वट्टमाणाणं चिंता।

दसण्ह वि वीसं वासाइं समणोवासय परियाओ॥

२७०. दसों श्रावकों को पन्द्रहवें वर्ष में (श्रावक बनने के पश्चात्) पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों से मुक्त होकर धर्म साधना का विचार उत्पन्न हुआ। दसों ने ही बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया।

CONCLUSION

270. All the ten *Shravaks* thought of handing over social and family responsibilities in the fifteenth year (after becoming a *Shravak*). All the ten *Shravaks* practiced the conduct of a *Shravak* for twenty years.

२७१. एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

२७१. आर्य सुधर्मा कहते हैं-"जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, सातवें अंग उपासकदशांगसूत्र के दसवें अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।"

271. Arya Sudharma said—"Jambu ! Bhagavan Mahavir who has since attained salvation had thus described the tenth chapter of seventh *Anga Sutra Upasak-dashang.*"

२७२. उवासगदसाणं सत्तमस्स अंगस्स एगो सुयखंधो। दस अज्झयणा। एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति। तओ सुयखंधो समुद्दिस्सिज्जइ, अणुण्णविज्जइ दोसु दिवसेसु, अंगं तहेव।

॥ उवासगदसाओ समत्ताओ ॥

२७२. सातवें अंग उपासकदशा में एक श्रुतस्कन्ध है। दस अध्ययन हैं। जिनमें एक ही समान स्वर अर्थात् पाठ है। इसका पाठ दस दिनों में पूरा किया जाता है। ऐसा करने पर श्रुतस्कन्ध का पाठ हो जाता है। तत्पश्चात् दो दिन में इसका पाठ समुद्देश सुस्थिर और परिचित करने का उपदेश किया जाता है और अनुज्ञा-सम्मति दी जाती है।

॥ उपासकदशासूत्र समाप्त ॥

272. There is one *Shrut-Skandh* in *Seventh Anga Upasak-dasha.* It has ten chapters that have similar version. Its recital/reading is completed in ten days. By doing so, one completes the narration of the *Shrut-Skandh.* Thereafter, permission is obtained to deeply meditate, to carefully study and fix in mind its purport within two days.

विवेचन—उपासकदशा नामक सप्तम अंग के दस अध्ययन और एक श्रुतस्कन्ध है। श्रुतस्कन्ध का अर्थ है श्रुत अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान का स्कन्ध-पिंड। जैसे श्रुतस्कन्ध अर्थात् मूल आगम के खण्ड या विभाग फिर श्रुतस्कन्ध का विभाजन अध्ययन के रूप में तथा अध्ययन का विभाजन उद्देशक के रूप में किया जाता है। उद्देशक का अर्थ है एक प्रकरण या पाठ। पहले एक उद्देशक का पाठ-स्वाध्याय एक ही बार में किया जाता था। प्रस्तुत उपासकदशा में उद्देशक नहीं है, किन्तु एकसरगा-शब्द से सूचित किया है कि इसका प्रत्येक अध्ययन एक सरीखा है। पूरा आगम ही गद्य शैली में है गाथा या पद्य शैली में नहीं। दूसरा अर्थ यह भी है

कि प्रत्येक अध्ययन एक प्रकरण है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार इसके दस अध्ययनों का स्वाध्याय दस दिनों में पूर्ण करने की परिपाटी है किंतु अन्त में दो दिनों में पूरा करने की भी अनुज्ञा–अनुमति दी गयी है।

Explanation—The seventh *Anga Upasak-dasha* has ten chapters and one *Shrut-Shandh. Shrut-Skandh* means a compilation of scriptural knowledge. The Basic Scripture is first divided in *Shrut-Skandh. Shrut-Skandh* is then divided in chapters. The chapters are further divided in *Uddeshak. Uddeshak* mean one lesson. In earlier days, one *Uddeshak* was completed in one lesson. In the present *Sutra Upasak-dasha,* there is no *Uddeshak.* But the words *'Ek Sarga'* indicate that each chapter is similar to one-another. The entire *Agam* is in prose. It is not in verse or poetic style. Another meaning of *'Sarga'* is that every chapter is a lesson (*Prakaran*). According to ancient practice, the study of its ten chapters was completed in ten days. But in the end it was allowed to be completed in two days also.

● UPASAK-DASHA SUTRA CONCLUDED ●

संग्रह गाथाएँ
COLLECTION OF VERSES

श्रावकों के नगर–

वाणियगामे चंपा दुवे य बाणारसीए नयरीए।
आलभिया य पुरवरी कंपिल्लपुरं च बोद्धव्वं॥ १॥
पोलासं रायगिहं सावत्थीए पुरीए दोन्नि भवे।
एए उवासगाणं नयरा खलु होन्ति बोद्धव्वा॥ २॥

पत्नियों के नाम–

सिवनंद–भद्द–सामा धन्न–बहुल–पूस–अग्गिमित्ता य।
रेवई–अस्सिणि तह फग्गुणी य भज्जाण नामाइं॥ ३॥

विशेष घटनाएँ–

ओहिण्णाण–पिसाए माया वाहि–धण–उत्तरिज्जे य।
भज्जा य सुव्वया दुव्वया निरुवसग्गया दोन्नि॥ ४॥

देव विमान–

अरुणे अरुणाभे खलु अरुणप्पह अरुणकंत–सिट्ठे य।
अरुणज्झए य छट्ठे भूयवर्डिसे गवे कीले॥ ५॥

पशु–धन–

चाली सट्ठि असीई सट्ठी सट्ठी य सट्ठी दस सहस्सा।
असिए चत्ता चत्ता एए वइयाण य सहस्सा॥ ६॥

स्वर्ण परिमाण–

बारस अट्ठारस चउवीसं तिविहं अट्ठारसइ नेयं।
धन्नेण ति–चोवीसं बारस य कोडीओ॥ ७॥

इक्कीस भोग्य वस्तुओं की मर्यादा–

उल्लण–दन्तवण–फले अब्भिगणुव्वट्टणे सणाणे य।

वत्थ–विलेवण–पुप्फे आभरणं धूव–पेज्जाइ॥ ८॥

भक्खोयण–सूय–घए सागे माहुर–जेमणऽन्नपाणे य।

तंबोले इगवीसं आणंदाईण अभिग्गहा॥ ९॥

अवधिज्ञान की सीमा–

उड्ढं सोहम्मपुरे लोलुए अहे उत्तरे हिमवंते।

पंचसए तह तिदिसिं, ओहिण्णाणं दसगणस्स॥ १०॥

ग्यारह उपासक प्रतिमाएँ–

दंसण–वय–सामाइय–पोसह–पडिमा–अबंभ–सच्चित्ते।

आरम्भ–पेस–उद्धिट्ठ–वज्जए समणभूए य॥ ११॥

सबकी समान स्थिति–

इक्कारस पडिमाओ वीसं परियाओ अणसणं मासे।

सोहम्मे चउपलिया, महाविदेहम्मि सिज्झहिइ॥ १२॥

॥ उवासगदसाओ समत्ताओ ॥

ये गाथाएँ उपासकदशासूत्र का मूल पाठ नहीं हैं। इस कारण इन्हें संग्रह गाथाएँ कहा गया है। इनमें निर्युक्तिकार ने सम्पूर्ण सूत्र का संक्षिप्त परिचय दे दिया है, जिनका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है–

These (twelve) verses are not a part of the basic *Agam* (Scriptures). So they are called *Sangrah Gathas* (collection of Verses). The commentator has given the brief substance of the entire *Agam* in them. The substance of these verses is given below—

श्रमणोपासक और उनकी नगरियाँ–

१. वाणिज्यग्राम में आनन्द।

२. चम्पा में कामदेव।

३. वाराणसी में चूलनीपिता।

४. वाराणसी में सुरादेव।

५. आलभिका में चुल्लशतक।

६. काम्पिल्यपुर में कुंडकौलिक।

७. पोलासपुर में सकडालपुत्र।

८. राजगृह में महाशतक।

९. श्रावस्ती में नन्दिनीपिता।

१०. श्रावस्ती में सालिहीपिता।

SHRAMANOPASAKS AND THEIR PLACES OF RESIDENCE—

1. Anand in Vanijyagram.
2. Kamdev in Champa.
3. Chulanipita in Varanasi.
4. Suradev in Varanasi.
5. Chullashatak in Alabhika.

6. Kundkaulik in Kampilyapur.
7. Sakadalputra in Polaspur.
8. Mahashatak in Rajagriha.
9. Nandinipita in Shravasti.
10. Salihipita in Shravasti.

श्रमणोपासकों की भार्याएँ–

१. आनन्द की शिवानन्दा।
२. कामदेव की भद्रा।
३. चूलनीपिता की श्यामा।
४. सुरादेव की धन्या।
५. चुल्लशतक की बहुला।
६. कुंडकौलिक की पूषा।
७. सकडालपुत्र की अग्निमित्रा।
८. महाशतक की रेवती आदि तेरह भार्याएँ।
९. नन्दिनीपिता की अश्विनी।
१०. सालिहीपिता की फाल्गुनी।

WIVES OF SHRAMANOPASAKS—

1. Anand's Shivananda.
2. Kamdev's Bhadra.
3. Chulanipita's Shyama.
4. Suradev's Dhanya.
5. Chullashatak's Bahula.
6. Kundkaulik's Poosha.
7. Sakadalputra's Agnimitra.

8. Mahashatak's thirteen wives namely Revati and twelve others.
9. Nandinipita's Ashvini.
10. Salihipita's Phalguni.

विशेष घटनाएँ–

१. आनन्द–अवधिज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में गौतम स्वामी का सन्देह।

२. कामदेव–पिशाच के उपसर्ग में अन्त तक अविचल रहना।

३. चूलनीपिता–पिशाच द्वारा माता भद्रा के वध का कथन सुनकर विचलित होना।

४. सुरादेव–पिशाच द्वारा सोलह भयंकर रोग उत्पन्न करने की धमकी।

५. चुल्लशतक–पिशाच द्वारा सम्पत्ति बिखेरने की धमकी।

६. कुंडकौलिक–देव द्वारा अँगूठी तथा उत्तरीय का उठाना एवं गोशालक के मत की प्रशंसा करना। कुंडकौलिक की दृढ़ता।

७. सकडालपुत्र–व्रतशीला पत्नी अग्निमित्रा ने व्रत से स्खलित हुए श्रावक को पुनः धर्म में स्थिर किया।

८. महाशतक–व्रतहीन भार्या रेवती का उपसर्ग। महाशतक की अविचलता।

९. नन्दिनीपिता–इनकी धर्म आराधना में कोई उपसर्ग नहीं हुआ।

१०. सालिहीपिता–इनकी धर्म आराधना में कोई उपसर्ग नहीं हुआ।

SPECIAL INCIDENTS—

1. Anand—Gautam's doubt regarding vastness of his super-natural knowledge.
2. Kamdev—His firmness to the end even at the turbulation caused by demon-god.
3. Chulanipita—Getting disturbed at the threat of demon-god to kill his mother Bhadra.

4. Suradev—The threat of demon-god to cause sixteen dreadful diseases in his body.
5. Chullashatak—The threat of demon-god to scatter his entire wealth.
6. Kundkaulik—Picking up his ring and upper-cloth by demon-god and appreciation of the faith of Goshalak. Firmness of Kundkaulik.
7. Sakadalputra—Advice of morally sound wife Agnimitra to regain firmness in practice of vows wherefrom he had dwindled.
8. Mahashatak—Turbulation and disturbance caused by Revati, his wife. Firmness of Mahashatak.
9. Nandinipita—No disturbance in their spiritual practices.
10. Salihipita—No disturbance in their spiritual practices.

देह त्यागकर सौधर्मकल्प प्रथम देवलोक के निम्न विमानों में उत्पन्न हुए–

१. आनन्द–अरुण विमान।

२. कामदेव–अरुणाभ विमान।

३. चूलनीपिता–अरुणप्रभ विमान।

४. सुरादेव–अरुणकान्त विमान।

५. चुल्लशतक–अरुणसिद्ध विमान।

६. कुंडकौलिक–अरुणध्वज विमान।

७. सकडालपुत्र–अरुणभूत विमान।

८. महाशतक–अरुणावतंसक विमान।

९. नंदिनीपिता–अरुणगव विमान।

१०. सालिहीपिता–अरुणकील विमान।

RE-BIRTH IN FIRST HEAVEN (SAUDHARM KALP) IN RESPECTIVE VIMAN (HEAVENLY ABODE) AS UNDER—

1. Anand in Arun Viman.
2. Kamdev in Arunabh Viman.
3. Chulanipita in Arunprabh Viman.
4. Suradev in Arunkant Viman.
5. Chullashatak in Arunsiddh Viman.
6. Kundkaulik in Arundhvaj Viman.
7. Sakadalputra in Arunbhoot Viman.
8. Mahashatak in Arunavatansak Viman.
9. Nandinipita in Arungav Viman.
10. Salihipita in Arunkeel Viman.

गोधन की संख्या—

१. आनन्द—चार व्रज = ४० हजार गोधन।

२. कामदेव—छह व्रज = ६० हजार गोधन।

३. चूलनीपिता—आठ व्रज = ८० हजार गोधन।

४. सुरादेव—छ व्रज = ६० हजार गोधन।

५. चुल्लशतक—छ व्रज = ६० हजार गोधन।

६. कुंडकौलिक—छ व्रज = ६० हजार गोधन।

७. सकडालपुत्र—एक व्रज = १० हजार गोधन।

८. महाशतक—आठ व्रज = ८० हजार गोधन।

९. नन्दिनीपिता—चार व्रज = ४० हजार गोधन।

१०. सालिहीपिता—चार व्रज = ४० हजार गोधन।

CATTLE-WEALTH—

1. Anand—4 Vraj or 40,000 Cattle.

2. Kamdev—6 Vraj or 60,000 Cattle.
3. Chulanipita—8 Vraj or 80,000 Cattle.
4. Suradev—6 Vraj or 60,000 Cattle.
5. Chullashatak—6 Vraj or 60,000 Cattle.
6. Kundkaulik—6 Vraj or 60,000 Cattle.
7. Sakadalputra—1 Vraj or 10,000 Cattle.
8. Mahashatak—8 Vraj or 80,000 Cattle.
9. Nandinipita—4 Vraj or 40,000 Cattle.
10. Salihipita—4 Vraj or 40,000 Cattle.

संपत्तिका परिमाण सुवर्ण-मुद्राओं में–

१. आनन्द–१२ करोड़।
२. कामदेव–१८ करोड़।
३. चूलनीपिता–२४ करोड़।
४. सुरादेव–१८ करोड़।
५. चुल्लशतक–१८ करोड़।
६. कुंडकौलिक–१८ करोड़।
७. सकडालपुत्र–३ करोड़।
८. महाशतक–२४ करोड़ निजी।
९. नन्दिनीपिता–१२ करोड़।
१०. सालिहीपिता–१२ करोड़।

WEALTH IN GOLD COINS—

1. Anand—120 million (12 crore).
2. Kamdev—180 million (18 crore).
3. Chulanipita—240 million (24 crore).

4. Suradev—180 million (18 crore).
5. Chullashatak—180 million (18 crore).
6. Kundkaulik—180 million (18 crore).
7. Sakadalputra—30 million (3 crore).
8. Mahashatak—240 million *kansya* bowls measure.
9. Nandinipita—120 million (12 crore).
10. Salihipita—120 million (12 crore).

भोग्य वस्तुओं की मर्यादा–

आनन्द आदि श्रमणोपासकों ने नीचे लिखी २१ बातों में मर्यादा कर रखी थी–

१. उल्लण–स्नान के पश्चात् अंग पोंछने के काम में आने वाले अंगोच्छे या तौलिये का परिमाण।

२. दन्तवण–दातुन।

३. फले–फल।

४. अभंगण–अभ्यंगन अर्थात् मालिश करने के तेल।

५. उव्वट्टण–उबटन अर्थात् अंगों पर मलने के लिए सुगन्धित आटा।

६. नहाण–स्नान के लिए पानी का परिमाण।

७. वत्थ–वस्त्र पहनने के कपड़े।

८. विलेपण–विलेपन, चन्दन, कस्तूरी आदि लेप करने के द्रव्य।

९. पुप्फे–पुष्प–फूल माला आदि।

१०. आभरण–आभूषण, जेवर आदि।

११. धूप–धूपबत्ती आदि कमरे को सुगन्धित करने वाली वस्तुएँ।

१२. पेज्ज–पेय–शरबत, ठंडाई आदि पीने की वस्तुएँ।

१३. भक्ख–भक्ष्य–पकवान या मिठाई आदि।

१४. ओयण–ओदन अर्थात् चावल, उन दिनों बिहार का यही मुख्य भोजन था।

१५. सूय–सूप–दालें।

१६. घाए–घृत–घी।

१७. साग–शाक–पकाई जाने वाली सब्जियाँ।

१८. माहुर–माधुर–गुड़, चीनी आदि भोजन को मीठा बनाने वाली वस्तुएँ।

१९. जेमण–दहीबड़े, पकोड़े, पापड़, चाट आदि भोजनोपरान्त खाई जाने वाली वस्तुएँ।

२०. पाणे–पानीय–कुआँ, नदी, सरोवर, बादलों आदि का पीने योग्य पानी।

२१. तम्बोल–ताम्बूल अर्थात् पान और उसमें खाये जाने वाले मसाले।

ANAND AND OTHER SHRAVAKS HAD LIMITED THEIR ARTICLES OF USE NAMELY—

1. Ullan—Towels.
2. Dantvan—Teeth cleaning sticks.
3. Phale—Herbs used for washing head.
4. Abhangan—Oils for massage.
5. Uvvattan—Fragrant flour used for rubbing on body.
6. Nahan—Water for taking bath (quantity limitation).
7. Vatth—Dresses.
8. Vilepan—Sandal paste etc.
9. Pupphe—Garlands of flower.
10. Abharan—Ornaments.
11. Dhoop—Incense.
12. Pejja—Cold drinks, sharbat etc.
13. Bhakh—Sweets.
14. Oyan—Rice—it was the staple food in Bihar at that time.

15. Sooya—Pulses.
16. Ghae—*Ghee.*
17. Sag—Vegetables used in cooking.
18. Mahur—Sugar.
19. Jeman—*Varas, Pakaura, Papar, Chaat.*
20 Pane—Water of wells, tank, streams, rain water used for drinking.
21. Tambol—Beatle leaf and spices added to it.

अवधिज्ञान की मर्यादा–

आनन्द, कामदेव तथा महाशतक तीनों श्रमणोपासकों को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ और वे विभिन्न दिशाओं में नीचे लिखे अनुसार देखने–जानने लगे–

पूर्वदिशा–लवणसमुद्र में पाँच सौ योजन तक। इसी प्रकार दक्षिण और पश्चिम में (महाशतक को एक-एक हजार योजन तक)।

उत्तरदिशा–चुल्ल हिमवान्त पर्वत तक।

ऊर्ध्वदिशा–सौधर्म देवलोक में सौधर्मकल्प विमान तक। (महाशतक के विषय में उल्लेख नहीं है।)

अधोदिशा–रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में लोलुपाच्युत नामक स्थान तक जहाँ चौरासी हजार वर्ष की आयु वाले नारकी जीव रहते हैं।

LIMIT OF SUPER-NATURAL KNOWLEDGE (AVADHI JNAN)

Anand, Kamdev and Mahashatak gained super-natural knowledge and they all could see in various directions up to following limits—

In east—Up to 500 *Yojan.*

In south—Up to 500 *Yojan.*

In west—Up to 500 *Yojan.*

In north—Up to Chulla Himvant *Parvat* (a mountain).

In upper side—Up to Saudharm kalp in Saudharm Devlok. (In case of Mahashatak—it is not mentioned).

In lower side—Up to Lolupachyut place in the first hell Ratna Prabha where the life-span of hellish beings is 84,000 years.

ग्यारह प्रतिमाएँ–

श्रमणोपासकों ने ग्यारह प्रतिमाएँ स्वीकार की थीं। उनके नाम निम्नानुसार हैं–

१. दर्शन प्रतिमा ।

२. व्रत प्रतिमा।

३. सामायिक प्रतिमा।

४. पौषध प्रतिमा।

५. दिवाब्रह्मचारी प्रतिमा।

६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा।

७. सचित्त परित्याग प्रतिमा।

८. आरम्भ परित्याग प्रतिमा।

९. प्रेष्य अर्थात् नौकर आदि भेजने का परित्याग प्रतिमा।

१०. उद्दिष्ट भोजन परित्याग प्रतिमा।

११. श्रमणभूत चर्या प्रतिमा।

प्रत्येक श्रावक ने बीस-बीस वर्ष तक व्रत एवं प्रतिमाओं का पालन किया और अन्त में एक मास की संलेखना तथा अनशन द्वारा देह का परित्याग करके सौधर्म देवलोक में चार पल्योपम की आयु स्थिति प्राप्त की। देवभव के पश्चात् सबके सब महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और सिद्धि गति प्राप्त करेंगे।

ELEVEN PRATIMAS—

Shramanopasak had accepted eleven *Pratimas*. The are as under—

1. *Darshan Pratima* (Complete faith in *Nirgranth Pravachan* and none else).
2. *Vrat Pratima* (To accept restraints also).
3. *Samayik Pratima* (To practice *Samayik* for at least 48 minutes in addition).
4. *Paushadh Pratima* (To undertake complete fast and to remain completely in *Paushadhshala* on certain days in each fortnight).
5. *Diva-brahmachari Pratima* (To observe complete sex control during the daytime).
6. *Brahmacharya Pratima* (To observe sex-restraint completely throughout day and night).
7. *Sachitt Parityag Pratima* (Not to take raw vegetable and fruit containing seeds).
8. *Arambh Parityag Pratima* (Not to prepare food for oneself).
9. *Preshya Parityag Pratima* (Not to get prepared food from servant etc.).
10. *Uddisht Bhojan Parityag Pratima* (Not to accept food specifically prepared for him).
11. *Shramanbhoot Charya Pratima* (To live like a monk but to take *Bhiksha* from his own clan).

Every *Shravak* practiced vows of *Shravak* including eleven *Pratimas* for twenty years. In the end each of them did *Samlekhana* and complete fast for one month. Each of them after death was re-born in Saudharm Devlok in the area where life-span is four *palyopam*. After the angelic life-span all of them shall be born in Mahavideh area and from there they all shall be liberated.
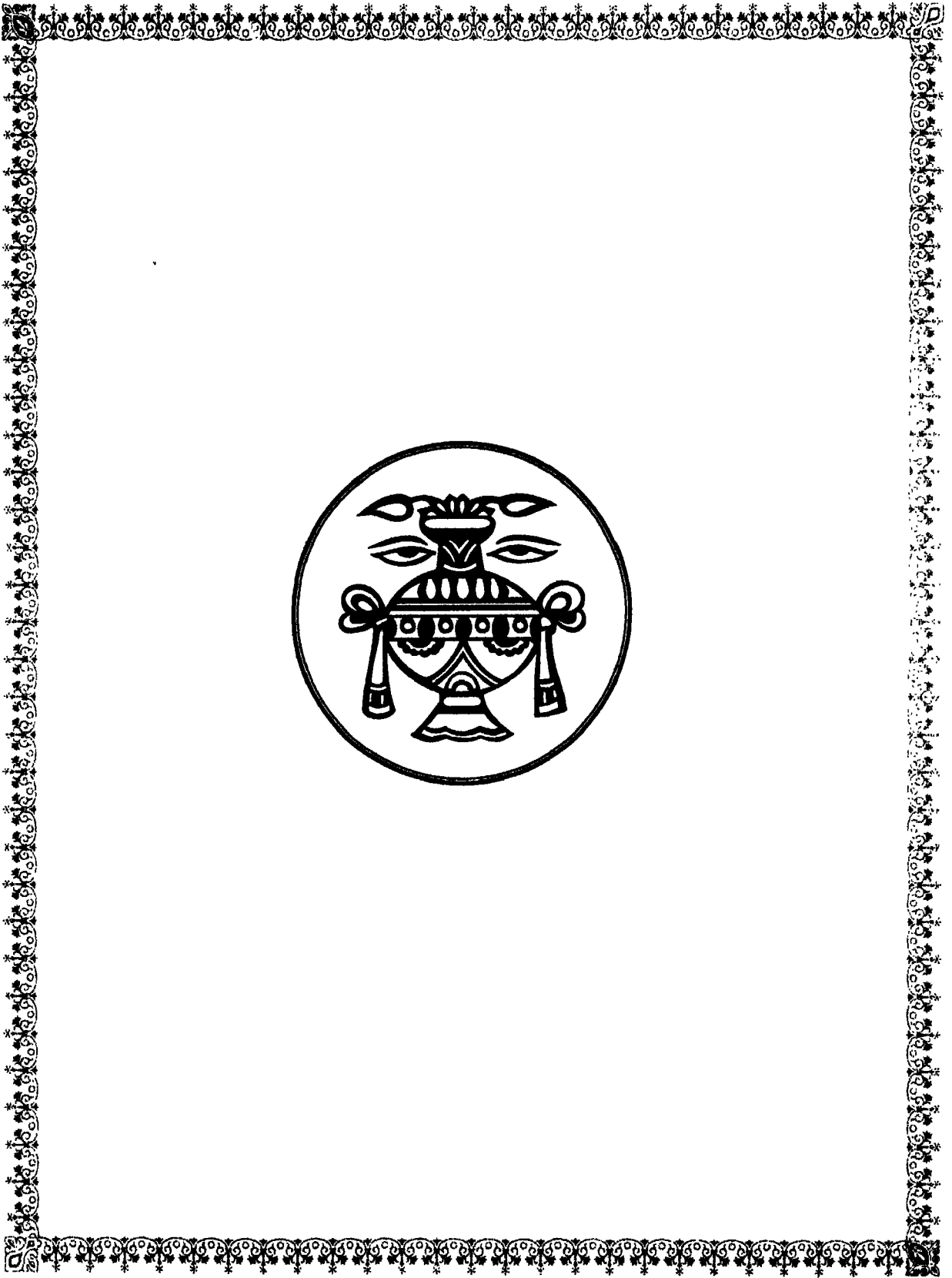
सचित्र
अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र

ILLUSTRATED
ANUTTARAUPAPĀTIK-DASHĀ SŪTRA
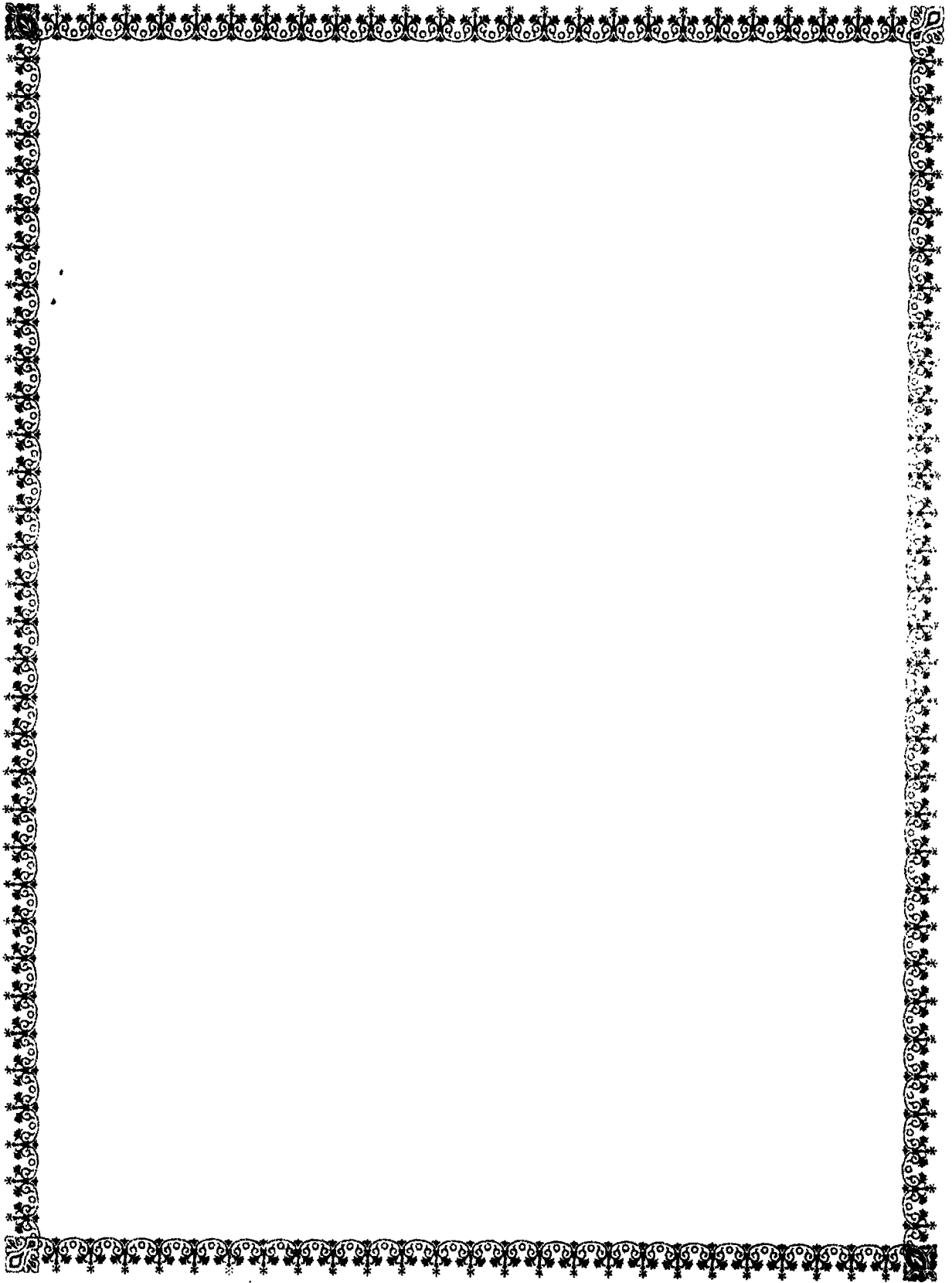
प्रथम वर्ग
जालिकुमार

अध्ययन-सार

✦ ग्यारह अंगों में अन्तकृद्दशासूत्र आठवाँ अंग है। इसमें भव परम्परा का अन्त करने वाले ९० महापुरुषों का वर्णन है। इसके पश्चात् नवम अंग–अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र में ३३ ऐसे साधकों की उत्कृष्ट तप-चारित्र आराधना का अति संक्षेप में वर्णन है जिन्होंने उत्तम चारित्र आराधना द्वारा कर्मों का नाश तो किया परन्तु सम्पूर्ण कर्म क्षय नहीं होने से भव परम्परा का अन्त नहीं कर सके। इस कारण उन्हें यह मानव देह त्यागकर अनुत्तर विमान नामक देवलोक में उत्पन्न होना पड़ा।

✦ इस सूत्र के तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग में १० अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन में एक-एक महान् साधक का वर्णन है।

✦ इस प्रथम वर्ग के दस अध्ययनों में राजा श्रेणिक के दस पुत्रों का वर्णन है, जिन्होंने यौवन में ही राज-सुखों का त्याग किया। भगवान महावीर के पास श्रमण बने और अनेक प्रकार की तपःसाधनाएँ करके अपना कल्याण किया। इस वर्ग में अलग-अलग अध्ययन नहीं हैं और सभी दसों साधकों का अत्यन्त संक्षेप में ही वर्णन है।

FIRST PART (VARG)
JALI KUMAR

GIST OF THE CHAPTER

- *Antakrid-dasha Sutra* is eighth *Anga* among eleven *Anga Sutras*. It contains life-story of ninety great saints who attained liberation from the vicious circle of life and death. Thereafter, in the ninth *Anga Sutra—Anuttaraupapatik-dasha Sutra* the conduct and superb austerities of thirty three great men has been discussed in brief who by their exemplary conduct destroyed their past *Karmas* to a great extent but not completely. As such they could not attain liberation from life and death in that very life. They had to be reborn in *Anuttar Viman*—the abode of extremely super class of angels.
- This *Sutra* has three *Vargs* (Parts). In first part there are ten chapters. Each of the ten chapters describes the life-story of one spiritual seeker.
- In the ten chapters of the first *Varg*, the life of ten sons of king Shrenik has been narrated. They discarded the royal enjoyments in the very youth and accepted initiation near Bhagavan Mahavir. They went through many austerities and purified their soul. In this part, there are no separate detailed description of each ascetic but the life of all the ten is described in brief.

पढमो वग्गो : प्रथम वर्ग : FIRST PART (*VARG*)
जालिकुमार : प्रथम अध्ययन
JALI KUMAR : FIRST CHAPTER

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। अज्जसुहम्मस्स समोसरणं। परिसा निग्गया जाव जंबू पज्जुवासइ, जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते ! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

१. उस काल (चौथे आरे के अन्तिम काल) और उस समय (जब आर्य सुधर्मा विद्यमान थे) में राजगृह नामक एक नगर था। आर्य सुधर्मा का वहाँ आगमन हुआ। धर्मदेशना सुनने के लिए परिषद् आई और धर्मदेशना सुनकर लौट गई। आर्य जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा स्वामी के पास संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। एक समय आर्य जम्बू आर्य सुधर्मा स्वामी के सामने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उपासना करते हुए इस प्रकार बोले–

"सिद्ध गति को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि आठवें अंग–अंतगडदशा का यह भाव कहा है तो भंते ! नवम अंग–अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र का भगवान ने क्या भाव प्ररूपित किया है ?"

1. At that time (the last part of the fourth epoch of the regressive cycle of time) during that period (when Arya Sudharma was alive), there was a city called *Rajagriha.* Arya Sudharma came there. People came to see him and to listen to his spiritual discourse. After the discourse the congregation dispersed. Jambu Swami was with Sudharma Swami observing his ascetic code of conduct. Once came near Arya Sudharma Swami, bowed to him with respect and inquired—

"Bhante ! I have grasped the meaning of the eighth *Anga—Antagad-dasha* as explained by Shraman Bhagavan Mahavir. Now please tell me what is the meaning of this ninth *Anga—Anuttaraupapatik-dasha Sutra* ?"

२. तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबू अणगारं एवं वयासी-"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता।"

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तओ वग्गा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?"

"एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा-

जालि-मयालि-उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य।

दीहदंते य लट्ठदंते य वेहल्ले वेहायसे अभए इ य कुमारे॥"

"जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

२. इसके पश्चात् सुधर्मा अनगार ने जंबू अनगार से इस प्रकार कहा-"जंबू ! श्रमण यावत् निर्वाण को प्राप्त भगवान महावीर ने नवम अंग-अनुत्तरौपपातिकदशा के तीन वर्ग कहे हैं।"

"भंते ! श्रमण यावत् निर्वाण को प्राप्त भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन कहे हैं ?"

आर्य सुधर्मा-"जंबू ! निर्वाण को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं-

(१) जालिकुमार, (२) मयालिकुमार, (३) उपजालिकुमार, (४) पुरुषसेनकुमार, (५) वारिषेणकुमार, (६) दीर्घदन्तकुमार, (७) लष्टदन्तकुमार (राष्ट्रदान्त), (८) वेहल्लकुमार, (९) वेहायसकुमार, और (१०) अभयकुमार।"

आर्य जम्बू–"भंते ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, तो भंते ! श्रमण यावत् निर्वाण को प्राप्त भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?"

2. Sudharma Swami said—"Jambu ! Shraman Bhagavan Mahavir has narrated *Anuttraupapatik-dasha Sutra* in three *Vargs* (Parts)."

Jambu said—"Bhante ! How many chapters are in the first part as described by Bhagavan Mahavir ?"

Sudharma Swami said—"Jambu ! Bagavan Mahavir has mentioned ten chapters in the first *Varg*. They are as under—

(1) Jali Kumar, (2) Mayali Kumar, (3) Uvayali Kumar, (4) Purushsen Kumar, (5) Varishen Kumar, (6) Deerghdant Kumar, (7) Lashtdant Kumar, (8) Vehalla Kumar, (9) Vehayas Kumar, and (10) Abhay Kumar."

Arya Jambu said—"Bhante ! Since Bhagavan Mahavir has mentioned ten chapters in the first *Varg*, kindly tell me the meaning of the first chapter as mentioned by Him."

जालिकुमार का वर्णन

३. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। जाली कुमारो। जहा मेहो अट्ठओ दाओ जाव विहरति।

३. जम्बू ! इस प्रकार उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वह ऋद्ध–(वैभव सम्पन्न), स्तिमित–(सभी प्रकार के भयों से मुक्त) और समृद्ध–(व्यापारिक दृष्टि से समृद्धिशाली) था। वहाँ गुणशीलक चैत्य था। वहाँ का राजा श्रेणिक था और उसकी धारिणी नाम की रानी थी। धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। कुछ काल के पश्चात् रानी ने जालिकुमार को जन्म दिया। मेघकुमार के समान जालिकुमार का आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ और आठ-आठ वस्तुओं का दहेज

मिला।[१] (जैसे–आठ करोड़ हिरण्य चाँदी के सिक्के, आठ करोड़ सोने के सिक्के आदि) सब वर्णन मेघकुमार की तरह जानना चाहिए। (विवाह का दृश्य चित्र में देखें।)

तत्पश्चात् जालिकुमार ऊँचे राजमहलों में रहता हुआ मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का उपभोग करता था।

LIFE OF JALI KUMAR

3. Sudharma said—"Jambu ! At that time during that period there was a city called *Rajagriha.* It was prosperous and famous for trade and business. *Gunsheelak Chaitya* (temple) was situated there. Shrenik was its ruler and Dharini was his wife. Once queen Dharini saw a lion in the dream. In due course she gave birth to a son Jali Kumar. Like Megh Kumar, Jali Kumar was also married to eight damsels. They got dowry in counts of eight.[1] (namely eighty million gold coins, eighty million silver coins, etc.)

Thereafter, Jali Kumar started spending his life in the palace enjoying all the pleasures of a married life.

४. सामी समोसढे। सेणिओ निग्गओ। जहा मेहो तहा जाली वि निग्गओ। तहेव निक्खंतो जहा मेहो। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

गुणरयणं तवोकम्मं जहा खंदगस्स। एवं जा चेव खंदगस्स वत्तव्वया, सा चेव चिंतणा, आपुच्छणा। थेरेहिं सद्धिं विउलं तहेव दुरूहइ। नवरं सोलस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चन्दिम-सोहम्मीसाण जाव आरणच्चुए कप्पे नवगेवेज्जयविमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता विजयविमाणे देवत्ताए उववण्णे।

तए णं थेरा भगवंता जालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिणिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति। करित्ता पत्तचीवराइं गेण्हंति। तहेव उत्तरंति जाव इमे य से आयारभंडए।

---

१. ज्ञातासूत्र, अध्ययन १, में मेघकुमार के विवाह आदि का विस्तृत वर्णन है। जहाँ मेघकुमार का उल्लेख है, वहाँ उसी अनुसार वर्णन समझना चाहिए।

1. In chapter one of *Jnata Sutra* is the detailed description of Megh Kumar's marriage. Details here should also be taken as same.

जालीकुमार का विवाह

MARRIAGE OF JALI KUMAR AND HIS RENUNCIATION

चित्र परिचय १५

Illustration No. 15

जालिकुमार का विवाह और दीक्षा

(१) राजा श्रेणिक और धारिणी रानी के अंगजात जालिकुमार का, युवा होने पर आठ राज-कन्याओं के साथ विवाह हुआ। मेघकुमार के समान उसका विवाहोत्सव मनाया गया।

(२) कुछ समय पश्चात् भगवान महावीर राजगृह में पधारे। जालिकुमार ने भगवान का उपदेश सुना। हृदय में वैराग्य जगा और उसने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर संसार का त्याग किया। भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हो उसने मुनि-दीक्षा ग्रहण की। भगवान के श्रीमुख से मुनि-दीक्षा ग्रहण करता हुआ जालि अनगार।

-अनुत्तरौपपातिकदशा, वर्ग १, अ. १, सूत्र ४

MARRIAGE OF JALI KUMAR AND HIS RENUNCIATION

(1) Jali Kumar, the son of king Shrenik and queen Dharini, was married to eight damsels of the royal families when he became young. His marriage was celebrated like that of Megh Kumar.

(2) After sometime, Bhagavan Mahavir came to *Rajagriha*. Jali Kumar heard the spiritual discourse of Bhagavan. His heart felt deep feeling of detachment. He after obtaining the consent of his parents renounced the world. He presented himself before Bhagavan Mahavir and got initiated. Jali Kumar getting initiated by Bhagavan Mahavir.

—Anuttaraupapatik-dasha, Varg 1, Ch. 1, Sutra 4

"भंते !" त्ति भगवं गोयमे जाव एवं वयासी–

४. एक समय भगवान महावीर राजगृह नगरी में पधारे। राजा श्रेणिक भगवान के दर्शन करने के लिए गया। जालिकुमार भी मेघकुमार की तरह भगवान के दर्शन करने के लिए आया। दर्शन करने के पश्चात् जालिकुमार ने भी माता-पिता की अनुमति लेकर प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। स्थविरों की सेवा में रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

उसने स्कन्दक मुनि की तरह गुणरत्नसंवत्सर नामक तप किया।[1] इस प्रकार चिन्तना तथा आपृच्छना के सम्बन्ध में जो वक्तव्यता स्कन्दक मुनि के विषय में है वही वक्तव्यता जालिकुमार के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए।[2] वह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर गया। विशेष यह है कि सोलह वर्षों तक जालिकुमार ने श्रमण-पर्याय का पालन किया। आयुष्य के अन्त में मरण प्राप्त करके वह ऊर्ध्वगमन करके चन्द्र विमान–सौधर्म विमान से ऊपर यावत् अच्युत कल्पों और नवग्रैवेयक विमानों को लाँघता हुआ विजय नामक अनुत्तर विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

उस समय स्थविर भगवन्तों ने जालि अनगार को काल प्राप्त जानकर उनका परिनिर्वाण–निमित्तक कायोत्सर्ग किया। इसके पश्चात् स्थविरों ने जालि अनगार के पात्र एवं चीवरों (वस्त्रों) को लिया और फिर विपुलगिरि से नीचे उतर आये। जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे वहाँ आये। भगवान को वन्दना नमस्कार करके उन स्थविरों ने इस प्रकार कहा–"भगवन् ! आपके शिष्य जालि अनगार (जोकि प्रकृति से भद्र, विनयी, शान्त, अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, कोमलता और नम्रता के गुणों से युक्त, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, भद्र और विनीत थे), वे संथारा करके कालधर्म को प्राप्त हो गये हैं। ये उनके उपकरण (वस्त्र, पात्र) हैं।"

इसके बाद गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके पूछा–

4. Once Bhagavan Mahavir came to *Rajagriha*. King Shrenik came to have his *darshan*. Jali Kumar also came there like Megh Kumar and listened to his spiritual

---

१. इस तप का विशेष वर्णन अन्तकृद्दशासूत्र, अध्ययन १, पृ. २८९ पर देखें।

२. स्कन्दक अणगार का वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४४५ पर देखें।

discourse. He accepted initiation near Bhagavan Mahavir after obtaining permission of his parents. He learnt eleven *Anga Sutras* from experienced and learned monks (*Sthavir*).

He did *Gun-ratna-Samvatsar* chain of fasts like Skandak Saint.[1] The detail of his meditation and inquiries may be understood identical to that of Skandak.[2] He went to *Vipulgiri hill* with other monks. The only difference is that Jali Kumar led the ascetic life for sixteen years. After end of this life-span, swiftly passing the areas of the *Kalpopana* angels and nine *Graiveyaks,* he was re-born in *Vijay Viman,* which is an *Anuttar Viman.*

Then the monks present, finding that monk Jali had died, performed silent meditation in this context. Thereafter, they climbed down *Vipulgiri* with pots and clothes of Jali Kumar and came near Bhagavan Mahavir. They greeted the Lord and said—"Bhante ! Your disciple Jali Kumar has died after observing *Santhara* as prescribed. He was gentle, humble, quiet, almost completely free from anger, ego, deceit and greed. He had humility and simplicity. He fully controlled the activities of his sense organs. Here are his pots and clothes."

Then Gautam Swami greeted the Lord and asked—

५. "एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी जाली नामं अणगारे पगइभद्दए। से णं जाली अणगारे कालगए कहिं गये, कहिं उववण्णे ?"

"एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी तहेव जहा खंदयस्स जाव। विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे।"

"जालिस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?"

---

1. This austerity has been described in detail in *Antakrid-dasha Sutra*, chapter 1, p. 289.
2. Refer to *Antakrid-dasha Mahima* for the story of Skandak Anagar, p. 445.

"गोयमा ! बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

"से णं भंते ! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।"

निक्खेवओ—वं खलु जंबू समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ पढमं अज्झयणं समत्ते ॥

५. गौतम स्वामी ने पूछा—"भंते ! आपका अन्तेवासी जालि अनगार जो प्रकृति से अतीव भद्र था, वह अपना आयुष्य पूर्ण करके कहाँ गया है और कहाँ उत्पन्न हुआ है ?"

भगवान ने उत्तर दिया—"गौतम ! मेरा अन्तेवासी जालि अनगार मेरी अनुमति लेकर, स्वयमेव पाँच महाव्रतों का आरोपण करके यावत् संलेखना-संथारा करके, समाधि को प्राप्त होकर काल के समय में काल करके ऊपर चन्द्र, सूर्य आदि से बहुत ऊपर विजय नामक महाविमान में देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।"

प्रश्न—"भन्ते ! जालिदेव की वहाँ कालस्थिति (आयु मर्यादा) कितनी है ?"

उत्तर—"गौतम ! उसकी कालस्थिति बत्तीस सागरोपम की है।"

प्रश्न—"भंते ! देवलोक से आयु क्षय (आयुष्य कर्म के दलिकों का क्षय) होने पर, भव क्षय (देव सम्बन्धी भव का क्षय) होने पर और स्थिति क्षय (भोगे जाने वाले आयुष्य कर्म की काल मर्यादा पूर्ण) होने पर वह जालिदेव कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?"

उत्तर—"गौतम ! वहाँ से वह महाविदेह वास में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।"

निक्षेप—जम्बू ! इस प्रकार निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

5. Gautam Swami inquired—"Bhante ! Your disciple Saint Jali was extremely gentle. He has since died. Where has he been re-born ?"

Bhagavan Mahavir replied—"Gautam ! My disciple monk Jali Kumar had accepted with my permission five great vows, followed them strictly as prescribed and at the end died in *Santhara* (the process followed in state of consciousness before death). He re-incarnated in the great *Viman* known as *Vijay* which is much higher than Sun and Moon."

Gautam asked—"Bhante ! For how many years he shall remain there ?"

Bhagavan Mahavir said—"Gautam ! His life-span is thirty two *Sagaropam*."

Gautam inquired—"After the life-span as an angel where shall Jali Kumar be re-born ?"

Bhagavan Mahavir replied—"Gautam ! He shall be re-born in Mahavideh and attain salvation from there."

Conclusion—The above is the detailed meaning of the first chapter of the first *Varg* of *Anuttaraupapatik-dasha* as mentioned by Bhagavan Mahavir.

विशेष वर्णन

इस प्रथम अध्ययन में श्रेणिक पुत्र श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी जाली अनगार का संक्षिप्त वर्णन है। इस वर्णन में जो समानता है उसके लिए मेघकुमार एवं स्कन्दक अनगार के वर्णन का संकेत किया गया है। इनका विस्तृत वर्णन अमुक संकेतित सूत्र में देखना चाहिए। यहाँ पर उपयोगी होने से मेघकुमार के वैराग्य व माता-पिता के संवाद का प्रसंग दिया जाता है–

SPECIAL DESCRIPTION

The first chapter contains the description Jali Kumar, son of king Shrenik, who got initiation near Bhagavan Mahavir. About similar passages in this account, the life-story of Skandak and Megh Kumar monks has been referred to. Their life-stories can be seen in *Antakrid-dasha,* p. 445 and *Illustrated Jnata Dharmakatha Sutra,* Chapter 1 respectively. As the dialogue of Megh Kumar with his parents are very important, it is mentioned in brief as under—

■ *मेघ का माता-पिता से निवेदन एवं दीक्षा अनुमति*

...तत्पश्चात् वह मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके जहाँ माता-पिता थे, वहीं आता है, आकर माता-पिता को प्रणाम करता है, प्रणाम करके इस प्रकार कहा–"हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण किया है और उस धर्म का मैं आकांक्षी हूँ, विशेष रूप से आकांक्षी हूँ, मुझे रुचिकर है अर्थात् मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचा है।"

तब उस मेघकुमार के माता–पिता इस प्रकार बोले–"पुत्र ! तुम धन्य हो। तुम पुण्यशाली हो। पुत्र ! तुम कृतार्थ हो। पुत्र ! तुम कृतलक्षण हो कि तुमने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट पुनः-पुनः इष्ट और रुचिकर है।"

तब उस मेघकुमार ने दूसरी बार भी माता-पिता से इस प्रकार कहा–"हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण किया है। वह धर्म मुझे इष्ट है। विशेष इष्ट है। रुचिकर है। अतएव हे तात ! तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित हो गृह त्यागकर अनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।"

उसके बाद इस अनिष्ट, अप्रिय, अप्रशस्त, अमनोज्ञ, अमणाम (मन को न रुचने वाली), अश्रुतपूर्व, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण कर, मन ही मन इस प्रकार के इस महान् पुत्र-वियोग के दुःख से पीड़ित उस धारिणी देवी के रोम-रोम में पसीना आने से सारा शरीर भीग गया, शोकातिरेक से अंग काँप उठे, वह निस्तेज हो गई, दीन और विमनस्क हो गई, हथेली से मसली हुई कमल की माला के समान हो गई, उसी क्षण जीर्ण और दुर्बल शरीर वाली हो गई, लावण्य शून्य कांतिहीन, श्रीविहीन हो गई, पहने हुए गहने अत्यन्त ढीले हो गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसककर भूमि पर गिरकर चूर-चूर हो गये, उत्तरीय वस्त्र खिसक गया, सुकुमाल केशपाश बिखर गया, मूर्च्छा के कारण चेतना नष्ट हो गई, शरीर भारी हो गया, कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपकलता के समान हो गई, महोत्सव के समाप्त हो जाने पर इन्द्र दण्ड के समान श्रीहीन हो गई, शरीर के जोड़-जोड़ ढीले हो गये और पछाड़ खाकर सर्व अंगों से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

■ MEGH KUMAR'S REQUEST TO HIS PARENTS FOR INITIATION AND THEIR PERMISSION

...Megh Kumar after respectfully greeting Bhagavan Mahavir came to his parent's, bowed to them and said—"My dear parents ! I have heard about spiritual conduct from Bhagavan Mahavir and

keenly desire to accept the same. It is my wish to follow it. It appears very beneficial for me."

Then the parents said—"Son ! You are very lucky. You are very auspicious. You are very fortunate. You are blessed that you heard about spiritual conduct from Bhagavan Mahavir and it appealed to you."

Then Megh Kumar again said—"Dear parents ! I have heard about spiritual conduct from Bhagavan Mahavir. It has appealed to me. I was very much influenced by it. I have liked it very much. I now seek your permission to get initiated near Bhagavan Mahavir after getting my head shaved and discarding the family life."

After hearing these lustful, indifferent, unexpected, unacceptable, shocking words and thinking about his separation as unbearable, Dharini started perspiring profusely. She was trembling. The brightness and shine of her body disappeared. She became helpless like a lotus garland badly rubbed with palms. She became extremely weak and feeble. Her beauty vanished. Her ornaments became loose on her body. Her bangles fell on the ground and broke into pieces. Her hair became scattered. She lost her presence of mind due to state of uneasiness. She was feeling heaviness. She became senseless like a branch cut off with an axe. She lost her grandeur like state of a flag staff after the function. The joints of her body became weak. She fell down on the ground.

■ ***धारिणी और मेघ का परिसंवाद***

तत्पश्चात् उस धारिणी देवी को संभ्रमपूर्वक शीघ्र ही सुवर्ण झारी के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचित किया अर्थात् शीतल जल के छींटे डाले जिससे उसका शरीर शीतल हो गया और अन्तःपुर के परिजनों द्वारा उत्क्षेपक, तालवृन्त और वीजनक द्वारा उत्पन्न एवं जलकणों मिश्रित वायु से सचेत किये जाने पर मोतियों की लड़ी के समान नेत्रों से झरझर बरसाती हुई अश्रुधारा से वह अपने वक्ष स्थल को सींचने/भिगोने लगी, वह

दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई और रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना-पसीना होती हुई, लार टपकती हुई, शोक करती हुई, विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार बोली– "हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है, तू हमें कान्त, इष्ट, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम है, हमारे लिए धैर्य और विश्वास का आधार है, कार्य करने में माना हुआ है, बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों के भंडकरंड के समान है, रत्नों से बढ़कर रत्नरूप है, जीवन के श्वासोच्छ्वास के सदृश है, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गूलर के फूल के समान जिसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है ? हे पुत्र ! हम क्षण मात्र के लिए भी तेरा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं, इसलिए हे पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं तब तक मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगो और हमारे कालगत हो जाने के बाद जब परिपक्व अवस्था के हो जायें अर्थात् युवावस्था बीतने के बाद प्रौढ़ अवस्था हो जाये, कुलवंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तन्तु कार्य की वृद्धि हो जाये, लौकिक कार्यों की अपेक्षा न रहे अर्थात् गृहस्थावस्था का दायित्व न रहे उस समय तुम श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित हो, गृह त्यागकर अनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना।"

तब माता-पिता के इस कथन को सुनकर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा– "हे माता-पिता ! आपने मुझसे जो यह कहा कि हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते बेटे हो, यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना, वह वैसा ही है, अर्थात् ठीक है। परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्य भव–जीवन अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, विनश्वर और आपदाओं से व्याप्त है, बिजली की तरह चंचल, जल के बुदबुदे और दूब के नोंक पर स्थित जल कण के समान अनित्य, सन्ध्या अभ्रराग–लालिमा के समान, स्वप्न दर्शन के समान है। सड़न, पतन और विध्वंसन धर्मा है, पश्चात् या पूर्व में अवश्य त्यागने योग्य है। हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि पहले कौन जायेगा और पीछे कौन जायेगा ? अतः हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।"

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा–

"हे पुत्र ! यह तुम्हारी भार्यायें समान शरीर वाली, समान रंग वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन एवं गुणों से युक्त हैं तथा समान राजकुलों से लाई हुई हैं। अतएव हे पुत्र ! इनके साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगो। भुक्त भोगी होने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृहस्थावस्था का त्यागकर अनगारिक दीक्षा अंगीकार कर लेना।"

तत्पश्चात् वह मेघकुमार माता-पिता से इस प्रकार बोला–"हे माता-पिता ! आप मुझसे जो यह कहते हैं–हे पुत्र ! तेरी यह भार्यायें समान शरीर वाली हैं इत्यादि। अतएव हे पुत्र ! इनके साथ विपुल मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगो। भोग भोगने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना, सो ठीक है। लेकिन, हे माता-पिता ! निश्चय ही मनुष्य के कामभोग अशुचि–अपवित्र हैं, अशाश्वत हैं, वमन को झराने वाले हैं, पित्त को झराने वाले हैं, कफ को झराने वाले हैं, शुक्र को झराने वाले हैं, शोणित को झराने वाले हैं, गंदे उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं, खराब मूत्र, मल, पीव से परिपूर्ण हैं, मल, मूत्र, कफ, नासिका मल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न, पतन, विध्वंसन धर्मा हैं और पीछे या पहले अवश्य ही त्यागने योग्य हैं। हे माता-पिता ! पहले कौन जायेगा (मरण को प्राप्त होगा) और बाद में कौन जायेगा–मरेगा, यह कौन जानता है? इसीलिए हे तात ! आपकी अनुमति प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार दीक्षा लेना चाहता हूँ।"

उसके बाद माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा–"हे पुत्र ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह अर्थात् सात पीढ़ियों से आया हुआ यह बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, काँसा, वस्त्र, मणि, मोती, शंख, मूँगा, माणिक आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है जो सात पीढ़ियों तक यथेच्छ देने, भोगने और बाँटने पर भी समाप्त होने वाला नहीं है। अतएव हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि सत्कार की समुन्नति का अनुभोग करके बाद में अनुभूत कल्याण वाले होकर श्रमण भगवान महावीर के निकट मुण्डित हो, गृह त्यागकर अनगार धर्म अंगीकार कर लेना।"

तब वह मेघकुमार माता-पिता से इस प्रकार बोला–"हे माता-पिता ! आप जो कुछ कहते हैं सो ठीक है कि 'हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यावत् पश्चात् अनुभूत कल्याण वाले होकर श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा स्वीकार कर लेना।'

लेकिन, हे माता-पिता ! यह हिरण्य आदि धन द्रव्य अग्निसाध्य, चोरसाध्य, राज्यसाध्य, दायसाध्य, मृत्युसाध्य है अर्थात् इस धन को अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, कुटुम्बीजन बाँट सकते हैं और मृत्यु आने पर अपना नहीं रहता है यथा अग्नि सामान्य है यावत् मृत्यु सामान्य है, सड़न, पतन और विध्वंसन स्वभाव वाला है, पीछे या पहले अवश्य ही त्यागने योग्य है। अतः हे माता-पिता ! कौन यह जानता है

कि पहले कौन जायेगा और बाद में कौन जायेगा? इसलिए हे माता-पिता ! आपकी अनुमतिपूर्वक श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर और गृहवास का त्याग करके अनगार दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।''

तत्पश्चात् जब मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को आख्यापना (सामान्य वाणी), प्रज्ञापना (विशेष वाणी), संज्ञापना (सम्बोधन करने वाली वाणी), विज्ञापना (अनुनय-विनय की वाणी) समझाने, बुझाने, सम्बोधन करने और अनुनय करने पर भी विषयाभिमुखी करने में समर्थ नहीं हुए तब विषयों के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार बोले-''हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, परिपूर्ण, निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है यावत् संशुद्ध, शल्यनाशक, मोक्ष मार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्जरा मार्ग, निर्वाण मार्ग, सर्व दुःखों के नाश का मार्ग है। सर्प के समान लक्ष्य के प्रति निश्चल दृष्टि वाला है, छुरे के समान एक धार वाला है, लोह के जौ चबाने जैसा है, बालू के कौर जैसा नीरस है, गंगामहानदी के प्रतिस्रोत-पूर में तैरने जैसा है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करने जैसा है, तलवार की तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा है, वजन को गले में लटकाने जैसा है, तलवार की धार पर चलने जैसा है। इसके अलावा हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी अथवा औद्देशिक अथवा क्रीतकृत अथवा स्थापित (साधु के लिए रखा हुआ) अथवा रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुनः साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ) अथवा दुर्भिक्ष भक्त, कान्तार भक्त, वर्दलिया भक्त (वर्षा के समय उपाश्रय में आकर बनाया गया भोजन) अथवा ग्लान भक्त (रोगी गृहस्थ के नीरोग होने की कामना से साधु को दिया जाने वाला भोजन) आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है। इसी प्रकार मूल, कंद, फल, बीज और हरित वनस्पति का भोजन भी नहीं कल्पता है।

इसके अलावा दूसरी बात यह है कि हे पुत्र ! तू सुख भोगने लायक है, दुःख सहने योग्य नहीं है, तू शीत, उष्ण, भूख, प्यास भी सहन करने में समर्थ नहीं है और वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले विविध विकारों, रोगों और आतंकों, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनों, बाईस परीषहों और उपसर्गों को अदीन होकर सम्यक् प्रकार से सहन करने के लायक भी नहीं है। अतएव हे लाल ! तू मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोग। भोग भोगने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम को त्यागकर कल्याणकर अनगार दीक्षा ग्रहण करना।''

उसके बाद मेघकुमार माता-पिता की इस बात को सुनकर माता-पिता से इस प्रकार बोला-''हे माता-पिता ! आपने जो कुछ कहा सो ठीक वैसा ही है कि 'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है इत्यादि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिए यावत् प्रव्रज्या स्वीकार कर

लेना।' लेकिन हे माता-पिता ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन क्लीवों–नपुंसकों को, कायरों को, कुत्सित पुरुषों को, इहलोक सम्बन्धी विषय-सुख की अभिलाषा करने वालों को, परलोक में सुख की इच्छा करने वाले सामान्यजनों के लिए ही दुष्कर है लेकिन धीर और दृढ़ संकल्पी पुरुषों को पालन करने में कठिनाई क्या है? अतएव हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा अनुमति लेकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।'' (ज्ञातासूत्र, अध्ययन १)

■ DIALOGUE BETWEEN DHARINI AND MEGH KUMAR

Thereafter, Dharini was given first aid by sprinkling cold water. She was provided fresh air by fan. Then she started weeping profusely. While weeping, perspiring, crying, in a sad and pathetic voice, she said—"O son ! You are my only son. You are very lovable, desirable to me. I depend on you. You are expert in your duties. You are like a box of ornaments, a treasure of virtues. You are to me like my very life breath. You provide ecstatic happiness to me. O son ! I cannot bear separation from you even for a moment. So till we (I and your father) are alive, you enjoy family life. After our death, when your period of youth is gone and you become old, and further expansion of the family materializes and there are no family responsibilities, you may get initiated near Bhagavan Mahavir after getting your head shaved and discarding your household."

At this Megh Kumar said—"O dear parents ! Whatever you have said is true. But, O parents ! This span of life is ephemeral, not everlasting, full of trouble, short-lived, fluctuating like lightening, extremely momentary like a flated water drop or a drop of water on a blade of grass, short-lived like redness at sunset. It is just like a dream. It is likely to fall and vanish. It is worthy to be discarded now or at a later stage. O dear parents ! Nobody knows who will die earlier and who will die later. So dear parents ! I wish to get shaved, to discard my household and to get initiation near Bhagavan Mahavir after obtaining your permission."

Then the parents said—"Your wives are similar in complexion, in age, in beauty and in grandeur. They belong to families similar to that of our status. So dear son ! Enjoy the family life with them. Thereafter you get initiated."

Then Megh Kumar said—"You have rightly said that I should first enjoy with my wives. But dear parents, the worldly enjoyments are certainly unclean, temporary, worthy of being vomited out, cause of illness in the body. They affect the blood in the body. They cause bad smell, dirty urine. The stool becomes repulsive. They generate filth, stool, urine, vomit and other diseases arising out of inner ill health and blood. They are all temporary, despicable, worthy of decline and worthy of being discarded sooner or later. O dear parents ! Who knows, who will die first. So with your permission, I want to get initiated near Bhagavan Mahavir."

Thereafter, Megh Kumar's parents said—"O son ! The wealth (gold, silver, other material, clothes, jewellery, pearls, rubies, emerald, etc.) collected during the last seven generations by the grandfather, his father and the forefathers shall not finish even if it is enjoyed to the full. So, O son ! First enjoy this wealth, thereafter get initiated near Bhagavan Mahavir after getting your head shaved and discarding your household."

Then Megh Kumar said—"Whatever you say is correct. But dear parents ! This wealth (gold etc.) can be destroyed by fire, it can be stolen or may have to be left after death. It can be shared by family members. It has to be left sooner or later. So dear parents ! It is not known who is going to leave this world first. Therefore, please permit me to get initiated which is my earnest desire."

Thereafter, when Megh Kumar's parents found that their dialogue, special instances, entreats and detailed talk had no effect on Megh Kumar and he was firm in his decision, then in order to influence him about dangers, difficult and peculiar situation in the life of monk, they said—"O son ! This *Nirgranth*

Pravachan—the spiritual discourse certainly explains the path to salvation. It is pure, it destroys obstacles, it annihilates *Karmas,* it leads to liberation, it removes all troubles. It is pointing directly towards the goal like a snake on its prey, it is like walking on sharp edge of a sword, it is like chewing grains of iron, it is tasteless like a morsel containing sand, it is like swimming the river Ganga, it is like crossing an ocean with one's arms, it is like carrying a heavy weight in the neck. Further, monks are not allowed to take food specially prepared for them, bought or exchanged for them, kept for them, arranged for them, prepared at their place of stay during rainy season, prepared for a suffering person, and offered so that the suffering one may regain health. Further the monk is also not allowed to take green vegetables and those which grow underground.

Moreover O son ! You are worthy of enjoying life. You are not accustomed to bearing troubles. You are not fit for enduring cold, heat, hunger, thirst. You are not able to tolerate quietly the affect of diseases arising from physical disorders in the body, the conditions against the normal likes of your senses. The twenty two inflictions and affliction are the result of situations beyond your control. You cannot bear such situation with equanimity. So, O my dear son ! You enjoy the family pleasures. Thereafter, you may get initiated."

Then Megh Kumar said—"O dear parents ! You have rightly said about the *Nirgranth Pravachan* that it is very difficult to follow but it is so for the weak, coward, those who are deeply involved in worldly pleasures, those who desire worldly pleasures in the next life. But it is not difficult for courageous, self-determined persons to follow such a conduct. So, dear parents, I want to get initiated after your consent." (*Illustrated Jnata Dharma-katha,* Chapter 1)

■ *राजगृह नगर*

मगध जनपद की राजधानी तथा जैन संस्कृति और बौद्ध संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। जैन परम्परा के अनुसार राजगृह में भगवान महावीर ने चौदह वर्षावास किए थे। यहाँ पर दो सौ से अधिक बार भगवान महावीर के समवसरण लगे थे।

प्राचीन भारत का यह एक सुन्दर, समृद्ध और वैभवशाली नगर था। श्रेणिक के पिता प्रसेनजित ने राजगृह बसाया था। जरासन्ध के युग में भी राजगृह मगध जनपद की राजधानी था।

राजगृह का दूसरा नाम गिरिव्रज भी प्रसिद्ध था, क्योंकि इसके आसपास वैभारगिरि, विपुलगिरि, उदयगिरि, सुवर्णगिरि तथा रत्नगिरि नाम के पाँच पर्वत हैं। वर्तमान में राजगृह 'राजगिर' नाम से प्रसिद्ध है।

■ **RAJAGRIHA**

It was the capital of Magadh. It was the centre of Buddhist and Jain cultures. According to Jain scriptures, Bhagavan Mahavir spent fourteen *chaturmas* (monsoon stay) in *Rajagriha.* More than two hundred congregations were held in *Rajagriha* that were addressed by Bhagavan Mahavir.

The other name of *Rajagriha* was *Girivraj* because five hills namely *Vaibhargiri, Vipulgiri, Udaygiri, Svarangiri* and *Ratnagiri* were close to it. At present *Rajagriha* is famous as *'Rajgir'.*

■ *आर्य सुधर्मा*

भगवान महावीर के पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू के गुरु थे।

आगमों में प्रवक्ता के रूप में प्रायः सर्वत्र गणधर सुधर्मा का उल्लेख मिलता है।

सुधर्मा कोल्लाग सन्निवेश के रहने वाले, अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम धम्मिल तथा माता का नाम भद्दिला था। यह वेद-वेदांग विद्याओं में पारंगत परम विद्वान् थे, और पाँच सौ शिष्यों के पूजनीय गुरु भी थे।

गौतम गणधर तथा आर्य सुधर्मा के तप-त्याग, तेजोदीप्त व्यक्तित्व का अत्यन्त सुन्दर वर्णन औपपातिकसूत्र में मिलता है। विशेष वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४३१ पर देखें।

आर्य सुधर्मा ने भगवान महावीर के पावापुरी के प्रथम समवसरण में पचास वर्ष की आयु में दीक्षा ली, बयालीस वर्ष तक छद्मस्थ रहे। भगवान महावीर निर्वाण के पश्चात् उनके प्रथम पट्टधर बने। बारह वर्ष बाद वे केवली हुए और आठ वर्ष केवली अवस्था में रहे। कुल सौ वर्ष का आयुष्य था।

गणधरों में सुधर्मा सबसे अधिक दीर्घजीवी थे। भगवान ने सुधर्मा को सर्वप्रथम गण समर्पण किया था। अन्य गणधरों ने भी अपने-अपने निर्वाण समय पर अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित किये थे।

■ ARYA SUDHARMA

Sudharma was the fifth *ganadhar* of Bhagavan Mahavir. He was the *guru* of Jambu Swami.

In scriptures, Sudharma is often called the narrator of the scriputres.

Sudharma was a Brahmin of Kollag Sannivesh and belonged to Agni Vaishyayan sub-caste. Dhammil was his father and Bhaddila was his mother. He was an expert in study of Vedas and Vedic literature. He had five hundred disciples.

In *Aup-patik Sutra* there is a detailed account of Gautam and Sudharma, their austerities, their personal traits. Special account is also in *Antakrid-dasha Mahima*, p. 431.

Sudharma was initiated near Mahavir at the age of fifty, he did his ascetic practices for forty two years and then attained perfect knowledge (*Keval Jnan*). He became the first Acharya of the ascetics after Mahavir attained *nirvana*. He remained in state of perfect knowledge and perfect perception for twenty years. Thus, his total life-span was hundred years.

Amongst the *ganadhars,* Sudharma lived for the longest period. Bhagavan Mahavir bestowed on him the responsibilities of managing the *Sangh* (the entire community). The other *ganadhars* also handed over their monks to him when they were nearing salvation.

■ *आर्य जम्बू*

आर्य सुधर्मा के शिष्य आर्य जम्बू एक परम जिज्ञासु के रूप में आगमों में सर्वत्र प्रश्नकर्त्ता के रूप में उपस्थित मिलते हैं। इनका विशेष परिचय कल्पसूत्र स्थविरावली से जानना चाहिए तथा अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४३३ पर विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

■ **ARYA JAMBU**

Jambu Swami was the disciple of Arya Sudharma. He is the prime questioner in the *Agams*. A detailed account about his life is in *Kalp Sutra* and in *Antakrid-dasha Mahima*, p. 433.

■ ***सिंह-स्वप्न***

किसी महापुरुष के गर्भ में आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। इस प्रकार का श्रेष्ठ स्वप्न सम्बन्धी वर्णन भारतीय साहित्य में प्रचुर मात्रा में है।

तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती की माता चौदह महास्वप्न देखती है। वासुदेव की माता चौदह में से कोई भी सात स्वप्न देखती है। बलदेव की माता चौदह में से कोई भी चार स्वप्न देखती है। इसी प्रकार माण्डलिक राजा की माता एक महास्वप्न देखती है।

सिंह का स्वप्न वीरता सूचक और मंगलमय माना गया है।

स्वप्नों के विषय में कल्पसूत्र त्रिशला माता के स्वप्न दर्शन प्रसंग में तथा अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४६९ पर देखें।

■ **DREAM OF LION**

When a great man is to take birth normally his mother sees a dream. Detailed account of dreams is available in Indian literature.

The mother of a *Tirthankar* and *Chakravarti* (the conqueror of the entire sub-continent) sees fourteen auspicious dreams. The mother of Vasudev sees seven dreams out of the said fourteen. The mother of Baldev sees four dreams out of the said fourteen. The mother of a Mandlik king sees one auspicious dream.

The dream of lion predicts heroism and is considered auspicious.

For detailed account of dreams see the description of dreams of mother Trishla in *Kalp Sutra* and *Antakrid-dasha Mahima*, p. 469.

■ ***गुणशीलक चैत्य***

राजगृह नगर के बाहर ईशानकोण में गुणशील नामक एक उद्यान था।

राजगृह के बाहर अन्य बहुत-से उद्यान होंगे, परन्तु भगवान महावीर गुणशीलक उद्यान में ही विराजित होते थे। इसलिए आगमों में इसी का वर्णन मिलता है। यहाँ पर भगवान महावीर के ग्यारह गणधरों ने इसी गुणशीलक उद्यान में अनशनपूर्वक निर्वाण प्राप्त किया था।

■ ***GUNSHEELAK CHAITYA***

At the outskirts of *Rajagriha* city in the north-east there was a garden called Gunasheelak.

There might have been many gardens outside *Rajagriha*. But Bhagavan Mahavir always stayed in *Gunsheelak* garden. So we find mention of it in the *Agams*. All the eleven *ganadhars* of Bhagavan Mahavir did their fast before death and attained liberation in this *Gunsheelak* garden.

■ ***श्रेणिक राजा***

मगध देश का प्रतापी शासक था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है। राजा श्रेणिक का वर्णन जैन ग्रन्थों तथा बौद्ध ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इतिहासकार कहते हैं कि श्रेणिक राजा हैहय कुल और शिशुनाग वंश का था।

बौद्ध ग्रन्थों में 'सेनिय' और 'बिंबिसार' ये दो नाम मिलते हैं। जैन ग्रन्थों में सेणिय, भिंभसार और भंभासार आदि नाम उपलब्ध हैं। श्रेणिक भगवान महावीर का क्षायिक सम्यक्त्वधारी परम श्रद्धालु भक्त राजा था। उसकी रानी चेलना पार्श्वनाथ परम्परा के उपासक वैशाली नरेश राजा चेटक की सबसे छोटी पुत्री थी। चेलना की प्रेरणा से श्रेणिक जिनधर्म का परम अनुरागी बना और अनाथी मुनि द्वारा प्रतिबोधित हुआ। श्रेणिक राजा महावीर के प्रति इतना सर्वात्मना समर्पित था कि जब मेघकुमार की दीक्षा हुई तो उसने कहा-"यह निर्ग्रन्थ धर्म ही परम सत्य है, श्रेष्ठ है, परिपूर्ण है, और यही एक मात्र मुक्ति का मार्ग है।" श्रेणिक ने अपने राज्य में घोषणा की थी कि "मेरे राज्य से कोई भी पारिवारिक व्यक्ति भगवान महावीर के पास दीक्षा लेना चाहे तो मैं उसे नहीं रोकूँगा।" इस घोषणा से प्रेरित होकर जालि, मयालि आदि २३ पुत्र दीक्षित हुए जिनका वर्णन इस सूत्र में आया है। कोणिक के देहावसान के पश्चात् भी भगवान महावीर जब चम्पा नगरी पधारे तो पद्म, महापद्म आदि दस श्रेणिक पौत्रों ने भी दीक्षा ग्रहण की। श्रेणिक पुत्र अजातशत्रु और उसका पुत्र उदायन तीसरी पीढ़ी तक जिनधर्म की आराधना करते रहे। (विशेष वर्णन देखें, जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, पृ. ७३८, अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४३९)

■ KING SHRENIK

He was the famous ruler of Magadh. It is said that he received initially spiritual knowledge from Anathi Muni and then became a householder disciple of Bhagavan Mahavir. Jain and Buddhist scriptures are filled with stories of king Shrenik. Historians say that king Shrenik belonged to *Haihay* family and Shishunag dynasty.

In Buddhist scriptures, we find two names—'Seniya' and 'Bimbisar'. In Jain literature, we find Seniya, Bhimbhsar, Bhambhasar and other names. Shrenik was an extremely devoted disciple of Mahavir having ideal, unflinching faith in Him and his faith was *Kshayik* (*i.e.,* leading to perfection—having no element of doubt etc. or desire for any other faith). His wife was the youngest daughter of king Chetak of Vaishali who was a follower of Bhagavan Parshvanath. It was the influence of Chelana that made Shrenik, interested in *Jina Dharma* and ready to get initial knowledge from Anathi Muni. He was so much devoted to Bhagavan Mahavir that at the time of initiation of his son Megh Kumar, he said—"The *Nirgranth Dharma* is the truest of all, it is complete and ideal. It is the only path leading to salvation." Shrenik had proclaimed in his kingdom—"If any one desires to be initiated near Bhagavan Mahavir, the king shall not stand in his/her way." Influenced by this announcement, his ten sons—Jali, Mayali and others got initiated whose life-story is mentioned in this *Sutra.* Even after the death of Konik, when Mahavir came to Champa city, Shrenik's ten grandsons—Padma, Mahapadma and others got initiated. Shrenik's son Ajatshatru and Ajatshatru's son Udayan were staunch followers of *Jina Dharma.* (for detailed study see *Jain Dharma ka Maulik Itihas*, Part I, p. 738; *Antakrid-dasha Mahima*, p. 439)

■ आगमों में और आगमोत्तर साहित्य में गणधर गौतम के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा मिलता है। (इनका विस्तार से वर्णन 'इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन' पुस्तक से जानना चाहिए।)

■ In *Agams*, and the literature of the later period, there is a detailed account about life and conduct of *Ganadhar* Gautam.

(for detailed study see 'Indrabhuti Gautam : Anusheelan' by Ganesh Muni Shastri.)

■ **स्कन्दक अणगार**

स्कन्दक नामक वेद-वेदांग ज्ञाता विद्वान् संन्यासी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले गद्दभालि परिव्राजक का शिष्य था और गौतम स्वामी का पूर्वजन्म का मित्र था। तत्त्वचर्चा में वह भगवान महावीर के शिष्य पिंगलक निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका; फलतः श्रावस्ती के लोगों से जब उसने सुना कि भगवान महावीर कृतंगला नगरी के बाहर छत्रपलाश उद्यान में पधारे हैं तो स्कन्दक भी जिज्ञासु बनकर भगवान के पास जा पहुँचा। अपना समाधान मिलने पर वह वहीं पर भगवान का शिष्य हो गया।

स्कन्दक मुनि ने स्थविरों के पास रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। भिक्षु की बारह प्रतिमाओं की क्रम से उत्कृष्ट तप साधना की, आराधना की। गुणरत्नसंवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल, क्षीण और अशक्त हो गया। अन्त में राजगृह के समीप विपुलगिरि पर जाकर एक मास की संलेखना की। काल करके बारहवें देवलोक में गया। वहाँ से महाविदेह से सिद्ध होगा। स्कन्दक मुनि की दीक्षा-पर्याय १२ वर्ष की थी। (विशेष वर्णन–भगवतीसूत्र, शतक २, उद्देशक १ में देखें तथा तृतीय वर्ग में धन्य अनगार प्रसंग में भी देखें।)

■ **SKANDAK ANAGAR (THE MONK)**

Skandak was a learned *Sanyasi*. He had an extensive knowledge of *Vedas* and Vedic literature. He was the disciple of Gaddabhali—a *Parivrajak* (monk). In his previous life (life just before his present birth) he was a friend of Gautam Swami. In spiritual dialogue, he was unable to reply to the queries raised by Pingalak *Shravak*. When he heard from the people of Shravasti that Bhagavan Mahavir has arrived at Chhatra Palash garden in the outskirts of Kritangala town, he thought that he should go to Bhagavan Mahavir to know the satisfactory answers to the said queries. He was satisfied with the replies and became a disciple of Bhagavan Mahavir.

Ascetic Skandak learnt all the eleven *Anga Sutras* from learned monks. He accepted the twelve *Pratimas* (restraints) of a monk in their respective order. When his physical body grew weak, feeble and powerless, he went to *Vipulgiri* hill, accepted *Samlekhana* and

the fast till the last breath, which lasted for one month. After his death he was re-born in twelfth heaven. From there he shall be re-born in *Mahavideh* and get salvation from there. Skandak monk remained initiated for twelve years. (for detailed study see *Bhagavati Sutra,* Shatak 2, Uddeshak 1 and in the third *Varg*—Dhanya *Anagar* of the present *Sutra.*)

■ *विपुलगिरि*

आगमों में अनेक स्थलों पर विपुलगिरि पर्वत का उल्लेख मिलता है। इस पर्वत पर एक कृष्ण वर्ण का विशाल शिलाखण्ड था। बहुत-से साधकों ने यहाँ पर संलेखना व संथारा किया था। स्थविरों की देखरेख में घोर तपस्वी यहाँ आकर संलेखना करते थे।

जैन ग्रन्थों में इन पाँच पर्वतों का उल्लेख मिलता है–

(१) विपुलगिरि, (३) उदयगिरि, (२) रत्नगिरि, (४) सुवर्णगिरि, (५) वैभारगिरि।

■ ***VIPULGIRI***

In the *Agams* (scriptures), there is a mention of *Vipulgiri* at several places. There was a large blackstone platform. At this hill, many monks did *Samlekhana* (introspection of their entire life-span) and *Santhara* (discarding of food and water till the last breath) on this platform. The great ascetics used to do *Samlekhana* here in the presence of old and learned monks (*Sthavirs*).

There is mention of five hills in Jain scriptures. They are—

(1) *Vipulgiri,* (2) *Ratnagiri,* (3) *Udaygiri,* (4) *Svarangiri,* (5) *Vaibhargiri.*

■ *पाँच अनुत्तर विमान*

प्रस्तुत सूत्र (५, ६) में जालि, मयालि आदि मुनियों के विषय में कहा है–"वे अन्तिम संलेखना आराधना करके मानव शरीर त्यागकर अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए।" अतः यहाँ यह ज्ञातव्य है कि अनुत्तर विमान कहाँ है, उनमें देवताओं की स्थिति क्या है ?

मनुष्य (मध्य) लोक में स्थित मेरु पर्वत के समभूतल पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर ज्योतिष चक्र प्रारम्भ होता है। ७९० योजन पर तारा, ८०० योजन पर सूर्य, ८८० योजन पर चन्द्र,

८८३ से ९०० योजन तक नक्षत्र और फिर बुध, गुरु, शुक्र आदि ग्रह हैं। ये सब मध्य लोक में ही हैं। पृथ्वीतल से ९९,००० योजन ऊपर मेरु पर्वत समाप्त हो जाता है। उससे क्रोडाक्रोड योजन ऊपर जाने पर १२ कल्प (देव विमान) प्रारम्भ होते हैं। पहले दो-(१) सौधर्मकल्प, तथा (२) ईशानकल्प अर्ध-चन्द्राकार आमने-सामने हैं। उनसे असंख्य योजन ऊपर (३) सनत्कुमार, तथा (४) माहेन्द्रकल्प भी इसी प्रकार अर्ध-चन्द्राकार एक-दूसरे के बराबर में स्थित है। फिर (५) ब्रह्मकल्प, (६) लांतक, (७) महाशुक्र, और (८) सहस्रारकल्प ये चार एक-दूसरे के ऊपर स्थित हैं। इनके बीच में भी असंख्य योजन का अन्तर है। पुनः (९) आनत, (१०) प्राणत अर्ध-चन्द्राकार एक-दूसरे के सामने हैं। इनके ऊपर (११) आरण, (१२) अच्युतकल्प भी इसी प्रकार अर्ध-चन्द्राकार आमने-सामने स्थित हैं।

कल्प विमानों से अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर जाने पर तीन-तीन के जोड़ में अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक तथा उपरितन ग्रैवेयक ये नौ देव विमान हैं। लोक पुरुष के ग्रीवा (गर्दन) स्थान पर होने के कारण इन्हें ग्रैवेयक कहा जाता है। नव ग्रैवेयक विमानों से अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर अत्यन्त विशुद्ध वातावरण में पाँच महाविमान हैं, जिन्हें अनुत्तर विमान कहा जाता है। अनुत्तर का अर्थ है जिससे श्रेष्ठ अन्य कोई देव विमान नहीं है। इनकी आकृति चित्र में बताई गई है। इनके नाम हैं-(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित तथा सबसे ऊपर (५) सर्वार्थसिद्ध महाविमान। यहाँ के सभी देव समान ऋद्धि वाले, समान स्तर वाले हैं, अतः इन्हें 'अहमिन्द्र' (स्वयं ही स्वयं का इन्द्र) कहते हैं। वे अल्प कषाय वाले, विषयेच्छाओं से रहित हलुकर्मी आत्मा हैं। अनुत्तर विमानों से केवल बारह योजन ऊपर ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी है जिसे सिद्धशिला कहा जाता है। उससे आगे अलोक है। (स्पष्टता के लिए चित्र देखें, भगवतीसूत्र, शतक १४, उद्देशक ८; तथा गणितानुयोग, ऊर्ध्वलोक खण्ड, पृ. ६७१-६७२)

■ FIVE *ANUTTAR VIMAN*

It is mentioned in the above said *Sutras* 5 and 6, about Jali, Mayali and others that "they died after practicing the final *Samlekhana.* As such they were re-born in *Anuttar Viman."* It is therefore, worth knowing where the *Anuttar Vimans* are located and what is the life-span of the angels living there ?

The *Jyotish Chakra* (the stellar region) begins at a height of 790 *yojans* from the level of earth on which we live (middle world). The scattered stars are at a height of 790 *yojans.* The sun is at a height of 800 *yojans* and moons are at a height of 880

पांच अनुत्तर विमान
FIVE UNIQUE VIMAN IN
THE HIGHER WORLD
में देव विमान

चित्र परिचय १९

Illustration No. 19
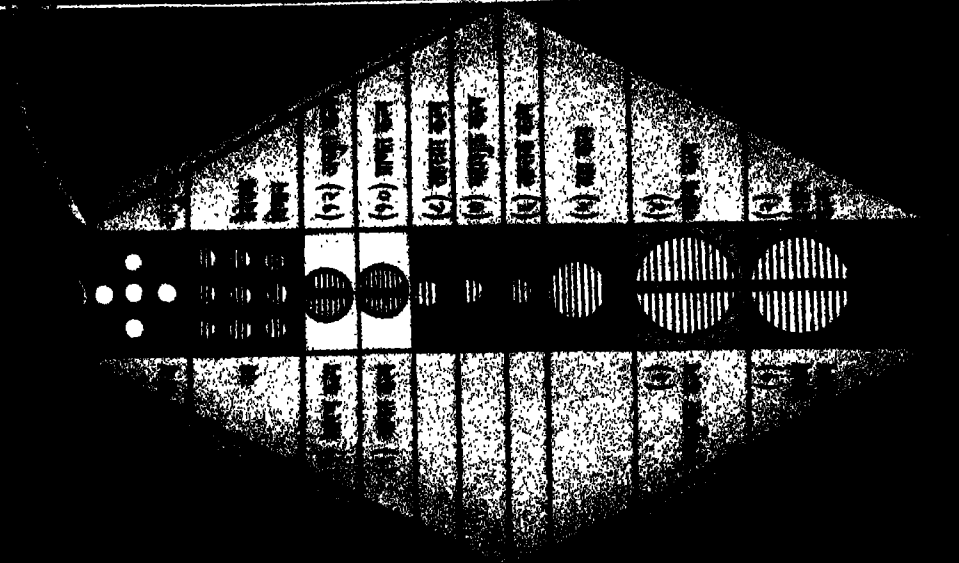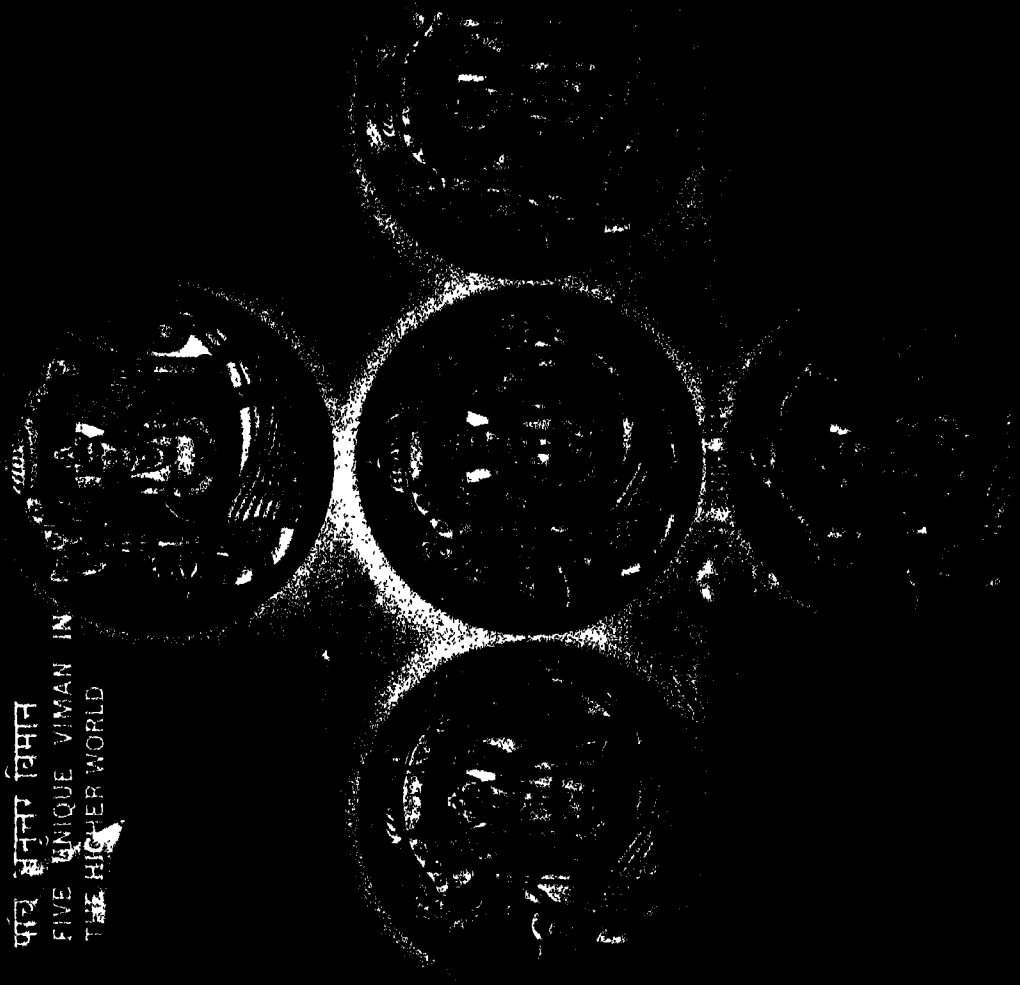
ऊर्ध्वलोक में पाँच अनुत्तर विमान

जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में रत्नप्रभा पृथ्वी के सम भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, ताराओं से अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर जाने पर अर्ध-चन्द्राकार में सौधर्मकल्प नामक कल्प है। सौधर्मकल्पवासी देवों के बत्तीस लाख विमान हैं। यहाँ का स्वामी शक्रेन्द्र है। इसी के बराबर अर्ध-चन्द्राकार में दूसरा ईशानकल्प है। इनके २८ लाख विमानों का स्वामी ईशानेन्द्र है। इसके ठीक ऊपर अर्ध-चन्द्राकार, तीसरा सनत्कुमार तथा चौथा माहेन्द्रकल्प स्थित है। इनके ऊपर पूर्ण चन्द्राकार, पाँचवाँ ब्रह्मकल्प, उसके ऊपर छठा लान्तककल्प, उससे ऊपर सातवाँ महाशुक्रकल्प और उससे ऊपर सीध में आठवाँ सहस्रारकल्प स्थित है। इससे ऊपर सौधर्मकल्प की आकृति के समान ऊर्ध्व दिशा में, अर्ध-चन्द्राकार नौवाँ आनत, दसवाँ प्राणतकल्प तथा उससे ऊपर उसी आकार में ग्यारहवाँ आरण तथा बारहवाँ अच्युतकल्प हैं।

इन कल्पों से अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर तीन-तीन के क्रम से नवग्रैवेयक विमान स्थित हैं और उनसे अनेक क्रोडाक्रोड योजन ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं। ये केवल पाँच ही विमान हैं। यहाँ अनुत्तरौपपातिक देव निवास करते हैं। यहाँ के सभी देव अहमिन्द्र कहलाते हैं।

- प्रज्ञापना पद २

(गणितानुयोग, ऊर्ध्वलोक वर्णन, पृ. ६६०

FIVE UNIQUE *VIMANS* IN THE HIGHER WORLD

In the South of Mandar Mountain in *Jambu Dveep*, there are moons, suns, planets, *nakshatras* and stars located at a higher level from the level of Ratna-prabha land. Further, at a height of many-many millions of millions *yojan* there is Saudharm Kalp heavenly abode, semi-circle in shape. There are 3.2 million *Vimans* of gods residing in Saudharm Kalp. Their master is Shakrendra. Equal to it in size is the second heaven—Ishan Kalp. It has 2.5 million Vimans and their ruler is Ishanendra. At a further height above the said two heavens are the third heaven. Sanat Kumar, and the fourth heaven, Mahendra Kalp. Both of them are semi-circular in shape. Above them is the fifth heaven Brahm Kalp, complete circle in shape and above it Lantak Kalp. The sixth heaven, seventh heaven Mahashukra and eighth heaven Sahasrar Kalp, each of them is at a higher altitude from the previous one and all these are completely circular in shape. Above the eighth heaven are Aanat, the ninth heaven and Pranat, the tenth heaven. Both are semi-circle in shape like Saudharm Kalp. Above them are eleventh heaven Aaran and twelfth heaven Achyut and they are also semi-circle in shape.

Millions and millions *yojan* above them are the nine Graiveyak Vimans in group of three, every group higher to the previous one in that order. Millions and millions *yojan* above them are the five Anuttar Vimans. These are only five and *Anuttaraupapatik* gods live in them. All the gods in these heavens are independent and rulers of themselves. So they are known as Ahamendra (Self-ruled).

—Pragyapana Pad 2

(Ganitanuyog, Urdhvalok Description, page 660)

yojans (from the earth). The planets (*Nakshatras*) are at a height of 883 *yojans* to 900 *yojans.* After that are planets *Budh* (Mercury), *Guru* (Jupiter), *Shukra* (Venus), *Mangal* (Mars), and *Shani* (Saturn). They are all in the central or middle universe. *Meru* mountain is upto 99,000 *yojans* from the ground level. After going innumerable *yojans* higher (from the top level of *Meru*) the abodes (*Viman*) of *vaimanik* gods exist. The first two—*Saudharmkalp* and *Ishankalp* are hemispherical facing each other. Still innumerable *yojans* higher from them are *Sanatkumarkalp* and *Mahendrakalp.* They are also hemispherical facing each other. The fifth to eighth *Devlok* (heaven)—*Brahmkalp, Lantak, Mahashukra* and *Sahasrar* are still higher and higher above each other in respective order at heights of innumerable *yojans* from one another. The ninth and tenth (heaven) *Aanat* and *Pranat* are also hemispherical facing each other above the eighth heaven. Above them are eleventh and twelfth heavens—*Aaran* and *Achyutkalp.*

After going many hundreds of millions multiplied by millions (*krodakrod*) *yojans* higher, there are nine heavens (*Graiveyaks* in groups of three each as lower *Graiveyaks,* middle *Graiveyaks* and higher *Graiveyaks.* If we consider the entire *Lok* (universe) in the shape of a man, these *Graiveyaks* are locked at the neck of the man and so they are called *Graiveyaks.* After going still higher many *krodadrod yojans,* in a very pure environment are located the five great *Vimans* (heavens). They are called *Anuttar Viman.* They are shown in the illustration. They are (1) *Vijay,* (2) *Vaijayant,* (3) *Jayant,* (4) *Aparajit,* and (5) *Sarvarthsiddh* the greatest heaven. All the angels living in these *Vimans* possess same status and same wealth. So they are called *'Ahamindra'* (master of themselves). They have least possible passions and are devoid of sexual desires. There *Karmas* are the barest minimum. *Ishat-pragbhara* land which is also called *Siddha Shila* is only twelve *yojan* higher from *Anuttar Vimans.* Beyond it is *Alok.* (For pictorial description see the illustration *Bhagavati Sutra,* Shatak 14, Uddeshak 8; *Ganitanuyog,* Urdhvalok Khand, pp. 671-672.)

■ *महाविदेह क्षेत्र*

उपासकदशासूत्र में बताया है दस श्रावकों का उपपात सौधर्मकल्प के विभिन्न विमानों में हुआ। वहाँ से च्यवकर आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह वर्ष (वास) में जन्म लेकर सिद्ध होंगे। अनुत्तरौपपातिकसूत्र में तैंतीस अनगारों के विषय में भी यही कहा है। वे पाँच अनुत्तर विमान से च्यवकर महाविदेह वर्ष में मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे। यह जिज्ञासा होती है कि क्या महाविदेह वर्ष में जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य मोक्षगामी ही होता है?

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में बताया है वहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन वाले और छह प्रकार के संस्थान वाले, पाँच सौ धनुष की ऊँचाई वाले होते हैं। उनकी उत्कृष्ट आयुष्य पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण होती है। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर कुछ मनुष्य नरकगामी भी होते हैं तथा कुछ स्वर्ग तथा मोक्षगामी भी होते हैं। किन्तु यह नियम नहीं है कि वहाँ जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य मोक्षगामी हो।

■ ***MAHAVIDEH KSHETRA* (AUE)**

It is mentioned in *Upasak-dasha Sutra* that the ten *Shravaks* mentioned therein after completing their span of life, as human beings, were re-born in different *Vimans* of first heaven, viz., Saudharm. From there, they shall be re-born in *Mahavideh* and attain salvation from there. The same thing is mentioned about thirty three *Anagars* in *Anuttaraupapatik Sutra*. After completing their life-span in five *Anuttar Vimans,* they shall be re-born in *Mahavideh* and attain salvation from there. A question arises whether every one born in *Mahavideh* attains salvation in that very life.

It is mentioned in *Jambu dveep Prajnapti* (an *Upang Sutra*) that the human beings in *Mahavideh Kshetra* can have any one of all the six bone-formations and any one of the six shapes of their body. Their height is 500 *Dhanush.* Their maximum life-span is 10 million *poorva.* After completing their life-span some are re-born in hell, same in heaven and same attain salvation. It is not a rule that every one born in *Mahavideh* attains salvation.

■ *महाविदेह क्षेत्र कहाँ है ?*

जम्बूद्वीप के नक्शे पर ध्यान देकर देखने से पता चलता है कि इसके ठीक मध्य में एक लाख योजन का सुमेरु पर्वत है। इस पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो विशाल पर्वतों से इसकी सीमा बँधती है। उत्तर में नीलवंत पर्वत है तथा दक्षिण में निषध पर्वत है। मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण में नील-निषध पर्वत को स्पर्श करते हुए हाथीदाँत के आकार वाले दो-दो (२ + २ = ४) विशाल पर्वत हैं, जिन्हें गजदंता पर्वत कहा गया है तथा मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में दोनों तरफ लवण समुद्र को स्पर्श करता हुआ एक क्षेत्र है। इस प्रकार उत्तर-दक्षिण में विशाल पर्वतों से घिरा तथा पूर्व-पश्चिम में लवण समुद्र की सीमा को स्पर्श करता हुआ एक लाख योजन लम्बा महाविदेह वर्ष नामक मनुष्य क्षेत्र है।

मध्य में मेरु पर्वत और उसके बीच निषध पर्वत के तिगिच्छद्रह से निकलने वाली सीता नदी तथा नील पर्वत के केशरीद्रह से निकली सीतोदा नदी बहती है। इस कारण महाविदेह वर्ष चार भागों में विभक्त हो गया है। पूर्व महाविदेह तथा पश्चिम (अपर) महाविदेह दो गजदंता पर्वतों के बीच दक्षिण में देव कुरु और उत्तर में उत्तर कुरु स्थित है। ये दोनों ही क्षेत्र युगलिया क्षेत्र हैं। उत्तर कुरु में एक महाविशाल वृक्ष है जिसका नाम है जम्बू (सुदर्शन) वृक्ष। इस विशाल महावृक्ष के कारण ही इस द्वीप का जम्बूद्वीप नाम पड़ा है। देव कुरु में जम्बू सुदर्शन जैसा ही एक महावृक्ष है, कूट शाल्मली। जम्बू वृक्ष पर महाऋद्धि सम्पन्न अनाधृत देव का निवास है तथा कूट शाल्मली वृक्ष पर वेणुदेव गरुड़ का आवास है। ये दोनों देव जम्बूद्वीप के अधिपति हैं। पूर्व-पश्चिम दोनों महाविदेहों में ८-८ विजय हैं, परन्तु बीच में बहने वाली महानदी के कारण प्रत्येक विजय दो भागों में विभक्त हो जाने से बत्तीस विजय बन गई हैं। इन बत्तीस विजयों में प्रत्येक में एक-एक चक्रवर्ती तथा एक-एक तीर्थंकर विचरण कर सकते हैं। शाश्वतकालीन बीस विहरमान तीर्थंकर इन्हीं विजयों में विद्यमान हैं। ग्रन्थों के अनुसार इनमें से चार विजयों में पुष्कलावती विजय (८) में सीमंधर स्वामी, वत्स विजय (९) में युगमंधर स्वामी, नलिनावती विजय (२४) में बाहु स्वामी तथा वप्र विजय (२५) में सुबाहु स्वामी। इस प्रकार जघन्य चार तीर्थंकर प्रत्येक समय विचर रहे हैं।

■ LOCATION OF *MAHAVIDEH KSHETRA*

A close look at the map of *Jambu Dveep* indicates that at the very centre of it is *Meru Parvat* (Mountain). On its north is *Neelvant Parvat* and on its south, *Nishadh Parvat.* They are two great mountains at its boundary. Touching *Nishadh* and *Neelvant Parvat,* there are two mountains each having the shape of elephants tusk. So they are called *Gaj-danta Parvat.* In east

and west of *Meru Parvat,* touching *Lavan Samudra* (Salt Ocean) is a large area which is one lakh *yojans.* It is surrounded by huge mountains in the north and south and touching *Lavan Samudra* in the east and west. This is called *Mahavideh Kshetra* wherein human beings also live.

In the centre is *Meru Parvat.* Sita river starts from *Tigichh-draha* (lake) of *Nishadh Parvat* and Sitoda river starts from *Keshari-draha* of *Neel Parvat.* These rivers make four divisions of *Mahavideh.* Between eastern *Mahavideh* and western Mahavideh and the two *Gaj-danta Parvats* in the south there is Dev Kuru and Uttar Kuru is in the north, *Yugaliyas* live in these two areas. There is a very long tree known as *Jambu* (Sudarshan) in Utter Kuru. It is after this tree, that this *Dveep* is called as *Jambu Dveep.* In Dev Kuru also there is a long tree like *Jambu* (Sudarshan) but it is called Koot Shalmali. On *Jambu* tree there lives a respected Anadhrit god while on Koot Shalmali tree is the abode of Venudev Garud. These two gods are the masters of *Jambu Dveep.* There are eight *Vijay* (divisions) each in east and west. But due to the great river flowing in the middle of each *Vijay,* every *Vijay* is divided in two. Thus, there are in all thirty two *Vijayas.* In each of these thirty two *Vijayas,* there can be a *chakravarti* or a *Tirthankar.* Twenty *Tirthankars* always (as it is the minimum number of *Tirthankar* at a time) live in the *Vijayas* of *Mahavideh Kshetra.* According to scriptures, Seemandhar Swami is in eighth *Vijay* Pushkalavati, Yugmandhar Swami is in Vatsa, the ninth *Vijay,* Bahu Swami is in Nalinavati *Vijay*—the twenty fourth *Vijay* and Subahu Swami is in Vapra—the twenty fifth *Vijay.* Thus at least four *Tirthankars* are always (in the *Vijayas* of *Jambu Dveep*)

■ ***महाविदेह नाम क्यों ?***

इस क्षेत्र का महाविदेह नाम होने के दो कारण हैं-प्रथम यह भरत, ऐरवत, हेमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक् वर्ष इन छह वर्ष क्षेत्रों से लम्बाई-चौड़ाई संस्थान व परिधि में अधिक विस्तीर्ण है, यहाँ रहने वाले मनुष्यों के शरीर पाँच सौ धनुष के महा आकार वाले होने से 'महाविदेह' नाम प्रसिद्ध हुआ है तथा यहाँ महाविदेह नामक महाऋद्धि वाला देव रहता है।

चित्र परिचय २०

Illustration No. 20
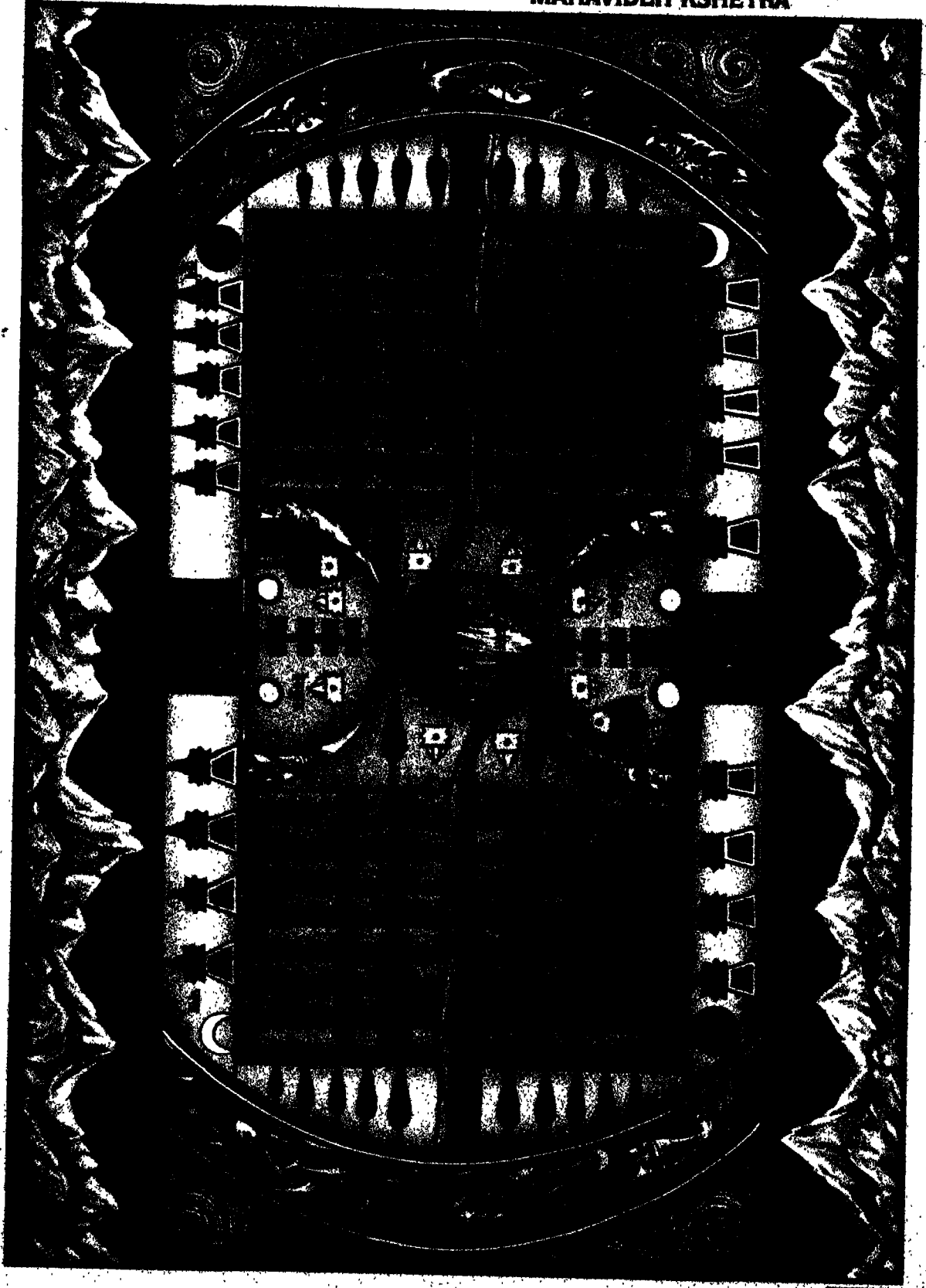
महाविदेह क्षेत्र

जम्बूद्वीप के ठीक मध्य भाग में एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत (मन्दर पर्वत) स्थित है। यह एक हजार योजन भूमि में गहरा तथा निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है। इसके उत्तर में नीलवंत पर्वत तथा दक्षिण में निषध पर्वत है। इन दोनों पर्वतों की सीमा में बँधा पल्यंकाकार एक मनुष्य क्षेत्र है, जिसका नाम है महाविदेह। इसके पूर्व और पश्चिम दिशा में लवण समुद्र है।

मेरु पर्वत के कारण इस क्षेत्र के चार विभाग हो गये। पूर्व में स्थित पूर्व महाविदेह। पश्चिम में स्थित अपर महाविदेह। मेरु पर्वत से दक्षिण में देव-कुरु और उत्तर में उत्तर-कुरु क्षेत्र है। मेरु पर्वत से पूर्व में सीता नदी तथा पश्चिम में सीतोदा नदी, महाविदेह क्षेत्र के बीचोंबीच बहती है। जिसके कारण पूर्व महाविदेह के दो भाग तथा अपर महाविदेह के दो भाग होने से कुल चार भागों में विभक्त हो गया है। प्रत्येक भाग में ८ + ८ विजय हैं, अर्थात् कुल चार महाविदेह में ३२ विजय और उनकी बत्तीस राजधानियाँ हैं।

इनके बीच वैताढ्य पर्वत आने से प्रत्येक विजय उत्तर-दक्षिण दो भागों में विभक्त हो गई है।

उत्तर-कुरु—मेरु पर्वत के उत्तर में हाथी के दाँत के आकार के दो विशाल पर्वत हैं, जिन्हें 'गजदंता पर्वत' कहा जाता है। इनके बीच का क्षेत्र उत्तर-कुरु कहा जाता है, यहाँ युगलिया मनुष्य रहते हैं। यहाँ पर एक जम्बू नामक महावृक्ष है जिसके कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप प्रसिद्ध हुआ।

देव-कुरु—मेरु पर्वत के दक्षिण में भी इसी प्रकार के दो गजदंता पर्वत हैं, जिनके बीच का क्षेत्र देव-कुरु कहा जाता है। यहाँ जम्बू वृक्ष जैसा ही कूट शाल्मली नामक महावृक्ष है।

विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्षस्कार ४
(गणितानुयोग–तिर्यक् लोक वर्णन)

MAHAVIDEH AREA

At the centre of *Jambu Dveep*, there is Sumeru Mountain (also known as Mandar Parvat) which is hundred thousand *yojan* in height. It is one thousand *yojan* deep from the level ground and ninety thousand *yojan* high. In its north is Neelvant Mountain and in the South is Nishadh Mountain. Between these two mountains is the land inhabited by human beings, bed-like in shape. This area is known as Mahavideh. In its east and west is *Lawan Samudra.*

Due to location of Meru Mountain, this area is divided in four parts. The area in the east is eastern Mahavideh. The area in the west is Apar Mahavideh. In the South of Meru Mountain is Dev-Kuru and in the north is Uttar-Kuru area. In the east of Meru Mountain is River Sita and in the west is River Sitoda. They flow mid-way in *Mahavideh* area. Therefore, Poorva Mahavideh is divided in two parts and the Apar Mahavideh is also divided in two parts. Thus, the entire *Mahavideh* is divided in four parts. Each of these four parts have eight continents called Vijay. Thus, the four *Mahavideh* area have thirty-two Vijays.

In view of existence of Vaitadhya Parvat in between, each Vijay is divided in two parts—the Northern area and the Southern area.

Uttar-Kuru—In the north of Meru Mountain there are two great mountains tusk-like in shape. They are called Gaj-danta mountains. They are surrounded by land that is called Uttar- Kuru. There *Yugaliya* human beings reside. A great *Jambu* tree is located here. So this *dveep* is famous as *Jambu Dveep.*

Dev-Kuru—In the south of Meru mountain also, there are two Gaj-danta mountains. They are surrounded by land that is called Dev-Kuru. A great tree known as Koot-Shalmali tree exists in this area just as Jambu tree is in Uttar-Kuru.

For detailed description see Jambu Dveep Prajnapti Vakshaskar 4
(Ganitanuyog—Description of Tiryak Lok)

महाविदेह का विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार ४ में तथा गणितानुयोग तिर्यक्लोक वर्णन, पृ. २०० पर देखना चाहिए।

विशेष स्पष्टता के लिए चित्र देखें।

■ WHY IS IT CALLED *MAHAVIDEH* ?

There are two reasons for calling the area as *Mahavideh*. This area is much larger in circumference than Bharat, Airavat, Hemvat, Hairanyavat. Hari Varsh, Ramyak Varsh and also in length and width. The physical body of every living person in the area is five hundred *Dhanush*. So it is called *Mahavideh*. Further *Mahavideh* god who possesses great powers lives here.

The detailed description of *Mahavideh* is in *Jambu Dveep Prajnapti*—Vakshaskar 4 and. in *Ganitanuyog*—Description of Tiryak lok, p. 200.

For further details see illustration.

२-१० अध्ययन
2 TO 10 CHAPTERS

६. एवं सेसाणं वि नवण्हं भाणियव्वं। नवरं सत्त धारिणिसुआ। वेहल्लवेहायसा चेल्लणाए। अभओ नंदाए।

आइल्लाणं पंचण्हं सोलसवासाइं सामण्णपरियाओ। तिण्हं बारस-बारस वासाइं। दोण्हं पंच वासाइं।

आइल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उववाओ–विजए वेजयंते जयंते अपराजिए सव्वट्ठसिद्धे।

दीहदंते सव्वट्ठसिद्धे। उक्कमेणं सेसा। अभओ विजए। सेसं जहा पढमे।

अभयस्स नाणत्तं, रायगिहे नयरे, सेणिए राया, नंदा देवी सेसं तहेव।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेण अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ पढमो वग्गो समत्तो ॥

६. शेष नौ अध्ययनों का वर्णन भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता इतनी है कि इनमें सात–(१) जालिकुमार, (२) मयालिकुमार, (३) उवयालिकुमार, (४) पुरुषसेनकुमार, (५) वारिषेणकुमार, (६) दीर्घदन्तकुमार, और (७) लष्टदन्तकुमार इनकी माता का नाम धारिणी देवी है, (८) वेहल्लकुमार, और (९) वेहायसकुमार चेलना रानी के पुत्र, तथा (१०) अभयकुमार नन्दा रानी का पुत्र है।

आदि के पाँच कुमारों का श्रमण-पर्याय सोलह-सोलह वर्ष का है, तीन का श्रमण-पर्याय बारह-बारह वर्ष का है तथा दो का श्रमण-पर्याय पाँच-पाँच वर्ष का है।

आदि के पाँच अनगारों का उपपात–जन्म अनुक्रम से विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान में हुआ है।

दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ। शेष उत्क्रम से लष्टदन्त अपराजित में, वेहल्ल जयन्त में, वेहायस वैजयन्त में उत्पन्न हुए, तथा अभय विजय विमान में उत्पन्न हुआ। शेष वर्णन प्रथम अध्ययन के समान समझ लेना चाहिए।

अभय की विशेषता यह है कि राजगृह नगर, पिता राजा श्रेणिक और माता नन्दादेवी है। शेष वर्णन उक्त प्रकार से ही है।

"जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाण को संप्राप्त भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

6. The remaining nine chapters are almost similar to the first one. The only difference is that Dharini was the mother of first seven namely—(1) Jali Kumar, (2) Mayali Kumar, (3) Uvayali Kumar, (4) Purushsen Kumar, (5) Varisen Kumar, (6) Deerghdant Kumar and (7) Lashtdant Kumar, Chelana was the mother of next two namely—(8) Vehalla Kumar and (9) Vehayas Kumar, and Nanda was the mother of the last one—(10) Abhay Kumar.

The first five led ascetic life for sixteen years each, the next three for twelve years each and the last two for five years each.

The first five were re-born in heaven in *Vijay, Vaijayant, Jayant, Aparajit* and *Sarvarth Siddh* abodes respectively.

Deerghdant was re-born in *Sarvarth Siddh*, Lashtdant in *Aparajit,* Vehalla in *Jayant,* Vehayas in *Vaijayant* and Abhay Kumar in *Vijay Viman.* The remaining description may be taken as similar to that of the first chapter.

The only special account relating to Abhay Kumar is that he belonged to *Rajagriha* and was son of king Shrenik and Nanda Devi.

Sudharma said—"Jambu ! This is the entire account of first *Varg* (Part) of *Anuttaraupapatik Sutra* as narrated by Bhagavan Mahavir who has since attained salvation."

विवेचन—इस वर्ग के अगले नौ अध्ययनों में नौ अणगारों का वर्णन है। इनमें सात के सम्बन्ध में विशेष वर्णन नहीं मिलता है। लष्टदन्त नाम के दो राजकुमारों का वर्णन आता है। एक जिनका वर्णन यहाँ प्रथम वर्ग में हुआ है। उनकी माता धारिणी, पिता श्रेणिक तथा उनका उपपात जयंत विमान में बताया है। दूसरे वर्ग में भी लष्टदन्त का वर्णन है, वहाँ माता धारिणी तथा पिता श्रेणिक है, किन्तु उनका उपपात वैजयन्त विमान में हुआ।

प्रश्न यह है कि क्या एक ही व्यक्ति का नाम दो बार आ गया है? उक्त प्रश्न पर चर्चा करने पर आचार्यों ने समाधान दिया है कि एक ही व्यक्ति का उपपात दो विमानों में सम्भव नहीं है तथा प्रथम वर्ग के १० अध्ययन हैं, दूसरे वर्ग के १३ अध्ययन हैं। यदि एक ही व्यक्ति मानें तो अध्ययन संख्या में ही एक का अन्तर आ जायेगा, जो आगम के अनुकूल नहीं है। अतः लष्टदन्त नाम के दो व्यक्ति मानना ही उचित है।

वेहल्ल और वेहायस दोनों चेटक राजा के दोहिते थे। इनके कारण ही उस युग का प्रसिद्ध लोमहर्षक रथ-मूसल और महाशिलाकंटक संग्राम हुआ और कूणिक ने वैशाली का विनाश किया। इसका विस्तृत वर्णन भगवती, शतक ७, उद्देशक ९ की टीका में है। जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, पृ. ७४६ पर भी इसका विस्तृत वर्णन है।

अभयकुमार के सम्बन्ध में अनेक आगमों व सैकड़ों ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। निरयावलिका व वृत्ति ज्ञाता, नन्दीसूत्र की टीका में अभयकुमार की रोचक घटनाएँ मिलती हैं। (अन्तकृद्दशा महिमा, भाग १, पृ. ७६२ पर तथा नन्दीसूत्र में भी वर्णन दिया गया है।)

॥ प्रथम वर्ग समाप्त ॥

Explanation—In the next nine chapters of the *Varg*, there are life-sketches of nine ascetics. Detailed description is not available about seven of them. Two princes of identical name, viz., Lashtdant Kumar have been mentioned—one is that who has been narrated in this *Varg*. His mother was Dharini, father was king Shrenik and he after the present life-span was re-born in *Jayant Viman*. The second one is that who has been described in the second *Varg*. His parents are the same but he was re-born in *Vaijayant* heaven.

The question arises whether the same person has been discussed twice. After detailed study, the leanred *Acharyas* are of the view that the re-birth of same person in two different *Vimans* is not possible. Moreover, the first *Varg* has 10 chapters and the

second *Varg* has 13 chapters. In case we suppose that same person was described twice, the sum-total of the persons discussed in the said two *Vargs* will be reduced by one and that is not in accordance with the scriptures. So it is proper to understand that there were two different persons of the same name as Lashtdant.

Vehalla and Vehayas were both grandsons (daughter's sons) of king Chetak. It was for them, that the dreadful battles of Rath-Moosal and Shila Kantak were fought and Konik destroyed Vaishali. His detailed account is in the commentary of *Bhagavati Sutra,* Shatak 7, Uddeshak 9. Also in *Jain Dharma ka Maulik Itihas*, Part 1, p. 746)

Abhay Kumar has been mentioned in many *Agams* and other connected literature at several places. Interesting accounts relating to his life are mentioned in *Niryavalika Sutra, Janta Dharmkatha Sutra* and in the Commentary of *Nandi Sutra* (see *Antakrid-dasha Mahima,* Part 1, p. 762 also)

● END OF PART (*VARG*) FIRST ●

द्वितीय वर्ग
दीर्घसेन

अध्ययन-सार

- इस दूसरे वर्ग में तेरह महापुरुषों के जीवन की तपस्या का और अन्तिम आराधना का बहुत संक्षिप्त वर्णन है। ये सभी तेरह राजकुमार राजा श्रेणिक के पुत्र तथा धारिणी देवी के अंगजात थे। सभी ने जालिकुमार की तरह ही भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और अन्त में विपुलगिरि पर संलेखना करके अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए।
- इनके जीवन की किसी विशेष घटना का यहाँ उल्लेख नहीं है। लगता है केवल इन महापुरुषों की साधना का वर्णन करना ही शास्त्रकार का उद्देश्य है। बाकी उनके भौतिक सुख, वैभव का वर्णन तो जालिकुमार की तरह सूचना देकर ही समाप्त कर दिया है।

SECOND PART (*VARG*)
DEERGHASEN

GIST OF THE CHAPTER

- In the second *Varg*, the austerities of thirteen great monks and their spiritual practice shortly before their death has been described in brief. All the said thirteen persons were the sons of king Shrenik. Their mother was Dharini. All of them accepted initiation near Bhagavan Mahavir like Jali Kumar. They studied all the eleven scriptures and in the end went to *Vipulgiri* and observing *Samlekhana* completed the life-span and were re-born in *Anuttar Viman.*

- There is no important event relating to their life finding mention in the scriptures. It appears that the purpose of the narrator of scriptures must have been to describe their ascetic and spiritual practices. Their life-style and worldly comforts were similar to those Jali Kumar had.

दोच्चो वग्गो : द्वितीय वर्ग : SECOND PART (*VARG*)
१-१३ अध्ययन
1 TO 13 CHAPTERS

उपक्षेप

१. जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

१. जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा से प्रश्न किया-"भंते ! यदि निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है, तो भंते ! अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?"

INTRODUCTION

1. Jambu Swami inquired of Sudharma Swami—"Bhante ! I have grasped the meaning of the first *Varg* of *Anuttaraupapatik Sutra.* Please tell me the meaning of the second *Varg* as narrated by Bhagavan Mahavir."

२. एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा-

दीहसेणं महासेणं लट्ठदंते य गूढदंते य सुद्धदंते य

हल्ले दुमे दुमसेणे महादुमसेणे य आहिए।

सीहे य सीहसेणे य महासीहसेणे य आहिए।

पुण्णसेणे य बोधव्वे तेरसमे होइ अज्झयणे।।

२. सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया-"जम्बू ! निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं-

(१) दीर्घसेन, (२) महासेन, (३) लष्टदन्त (लट्ठदन्त), (४) गूढ़दन्त, (५) शुद्धदन्त, (६) हल्ल, (७) द्रुम, (८) द्रुमसेन, (९) महाद्रुमसेन, (१०) सिंह, (११) सिंहसेन, (१२) महासिंहसेन, (१३) पुण्यसेण (पुण्यसेन अथवा पूर्णसेन)।''

2. Sudharma Swami replied—"Jambu ! Bhagavan Mahavir, since liberated, had narrated thirteen chapters of the second *Varg*. They are—

(1) Deerghasen, (2) Mahasen, (3) Lashtdant (Latthadant), (4) Goodhdant, (5) Shuddhadant, (6) Halla, (7) Drum, (8) Drumsen, (9) Mahadrumsen, (10) Simha, (11) Simhasen (12) Mahasimhasen, (13) Punyasen (Purnasen)."

३. जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

३. ''भंते ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपातिकदशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं, तो भंते ! द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का भगवान महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?''

3. Jambu Said—"Bhante ! In case Bhagavan Mahavir mentioned thirteen chapters of the second *Varg,* please tell me the meaning of the first chapter thereof."

दीर्घसेन आदि

४. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। जहा जाली तहा जम्मं, बालत्तणं, कलाओ। नवरं दीहसेणे कुमारे।

सच्चेव वत्तव्वया जहा जालिस्स जाव अंतं काहिए।

एवं तेरस वि रायगिहे। सेणिओ पिया। धारिणी माया। तेरसण्हं वि सोलस वासा परियाओ। आणुपुव्वीए विजए दोण्णि, वेजयंते दोण्णि, जयंते दोण्णि, अपराजिए दोण्णि, सेसा महादुमसेणमाई पंच सव्वट्ठसिद्धे।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव अणुत्तरोववाइदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

मासियाए संलेहणाए दोसु वि वग्गेसु त्ति।

४. आर्य सुधर्मा–"जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशीलक चैत्य था। वहाँ राजा श्रेणिक का राज्य था। रानी का नाम धारिणी देवी था। उसने सिंह का स्वप्न देखा। जालिकुमार के सदृश जन्म, बाल्यकाल और कला-शिक्षण आदि जान लेना चाहिए। विशेष यह है कि कुमार का नाम दीर्घसेन था।

शेष समस्त वर्णन जालिकुमार के समान जानना चाहिए। यावत् वह सब दुःखों का अन्त करेगा।

इस प्रकार तेरह ही राजकुमार राजगृह के निवासी थे। उनके पिता श्रेणिक और माता धारिणी देवी थी। तेरह ही कुमारों की दीक्षा-पर्याय सोलह वर्ष थी। आयुष्य पूर्ण करके अनुक्रम से वे दो-दीर्घसेन और महासेन विजय विमान में, दो-लष्टदन्त और गूढ़दन्त वैजयन्त विमान में, दो-शुद्धदन्त और हल्ल जयन्त विमान में, दो-द्रुम और द्रुमसेन अपराजित विमान में और शेष महाद्रुमसेन आदि पाँच सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

जम्बू ! इस प्रकार निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

दोनों वर्गों में एक-एक मास की संलेखना समझनी चाहिए।

(यहाँ एक बात विशेष ज्ञातव्य है कि इस सूत्र के दोनों वर्गों में उल्लिखित तेईस मुनियों ने एक-एक मास का पादपोपगमन अनशन किया था और तदनन्तर वे उक्त अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए।)

DEERGHSEN ETC.

4. Arya Sudharma said—"Jambu ! At that time, during that period, there was a town called *Rajagriha. Gunsheelak* garden was there. King Shrenik was ruling there. Dharini was his queen. Once she saw a lion in dream. The birth, the childhood, the education, etc., may be considered similar to that of Jali Kumar. The only difference is that the name of the child born was Deerghsen.

Remaining account is similar to that of Jali Kumar and that in the end he attained salvation.

Thus, all the thirteen princes were residents of *Rajagriha.* Their parents were king Shrenik and queen Dharini. All the thirteen led ascetic life for sixteen years each. After completing their life-span, Deerghsen and Mahasen were born in *Vijay Viman,* Lashtdant and Goodhdant in *Vaijayant Viman,* Shuddhadant and Halla in *Jayant Viman,* Drum and Drumsen in *Aparajit Viman* and the remaining five namely Mahadrumsen and others in *Sarvarth Siddh Viman.*

Jambu ! This is the meaning of the entire second *Varg* as narrated by Bhagavan Mahavir."

In both the *Vargs,* the period of *Samlekhana* is one month each.

(It is worth mentioning that all the twenty three monks mentioned in the two *Vargs* had left food and remained motionless like a cut-off branch of a tree for a period of one month each. After completing their life-span, they were reborn in *Anuttar Vimans.*)

विवेचन—यहाँ जो तेरह अणगारों का विवरण दिया गया है वह बहुत ही संक्षिप्त में दिया है, क्योंकि 'ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र' में मेघकुमार के वर्णन के समान ही यहाँ का वर्णन समझने की सूचना करके वर्णन समाप्त कर दिया गया है। अतः विशेष जानने की इच्छा वालों को उक्त सूत्र के प्रथम अध्ययन का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथम अध्ययन में सात मुनियों की माता का नाम धारिणी बताया है। यहाँ पर तेरह मुनियों की माता का नाम भी धारिणी कहा है। ज्ञातासूत्र में मेघकुमार की माता का नाम भी धारिणी आया है। इस प्रश्न पर चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि श्रेणिक राजा की तो अनेक रानियाँ थीं, क्या यह सम्भव है कि उसमें इक्कीस रानियों का नाम धारिणी हो? अथवा यह भी सम्भव है कि 'धारिणी' माता का नाम नहीं, एक विशेषण हो, जो धारण करे वह

'धारिणी'। अतः माताएँ भिन्न-भिन्न होने पर भी एक सामान्य नाम सूचित किया गया हो। आगमज्ञ विद्वान् इसका समाधान करें।

Explanation—Here the life-sketch of the thirteen monks has been described in a very concise form. The description has been concluded by referring to the description of Megh Kumar in *Jnata Dharmakatha Sutra* and that their account is similar to that of Megh Kumar. So for detailed study, kindly see first chapter of *Jnata Dharmakatha Sutra.*

In the first *Varg,* the mother of seven monks is Dharini, here also the mother of thirteen monks is Dharini. In *Jnata Dharmakatha,* the mother of Megh Kumar is Dharini. It is therefore, worth a study whether twenty one wives of king Shrentik were of the same name Dharini or Dharni was not the name of the mother but denotes their quality, *i.e.,* one who bears is Dharini. In other words, it may be that the mothers were different but a common name Dharini has been mentioned. This is a matter for detailed study and research.

● END OF PART (*VARG*) SECOND ●

तृतीय वर्ग
धन्यकुमार

अध्ययन-सार

- अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग में दस आत्म-साधक महान् तपस्वियों का वर्णन है। इसके प्रथम अध्ययन में धन्यकुमार–धन्य अणगार का वर्णन काफी विस्तार के साथ है।

- धन्यकुमार के अत्यन्त सुख-सम्पन्न वैभवशाली गृहस्थ जीवन का भी सुन्दर वर्णन है। इस वर्णन से पता चलता है कि इतने अपार भौतिक सुख-साधनों में पलने वाला युवक भगवान महावीर की एक ही धर्मदेशना सुनकर सहसा प्रतिबुद्ध हो जाता है और एक ही झटके में समस्त सुख-ऐश्वर्य का त्यागकर इतने कठोर तप मार्ग को ग्रहण करता है। इससे लगता है वह आत्मा कितना जागृत, दृढ़ संकल्पबली और वैराग्य रस आप्लावित होगा। दीक्षा लेते ही पहले ही दिन बेले-बेले तप और पारणे में आयंबिल का संकल्प लेता है और उसके पश्चात् ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है और बहुत शीघ्र ही शास्त्र अध्ययन सम्पन्न कर फिर घोर तपश्चरण में जुट जाता है। धन्य अनगार की उग्र तपश्चर्या से शरीर की जो अत्यन्त क्षीण, दुर्बल दशा हुई है उसका रोमांचक सजीव वर्णन इतना अद्भुत है कि पाठक और श्रोता के रोम-रोम उसकी स्तुति गान से सहज ही मुखरित हो जाते हैं।

- धन्य अनगार के तप से शुष्क हुए शरीर अवयवों के लिए जो उपमाएँ दी गई हैं, वे अद्भुत हैं और उनसे उस घोर तपस्वी के कृश दुर्बल–क्षीण देह की छवि का एक रोमांचकारी चित्र आँखों के सामने उपस्थित होता है। भारतीय साहित्य में तपस्वियों की सुदीर्घ तपःसाधना, कष्ट सहन-तितिक्षा व्रत का वर्णन तो अनेक स्थानों पर मिलता है, परन्तु धन्य अनगार की देह का एक-एक अवयव का जैसा वर्णन तथा जैसी उपमाएँ दी गई हैं वैसा वर्णन अन्यत्र दुर्लभ ही क्या, अपूर्व कहा जा सकता है। बौद्ध परम्परा में मज्झिमनिकाय के महासिंहनादसूत्र में तथागत बुद्ध के अति घोर देहदमन का भी ऐसा ही रोमांचकारी वर्णन मिलता है, जिनका शरीर इतना जर्जर हो गया था कि मात्र हड्डियों का ढाँचा ही रह गया था। सुना है, बुद्ध की एक प्राचीन मूर्ति भी मिली है जो इस प्रकार बैठी हुई है कि उसकी सब पसलियाँ एक-एक बराबर गिनी जा सकती हैं। पेट का भाग भी ऊँडा खड्डा जैसा दिखाया गया है। इससे अनुमान होता है धन्य अनगार का वर्णन प्रत्यक्ष द्रष्टा ने अत्यन्त सजीव उपमाओं द्वारा किया है। अस्तु, आगे के अध्ययनों में तपःसाधकों का वर्णन बहुत संक्षेप में है। इससे प्रतीत होता है, आगमकार को तप का वर्णन ही अभीष्ट रहा है तथा उनमें मेघकुमार, जमालि, स्कन्दक अनगार तथा थावच्चापुत्र के उदाहरण देकर वर्णन को संक्षिप्त कर दिया गया है। इन सबका वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा में हमने किया है, पाठक वहाँ देख सकते हैं।

THIRD PART (*VARG*)
DHANYA KUMAR

GIST OF THE CHAPTER

- In the third *Varg* (Part) of *Anuttaraupapatik-dasha* there is description of ten great ascetics engaged in self-realization. The first chapter—'Dhanya Kumar' gives a detailed account of ascetic Dhanya.
- There is a detailed description of entirely comfortable, well-to-do family life of Dhanya Kumar. This narration indicates how a young man brought up in extremely great comforts, in a rich family, enjoying all the worldly comforts and luxuries, became spiritually awakened by just one spiritual discourse of Bhagavan Mahavir. He immediately discarded all the worldly comforts and the family life and accepted the most difficult ascetic path. It depicts that the said person must have been highly conscious of spirituality, master of his decisions and saturated with the essence of detachment. From the very day of initiation, he decided to do two day fast and to break the fast with *Ayambil* throughout his life. Thereafter, he thoroughly studied all the eleven *Anga Sutras* and after completing the study in the shortest possible time, he engaged himself in hard spiritual practices. The extremely weak physical health and the feeble state of his body has been described in a thought-provoking manner. The description is so lively that it inspires the reader and the listener to such an extent that he cannot help appreciating the spiritual practices of Dhanya *Muni*.
- The similes used to explain the dried parts of the body of Dhanya *Muni* are wonderful and they bring before the reader a lively picture of the highly weakened physical state of that ascetic engaged in serious practices. In Indian literature, long ascetic

practices and endurance for troubles in monks are mentioned at several places, but the manner in which every part of ascetic Dhanya's body and the similes used to describe them are unique. Such a heart-rending description is not available anywhere else. In Buddhist literature, in *Mahasinghnad Sutra* of *Majjhim-nikaya,* the entirely serious self-restraint of Mahatma Buddha has been narrated in a lucid manner. His physical body had become so weak that it looked like a bundle of wood-sticks. It is heard that an idol of Buddha has been discovered in sitting posture and all of his joints and nerves are so much protruding that they can be counted. His stomach is like a deep pit. It shows that the person who saw Dhanya *Muni* in flesh and blood described him correctly by appropriate similes. Further chapters mention the spiritual practitioners briefly. The scriptures have laid emphasis only on ascetic practices and penance. The narration has been made brief by referring to Megh Kumar, Jamali, Skandak *Anagar* and Thavachchaputra. All of them have been described in detail in *Antakrid-dasha Mahima* and can be studied therefrom.

तच्चो वग्गो : तृतीय वर्ग : THIRD PART (*VARG*)
प्रथम अध्ययन
FIRST CHAPTER

१. जइ णं भंते ! समणेणं (जाव) संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं (जाव) संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं (जाव) संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा–

धण्णे य सुणक्खत्ते य इसिदासे य आहिए।
पेल्लए रामपुत्ते य चंदिमा पिट्ठिमाइ य।।
पेढालपुत्ते अणगारे नवमे पोट्टिल्ले वि य।
वेहल्ले दसमे वुत्ते इमे य दस आहिया।।

जइ णं भंते ! समणेण (जाव) संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं (जाव) संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

१. सुधर्मा स्वामी से आर्य जम्बू ने पूछा–"भंते ! यदि निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है, तो भंते ! श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?"

आर्य सुधर्मा–"जम्बू ! निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं– (१) धन्यकुमार, (२) सुनक्षत्र, (३) ऋषिदास, (४) पेल्लक, (५) रामपुत्र, (६) चन्द्रिक, (७) पृष्टिमातृक, (८) पेढालपुत्र, (९) पोट्टिल्ल, (१०) वेहल्ल।"

"भंते ! यदि निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, तो भंते ! भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?"

1. Jambu Swami inquired of Sudharma Swami—"Bhante ! I have grasped the meaning of the second *Varg* of *Anuttaraupapatik-dasha Sutra.* Please tell me the meaning of the third *Varg* as narrated by Bhagavan Mahavir."

Arya Sudharma said—"Jambu ! Bhagavan Mahavir had mentioned ten chapters in the third *Varg* of *Anuttaraupapatik-dasha Sutra.* They are—(1) Dhanya Kumar, (2) Sunakshatra, (3) Rishidas, (4) Pellak, (5) Ramputra, (6) Chandrik, (7) Prishtimatrik, (8) Pedhalputra, (9) Pottilla, (10) Vehalla."

Jambu said—"Bhante ! If Bhagavan Mahavir mentioned ten chapters in *Anuttaraupapatik-dasha,* what is the meaning of the first chapter ?"

२. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायंदी नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा। सहसंबवणे उज्जाणे सव्वउउ (जाव) जियसत्तू राया।

तत्थ णं कायंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ, अड्ढा (जाव) अपरिभूया।

तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते धण्णे नामं दारए होत्था, अहीण (जाव) सुरूवे पंचधाईपरिग्गहिए। तं जहा—खीरधाईए।

जहा महब्बलो (जाव) बावत्तरिं कलाओ अहीए (जाव) अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

२. जम्बू ! इस प्रकार उस काल और उस समय में, काकन्दी नाम की एक नगरी थी। वह नगरी ऋद्ध, स्तिमित और समृद्ध थी। सहस्राम्रवन नाम का एक उद्यान था, जो समस्त ऋतुओं में फल और फूलों से हरा-भरा रहता था। काकन्दी में जितशत्रु राजा राज्य करता था।

उस काकन्दी नगरी में भद्रा नाम की एक सार्थवाही रहती थी। वह अतीव धन सम्पन्न यावत् सर्वत्र सम्मान प्राप्त प्रभावशालिनी थी।

भद्रा सार्थवाही के धन्यकुमार नाम का एक पुत्र था, जो सर्वांग सम्पन्न और सुन्दर था। क्षीर धात्री आदि पाँच धायों से उसका पालन-पोषण होता था।

धन्यकुमार बड़ा होने पर महाबलकुमार की भाँति बहत्तर कलाओं में निपुण हुआ तथा सांसारिक भोगों का भोग करने में समर्थ हुआ।

2. Sudharma Swami said—Jambu ! At that time during that period, there was a town named Kakandi. That town was very prosperous and flourishing in trade. There was a *Sahasra-Amra-Van* garden which was always full of flowers and fruits (in all the seasons). King Jitshatru was the ruler of Kakandi.

In Kakandi a rich lady Bhadra was residing. She was prosperous, influential and commanded great respect in the society.

She had a son named Dhanya Kumar. He was handsome and well-built. He was brought up by five nurses including one providing him milk.

At the adolescent stage Dhanya Kumar became expert in all the seventy two types of arts like Mahabal Kumar. He became fit to enjoy all the worldly enjoyments.

३. तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णं दारयं उम्मुक्कबालभावं (जाव) भोगसमत्थं यावि जाणित्ता बत्तीसं पासायवडिंसए कारेइ अब्भुग्गयमुसिए (जाव) तेसिं मज्झे एगं भवणं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं (जाव) बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ। बत्तीसओ दाओ (जाव) उप्पिं पासाय (जाव) फुट्टंतेहिं (जाव) विहरइ।

३. उस भद्रा सार्थवाही ने जब धन्यकुमार को बाल-भाव से उन्मुक्त (युवा) होने पर भोगसमर्थ जाना तो बत्तीस सुन्दर (महल) बनवाए, जो विशाल और ऊँचे थे। उनके मध्य में अनेक स्तम्भों पर आधारित (धन्यकुमार का) एक भवन बनवाया। (चित्र देखें)

इसके पश्चात् उसने एक ही दिन में बत्तीस इभ्यवरों (श्रेष्ठियों) की कन्याओं के साथ धन्यकुमार का पाणिग्रहण–विवाह सम्पन्न कराया। बत्तीसों कन्याओं को बत्तीस-बत्तीस

चित्र परिचय १६

Illustration No. 16

नव-विवाहित धन्य को माता का आशीर्वाद

सेठानी भद्रा का लाड़ला सुकुमार पुत्र था धन्यकुमार। युवा होने पर धन्यकुमार का एक ही दिन में बत्तीस सुन्दर श्रेष्ठि-कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। विवाह के पश्चात् धन्यकुमार बत्तीस पत्नियों के साथ माता भद्रा का चरण-स्पर्श कर आशिष लेने आया। माता ने पुत्र व बत्तीसों बहुओं को आशिष दिया।

—अनुत्तरौपपातिकदशा, वर्ग ३, अ. १

BLESSINGS OF MOTHER TO NEWLY WED DHANYA

The affectionate son of land-lady Bhadra was Dhanya Kumar. When he reached the stage of adolescence, he was married to thirty-two beautiful girls belonging to noble families in one day. After the marriage celebration Dhanya Kumar came to his mother Bhadra with his thirty-two wives in order to seek her blessings. The mother blessed his son and thirty-two daughters-in-law.

—Anuttaraupapatik-dasha, Varg 3, Ch. 1

नवविवाहित धन्य को माता का आशीर्वाद BLESSINGS OF MOTHER TO NEWLY WED DHANYA
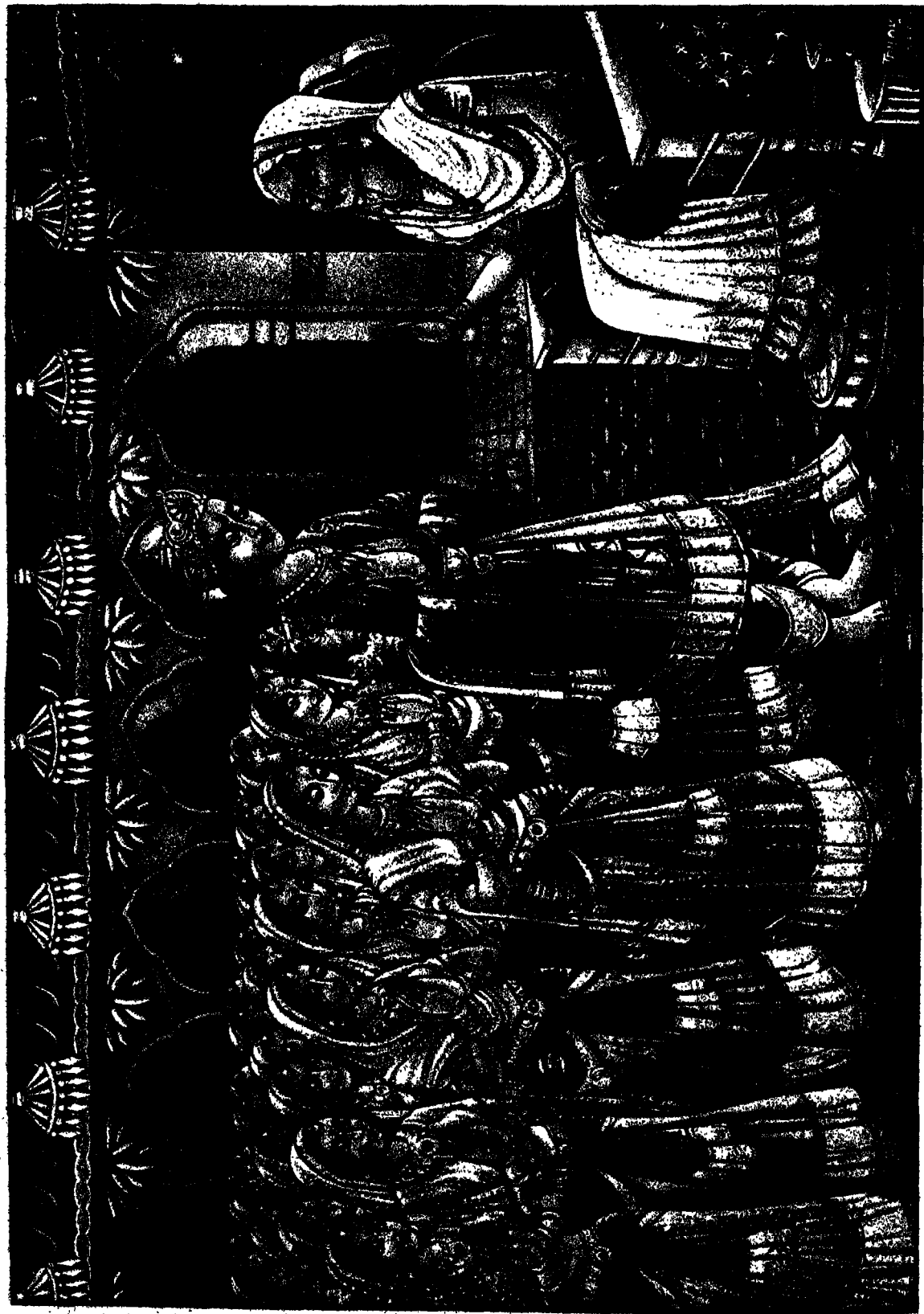
धन्यकुमार के बत्तीस प्रासाद

THE GREAT PALACE OF DHANYA KUMAR

चित्र परिचय १७

Illustration No. 17
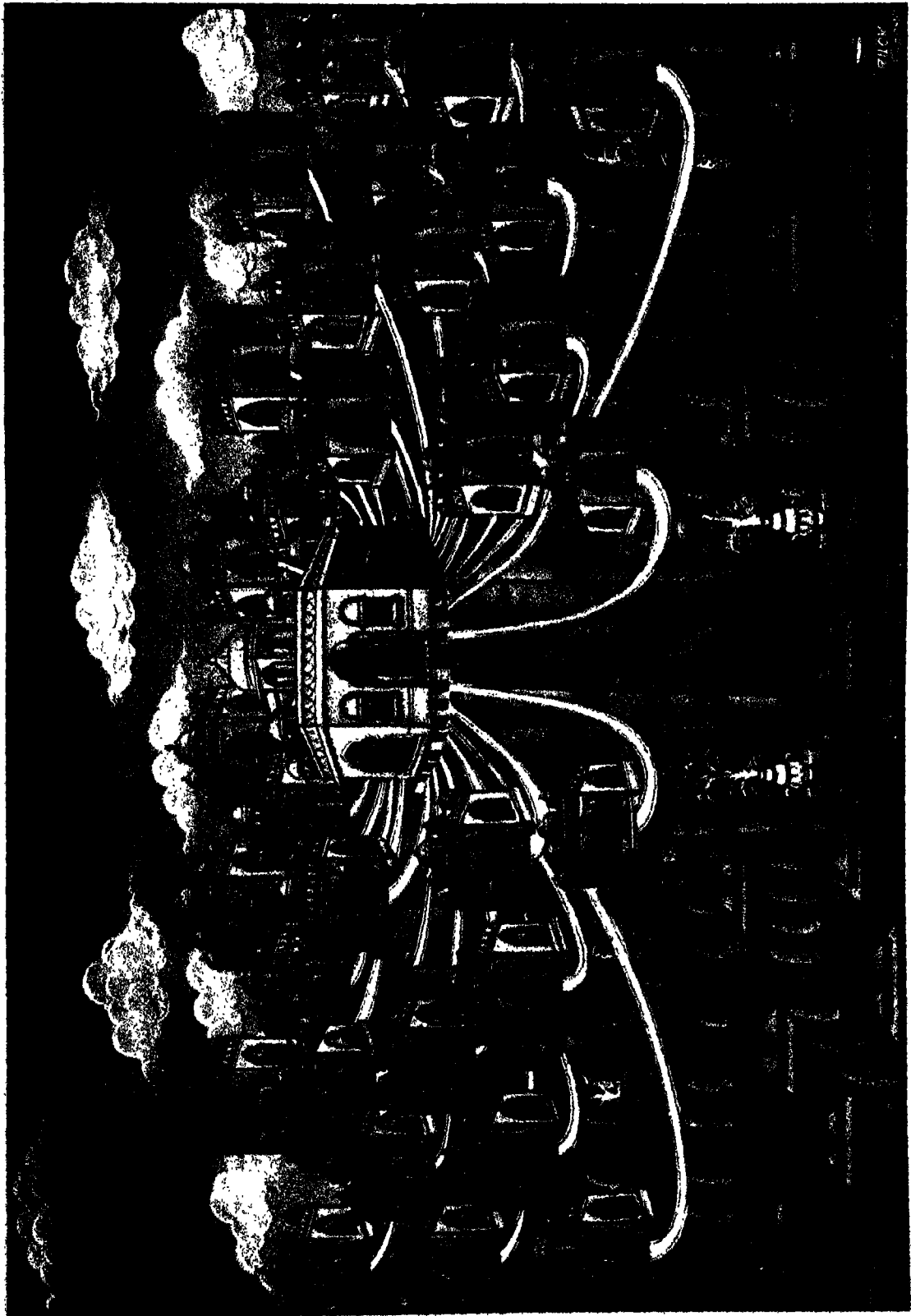
धन्यकुमार का विशाल प्रासाद

माता भद्रा ने धन्यकुमार तथा उसकी बत्तीस पत्नियों के आवास के लिए अनेक खम्भों वाले बत्तीस विशाल महल बनवाये। (चित्र में देखें)। सबसे बीच में धन्यकुमार का अनेक खम्भों पर स्थित आकाश को चूमता हुआ भव्य और विशाल प्रासाद है। उसके चारों तरफ प्रत्येक पत्नी का एक-एक स्वतंत्र प्रासाद बना है। सभी का रास्ता धन्यकुमार के महलों से जुड़ा है। इस विशाल भूखण्ड के चारों तरफ सुन्दर उपवन है। जिसमें पानी के अनेक फव्वारे और सरोवर आदि हैं।

--अनुत्तरौपपातिकदशा, वर्ग ३, अ. १, सूत्र ३

THE GREAT PALACE OF DHANYA KUMAR

Mother Bhadra had got constructed thirty two great palaces built on many pillars for the residence of Dhanya Kumar and his thirty two wives (see the illustration). In the centre is the grand and splendid sky-scrapper like palace of Dhanya Kumar erected on many pillars. Around it are separate palaces—one each for all the thirty two wives. All the palaces are connected to the palace of Dhanya Kumar. There is a beautiful garden surrounding this great built-up area. Many fountains and lakes are in the garden.

—Anuttaraupapatik-dasha, Varg 3, Ch. 1, Sutra 3

वस्तुओं का प्रीतिदान मिला। वे सभी ऊँचे भवनों में जहाँ संगीत व मृदंग की ध्वनियाँ गूँजती रहतीं वहाँ धन्यकुमार के संग सांसारिक सुख-भोगों का अनुभव करती रहतीं।

3. When Bhadra noticed that Dhanya Kumar has crossed the stage of childhood and has grown up and is fit to enter worldly life, she got constructed for him thirty two palaces that were spacious and of great height. In the centre of the said palaces, she got made a grand building standing on many pillars.

Thereafter, she got arranged marriage of his son Dhanya Kumar with thirty two girls of respectable families in one day. They got thirty two things each from their parents in marriage. They started living in the grand building wherein there was echo of drums and music. They were enjoying worldly pleasures with Dhanya Kumar.

विवेचन—इस अध्ययन में आयी काकंदी नगरी का वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४१९ के अनुसार समझ लेवें। प्राचीन काल में भद्रा नामक अनेक सार्थवाही का वर्णन मिलता है। राजगृह निवासी शालिभद्र की माता का नाम भी भद्रा था जो गोभद्र सेठ की पत्नी थी। उपासकदशा, अध्ययन ३ में चूलनीपिता श्रमणोपासक की माता का नाम भी भद्रा सार्थवाही था। इससे पता चलता है सार्थवाही विशेषण उस विशिष्ट महिला के लिए प्रयुक्त होता था जो घर व परिवार के संरक्षण संचालन में तथा व्यापार आदि में विशेष दक्षता तथा प्रभाव रखती थी।

महाबलकुमार का वर्णन भगवतीसूत्र, शतक ११ में आता है। अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४४४ में इसका संक्षेप में वर्णन दिया है। महाबल की बाल-क्रीड़ा, विद्याध्ययन और युवा होने पर विवाह तथा अपार सुख-साधनों का वर्णन पढ़कर लगता है भद्रा सार्थवाही ने उसी प्रकार धन्यकुमार के लिए बत्तीस सुन्दर श्रेष्ठी-कन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह किया और उन बत्तीस बहुओं के लिए विविध प्रकार के आभूषण, वस्त्र, शयनासन, दास-दासी प्रत्येक बहू के लिए अलग-अलग यों सभी वस्तुएँ बत्तीस-बत्तीस प्रकार की दीं। इससे भद्रा सार्थवाही के विपुल वैभव का पता चलता है और पुत्र के लिए अपार सुख-भोग-विलास की साधन सामग्री जुटाने की उदारता और विशेष प्रबन्धन कुशलता का भी परिचय मिलता है। इस वर्णन से धन्यकुमार के अत्यन्त सुखमय समृद्ध जीवन की झलक मिल जाती है।

इस प्रकार की वैभव सामग्री का रोचक वर्णन ज्ञातासूत्र, अध्ययन १ में मेघकुमार के प्रसंग में तथा राजप्रश्नीयसूत्र में भी उपलब्ध है।

सम्पन्न परिवारों में बालक के पालन-पोषण के लिए पाँच धात्री (धाय माता) की व्यवस्था भी रहती थी। जैसे-(१) **क्षीरधात्री** (दूध पिलाने वाली), (२) **मज्जनधात्री**–स्नान कराने वाली, (३) **मण्डनधात्री**–साज-सिंगार कराने वाली, (४) **क्रीड़ाधात्री**–खेलकूद, मनोरंजन कराने वाली, (५) **अंकधात्री**–गोद में रखने वाली। धन्यकुमार का पालन-पोषण पाँच धायों द्वारा हुआ तथा कलाचार्य के पास उसने अनेक प्रकार की संगीत, नृत्य, अश्व विद्या, मल्ल विद्या, शस्त्र संचालन कला आदि भी सीखीं।

Explanation—The description of Kakandi in this chapter may be understood as narrated at page 419 in *Antakrid-dasha Mahima*. In ancient times, the description of many ladies of the same name Bhadra is found. Shalibhadra's mother was Bhadra; she was the wife of Gobhadra, a nobleman in *Rajagriha*. In chapter 3 of *Upasak-dasha Sutra*, the mother of Chulanipita *Shramanopasak* was also Bhadra *Sarthvahi*. These facts indicate that the word *Sarthvahi* was used for those respectable ladies who had special expertise in running and protecting their household. With their unique acumen they were influential even in trade and business.

The description about Mahabal Kumar is in Shatak 11 of *Bhagavati Sutra*. It is also narrated in brief in *Antakrid-dasha Mahima* at page 444. After going through the account of his childhood, his play-things, his educational interests, his marriage when he attained youth, and his prosperous and rich environment, it appears that Bhadra *Sarthvahi* also provided all those comforts to her son Dhanya Kumar. She married him simultaneously with thirty two girls of respectable families. She gave ornaments and clothes of various types to them. She provided beddings, maids, servants and other things of comfort which were of thirty two different types to each of them. This fact shows that Bhadra *Sarthvahi* was very rich and had a large heart to provide things of comfort and worldly enjoyment to her son. It also reflects that she had expert knowledge of such items.

This narration further indicates that Dhanya Kumar was leading an extremely comfortable and well-to-do life.

Interesting account of things of worldly comforts and grandeur is available in chapter 1 of *Jnata Sutra* in the story of Megh Kumar and in *Rajprashniya Sutra* in context of king Pradesi.

In rich families, five nurses were engaged to look after the child. They were—(1) **Ksheer Dhatri**—one who provides milk, **(2) Majjan Dhatri**—one who bathes the child, **(3) Mandan Dhatri**—one who dresses up the child, **(4) Kreeda Dhatri**—one who plays with the child, **(5) Ank Dhatri**—one who keeps the baby in her lap. Dhanya Kumar was nursed by five ladies (nurses). He learnt many skills including music, dance, horse riding, wrestling, archery, etc., from his teacher.

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे (जाव) समोसढे। परिसा निग्गया। राया जह कोणिओ तहा जियसत्तू निग्गओ। तए णं तस्स धण्णस्स तं महया जहा जमाली तहा निग्गओ। नवरं पायचारेणं।

(जाव) नवरं "अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए (जाव) पव्वयामि।"

(जाव) जहा जमाली तहा आपुच्छइ। मुच्छिया। वुत्तपडिवुत्तया जहा महब्बले (जाव) जाहे नो संचाएइ।

जहा थावच्चापुत्तो जियसत्तुं आपुच्छइ। छत्तचामराओ। सयमेव जियसत्तु निक्खमणं करेइ जहा थावच्चापुत्तस्स कण्हो (जाव) पव्वइए अणगारं जाए, ईरियासमिए (जाव) गुत्तबंभचारी।

४. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर काकंदी नगरी में पधारे। परिषदा निकली। कोणिक की तरह जितशत्रु राजा भी भगवान के दर्शन करने आया। जमालि के समान धन्यकुमार भी साज-सज्जा के साथ भगवान के दर्शन हेतु निकला। विशेषता यह है कि धन्यकुमार पैदल चलकर ही भगवान की सेवा में पहुँचा।

जमाली के प्रकरण से यहाँ विशेष बात यह है कि धर्मदेशना सुनकर धन्यकुमार ने भगवान से प्रार्थना की–"मैं माता भद्रा सार्थवाही की आज्ञा लेकर देवानुप्रिय के पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ।"

घर आकर धन्यकुमार ने अपनी माता भद्रा से उसी प्रकार पूछा जिस प्रकार जमालि ने अपने माता-पिता से पूछा था। धन्यकुमार का वचन सुनकर माता भद्रा मोह के कारण मूर्छित हो गई। मूर्च्छा दूर होने पर धन्यकुमार के साथ भद्रा की संयम की कठोरता के विषय में उक्ति-प्रत्युक्ति, प्रश्न-उत्तर एवं अनेक संवाद हुए। जब माता भद्रा महाबल के समान धन्यकुमार के विचार बदलकर रोक रखने में समर्थ नहीं हो सकी तब उसने धन्यकुमार को प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दे दी।

जिस प्रकार थावच्चापुत्र की माता ने कृष्ण वासुदेव से दीक्षा की आज्ञा माँगी और छत्र, चामर आदि की याचना की, उसी प्रकार भद्रा ने भी जितशत्रु राजा से पुत्र को दीक्षा देने की आज्ञा माँगी और दीक्षा महोत्सव के लिए छत्र, चामर आदि की माँग की तथा जिस प्रकार कृष्ण वासुदेव ने थावच्चापुत्र का दीक्षा-महोत्सव स्वयं सम्पन्न कराया, उसी प्रकार जितशत्रु राजा ने भी धन्यकुमार का दीक्षा-महोत्सव राज्य की तरफ से सम्पन्न करने की इच्छा प्रकट की और कराया।

धन्यकुमार प्रव्रजित होकर अनगार हो गया। ईर्यासमिति युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

4. At that time during that period once Bhagavan Mahavir came to Kakandi. King Jitshatru went like king Konik to have his *Darshan*. Dhanya Kumar also came out of his house to have the *Darshan* of Bhagavan Mahavir in the same way as Jamali did. The only difference is that Dhanya Kumar went there on foot.

The main point of difference as compared to Jamali is that Dhanya Kumar after hearing the spiritual discourse of Bhagavan Mahavir, requested him—"O *Devanupriya* ! I want to get initiated near you after obtaining permission of my mother Bhadra."

After returning to his house, he talked to his mother in the same manner as Jamali had done to seek permission for initiation. Mother Bhadra fainted due to her deep attachment for her son when she heard the request of Dhanya Kumar. When she regained her senses there was a detailed dialogue between Bhadra and Dhanya Kumar, wherein she referred to him hardships in monkhood and gave several reasons for the same. When Bhadra found that she was unable to change the mind of his son as had been in the case of Mahabal Kumar, she gave him permission to get initiated.

Just as Thavachchaputra's mother had sought permission of Krishna Vasudev for the initiation ceremony of her son, and borrowed *Chhatra* and *Chamar* (umbrella and whisk), Bhadra sought the same from king Jitshatru. Just as Krishna Vasudev himself arranged for the initiation ceremony of Thavachchaputra with great pomp and show, in the same way, king Jitshatru arranged initiation of Dhanya Kumar at state expense.

After initiation, Dhanya Kumar became an ascetic. He followed all precautions (*Vivek*) relating to moving about (*Iriya Samiti*) and other ascetic activities. He silently followed all the vows with great care.

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में अति संक्षेप शैली में वर्णन किया गया है। इसलिए विशेष प्रसंगों का वर्णन अमुक व्यक्तियों की तरह उल्लेख भर कर दिया है। जैसे–कोणिक राजा की तरह भगवान के दर्शन करने जाना। कोणिक की दर्शन यात्रा का विस्तृत हृदयहारी वर्णन उववाईसूत्र में आता है। जमालि राजकुमार भगवान महावीर के दर्शन करने घर से जिस ठाट-बाट से निकला उसका वर्णन भगवतीसूत्र, शतक ९, उद्देशक ३३ में आता है। इसी प्रकार महाबलकुमार का वर्णन भगवतीसूत्र , शतक ११, उद्देशक ११ में है। थावच्चापुत्र की दीक्षा का वर्णन ज्ञातासूत्र, अध्ययन ५ में उपलब्ध है। वह वर्णन रोचक होने से यहाँ उद्धृत किया गया है। विवाह समारोह एवं दीक्षा यात्रा का वर्णन अन्तकृद्दशा महिमा, पृ. ४७०-४७६ पर भी दिया गया है। पाठक वहाँ देख सकते हैं।

Explanation—In the present *Sutra,* the description is extremely brief and special occasions are referred to as the same as had been in the case of certain persons already mentioned (in this or other context). Dhanya Kumar's going to Bhagavan Mahavir for his *darshan* is referred to as similar to that of Konik. The detailed description of the manner in which king Konik went to Bhagavan Mahavir can be seen in *Uvavayee Sutra* where the description is detailed and interesting. It touches the very heart. The description of Jamali Kumar is in *Bhagavati Sutra,* Shatak 9, Uddeshak 33 and the pomp and show with which Dhanya Kumar left his house is similar to that of prince Jamali. The detailed description of Mahabal Kumar is in *Bhagavati Sutra,* Shatak 11, Uddeshak 11. The initiation of Thavachchaputra is mentioned in chapter 5 of *Jnata Sutra.* This description is interesting, so it is reproduced here. The account of marriage celebration and the journey for initiation is mentioned at pp. 470-476 of *Antakrid-dasha Mahima* also. Readers can see it from there.

■ *थावच्चापुत्र का प्रव्रज्या ग्रहण*

थावच्चापुत्र भी भगवान को वंदना करने के लिए निकला। मेघकुमार की तरह धर्म-श्रवण कर और हृदय में धारण करके जहाँ थावच्चा-गाथापत्नी थी, वहाँ आया, आकर चरण स्पर्श किया, मेघकुमार की तरह अपने वैराग्य का निवेदन किया, उसी प्रकार थावच्चापुत्र की भी निवेदना समझ लेना चाहिए।

तत्पश्चात् जब थावच्चा-गाथापत्नी विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत-सी **आघवनी**—सामान्य कथन से, **पन्नवणा**—विशेष कथन से, **सन्नवणा**—धन-वैभव आदि का लालच दिखाकर, **विन्नवणा**—आजिजी करके थावच्चापुत्र को सामान्य कहने, विशेष कहने, ललचाने और मनाने में समर्थ नहीं हुई तब इच्छा न होने पर भी उसने थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण स्वीकार कर लिया। विशेषता यह है कि (माता ने कहा–) "मैं निष्क्रमणाभिषेक देखना चाहती हूँ।" तब थावच्चापुत्र मौन रहा।

तत्पश्चात् वह थावच्चा सार्थवाही आसन से उठी, उठकर उसने महान् अर्थ वाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट ग्रहण की, भेंट ग्रहण करके मित्रों, ज्ञातिजनों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों आदि से परिवृत्त होकर

जहाँ कृष्ण वासुदेव के श्रेष्ठ भवन के मुख्य प्रवेश द्वार का देशभाग था, वहाँ आई, आकर प्रतिहार द्वारा दिखलाये मार्ग से जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आई, आकर दोनों हाथ जोड़, सिर पर आवर्त कर, मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर उस महाअर्थ वाली, महामूल्यवान, महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट को सामने रखा, सामने रखकर इस प्रकार कहा-"देवानुप्रिय ! थावच्चापुत्र नामक मेरा एक ही पुत्र है जो मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का स्थान, कार्य करने में सम्मत, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों की पेटी के समान है, रत्न है, रत्नरूप है, जीवन के उच्छ्वास के समान है, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गूलर के फूल के समान जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन करने की तो बात ही क्या है?

जैसे उत्पन्न, पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है और जल में बढ़ता है, फिर भी पंक की रज से अथवा जल कणों से लिप्त नहीं होता है, इसी प्रकार यह थावच्चापुत्र कामों में उत्पन्न हुआ है, और भोगों में पल-पुसकर वृद्धिंगत हुआ है फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ–कामभोगों से विरक्त रहा।

हे देवानुप्रिय ! वह अब संसार भय से उद्विग्न एवं जन्म, जरा, मरण से भयभीत हो अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता है। मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय ! मेरी अभिलाषा है कि प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले थावच्चापुत्र के लिए छत्र, मुकुट और चामर प्रदान करें।"

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चा-गाथापत्नी से इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रिये ! तुम निश्चिन्त और विश्वस्त रहो। मैं स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण सत्कार करूँगा।" (ज्ञातासूत्र, अ. ५)

■ INITIATION OF THAVACHCHAPUTRA

Thavachchaputra had also left his house to greet Bhagavan Mahavir with respect. He heard the spiritual discourse like Megh Kumar, meditated on it from the core of his heart and came to his mother Thavachchcha *Gathapatni*, touched her feet and like Megh Kumar talked about his feelings of detachment. He sought permission for initiation like Megh Kumar.

Thereafter, *Gathapatni* mentioned several comforts and discomforts and other situations faced during monkhood. With normal talk (*Aghawani*), emphatic expression (*Pannavana*), allurement of worldly wealth (*Sannavana*) and by entreats (*Vinnavana*) she tried to influence Thavachchaputra. But all her efforts failed, she with a heavy mind, accepted departure of her young son, Thavachchaputra, for initiation. The only departure from Megh Kumar's story was that Thavachchaputra remained silent when she stated that she wanted to see his anointing for the purpose of initiation.

Thereafter, Thavachcha *Sarthvahi* got up from her seat and came to the main gate of the palace of Krishna Vasudev with very costly gifts worthy of presentation to great men and kings. She was accompanied with her friends, her family members, her relatives and her social circle. She then followed the path pointed out by the gateman and came to Krishna Vasudev. She joined her palms in respect, placed them near her forehead and praised the king by words denoting his success and glory. She then placed the gifts before Krishna Vasudev and said—"O the blessed ! I have the only son Thavachchaputra. I like him. He is my courage, my affection, my faith, my treasure, my proficiency, my bundle of good qualities, my jewel, my very life-force, my ecstatic pleasure and my every thing.

Just as lotus takes root in mud and grows therein but remains unaffected by mud or water-drops, same is the state of my son Thavachchaputra. He is also unaffected by luxurious living and comforts although he was born and brought up in a comfortable and luxurious environment.

O *Devanupriya* (beloved of gods) ! He is now afraid of the world. He is extremely dejected to see birth, adage and death. He wants to leave the house and get initiated near Arhat Arishtanemi. I want to arrange a function in his honour to celebrate his initiation. So my desire is that your honour may kindly provide me the royal *chhatra* (umbrella), *mukut* (the

crown) and *chamar* (whisks) for the said celebration at the initiation of Thavachchaputra."

Then, Krishna Vasudev said—"O *Devanupriye* ! Do not worry and rest assured. I shall myself conduct the initiation ceremony of Thavachchaputra." (*Jnata Sutra,* Chapter 5)

५. तए णं से धण्णे अणगारे जं चेव दिवसे मुंडे भवित्ता (जाव) पव्वइ, तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

५. इसके पश्चात् धन्य अनगार जिस दिन प्रव्रजित हुआ, उसी दिन श्रमण भगवान महावीर के पास आया, आकर प्रभु को वन्दन किया, नमस्कार किया तथा वन्दन और नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगा—

5. Thereafter, on the very day when ascetic Dhanya accepted initiation, he came to Bhagavan Mahavir, bowed to him in respect and said—

६. "एवं खलु इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तए।

छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि कप्पेइ मे आयंबिलं पडिगहिए नो चेव णं अणायंबिलं। तं पि य संसट्ठं नो चेवणं असंसट्ठं। तं पि णं उज्झियधम्मियं। नो चेव अणुज्झियधम्मियं। तं पि य जं अण्णे बहवे समणमाहण-अतिहि-किवण-वणीमगा नावकंखंति।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

६. "भन्ते ! आपश्री की अनुज्ञा—आज्ञा प्राप्त करके मैं जीवन-पर्यन्त निरन्तर षष्ठ (बेला-बेला) तप से तथा पारणे में आयंबिल करके अपनी आत्मा को भावित (पवित्र) करते हुए तपाराधना करना चाहता हूँ।

षष्ठ तप (बेले) के पारणा में भी मुझे आयंबिल ग्रहण करना कल्पता है, परन्तु अनायंबिल ग्रहण करना नहीं कल्पता। वह भी संसृष्ट हाथों से लेना कल्पता है, असंसृष्ट

हाथों से लेना नहीं कल्पता। वह भी उज्झित धर्म वाला कल्पता है, अनुज्झित धर्म वाला नहीं कल्पता। उसमें भी वह भक्त-पान कल्पता है, जिसके लेने की अन्य बहुत से श्रमण (आजीविक आदि) या माहण (ब्राह्मण), अतिथि, कृपण और वनीपक (भिखारी) भी इच्छा नहीं करते।"

तब धन्य अनगार से भगवान ने इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रिय ! तुमको जैसे सुखकर हो, वैसा करो, परन्तु विलम्ब मत करो।"

6. "Bhante ! With your permission, I want to observe two day's fast regularly till my last breath and on the day of breaking the fast, I want to do *Ayambil*. Thus, I want to uplift my soul with such austerities.

At the time of conclusion of each two day fast, it shall be my vow to observe *Ayambil* that day and not otherwise. And that too with a resolve to accept food only from hands besmeared with food (*Sansrisht* hands) and not otherwise, to accept food that has lost its taste (*Ujjhit* food) and not otherwise, to accept food that has been refused by many monks of other faith (*Ajivik* etc.), Brahmins, guests, destitute and even by beggars."

Then, Bhagavan Mahavir said—"O the blessed ! You may do as you wish but don't delay it."

विवेचन—इस सूत्र में आये हुए कुछ विशेष शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है-

छट्ठ तप—छह टंक भोजन का त्याग से मतलब है पहले दिन एकाशना करना (एक टंक निराहार), दूसरे दिन एवं तीसरे दिन उपवास करना अर्थात् (४ टंक निराहार), चौथे दिन फिर एकाशना करना, एक टंक निराहार, इस प्रकार जिस तप में छह टंक, छह बार नहीं खाने का नियम होता है वह छट्ठ भत्त तप-बेला कहा जाता है। इसी प्रकार आठ टंक आहार त्याग का अर्थ अट्ठम तप है। उपवास को चउत्थ भत्त अर्थात् चार बार भोजन का त्याग कहा जाता है।

तप की इस प्राचीन व्याख्या से पता चलता है-धारणा, पारणा करने की प्रथा उस युग में प्रचलित नहीं थी।

आयंबिल—इसमें आयाम और आम्ल दो शब्द हैं। आयाम अर्थात् मांड या ओसामण तथा अम्ल अर्थात् खट्टा (चतुर्थ रस)। इन दोनों को मिलाकर जो भोजन बनता है वह आचामाम्ल या आयंबिल कहा जाता है। इस व्याख्या के अनुसार ओदन (चावल), उड़द तथा सत्तू इन तीन अन्नों से आयंबिल किया जाता है। अम्ल (खटाई) शब्द से यह अनुमान किया जाता है कि शायद प्राचीन काल में आयंबिल के साथ छाछ का भी सम्बन्ध रहा हो, किन्तु स्वाद-विजय की दृष्टि से आयंबिल का अत्यधिक महत्त्व है। कहीं-कहीं तो उपवास से भी अधिक आयंबिल तप पर बल दिया गया है। आयंबिल अनेक रोगों में भी विशेष लाभकारी होता है, यह आधुनिक आरोग्यशास्त्रियों ने माना है। प्रवचन सारोद्धार, गाथा १६०३ में इस सम्बन्ध में काफी विस्तारपूर्वक चर्चा है।

संसृष्ट और उज्झितधर्मिक—ये शब्द भी नीरस आहार की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं। गृहस्थ भोजन कर रहा हो, उस समय मुनि गोचरी के लिए गृहस्थ के घर पहुँच जाये, तब दाता का हाथ दाल, साग, चावल आदि रसदार वस्तु से लिप्त हो, संसृष्ट हो और वह दाता उसी हाथ से भिक्षान्न देता हो तो उसे **'संसृष्ट अन्न'** कहते हैं। धन्य अनगार ने संसृष्ट हाथ से दिया हुआ अन्न ग्रहण करने का संकल्प लिया है।

उज्झितधर्मिक—जो खाद्य या पेय इतना नीरस हो जिसे कोई खाना-पीना पसन्द नहीं करे केवल फेंकने लायक खाद्य-पेय को यहाँ उज्झितधर्मिक कहा है। धन्य अनगार ऐसा बेस्वाद खाद्य-पेय लेने का संकल्प करते हैं। इस कठोर संकल्प में धन्य अनगार की शरीर के प्रति चरम अनासक्ति तथा उत्कृष्ट रसनेन्द्रिय संयम की झलक मिलती है।

Commentary—Explanation of certain words—

Chhattha Tap—It means to take food only once in the day before the day of fast and to avoid food second time (observing *Ekashana*), to observe complete fast on second and third day, *i.e.*, to miss both the meals in these two days and on completing the two day's fast to take food only once on the following day. Thus, in all food of six times (one of the day before fast, two each of the two days of fast and one of the following day) is avoided. Similarly when food is avoided continuously on eight times for meals, it is *Attham Bhakt, i.e.*, three day fast. In *Upavas* or one day fast food for four occasions of taking meals (one of the day preceding, two of the day of fasting and one of the following day) is avoided.

The above description about the manner in which fasting was done indicates that in those days, the practice of *Dharana* (eating rich food on the evening before the fasting day) and *Parana* (breaking fast with special preparations on the morning following the fasting day) were not prevailent.

Ayambil—It is made of two words *Ayam* and *Aamla*. *Ayam* means *maand* (thick liquid). *Aamla* means sour. When food is prepared by adding these two things, that is known as *Ayambil* or *Achamamla*. According to this explanation rice, *urad* (a type of pulse) and *sattu* (wheat or barley flour)—these three foodstuffs can be used in *Ayambil*. The word *Aamla* (sour) indicates that probably in ancient times, whey was taken in *Ayambil*. But *Ayambil* is important in controlling urge for taste. Sometimes *Ayambil* is considered more important than even a fast. According to medical practitioners, *Ayambil* is very helpful in curing many diseases. In *Pravachan Saroddhar*, verse 1603, there is mention of it in detail.

Sansrisht and Ujjhit-dharmik—These two words are very important from the point of view of tasteless food. When a householder is taking his food, his hand is besmeared with the cooked pulse, vegetable, rice and other liquid or juicy food. In case a monk happens to come there at that time, if the householder offers food with those hands, it is called *Sansrisht* food. Ascetic Dhanya had undertaken to accept only *Sansrisht* food.

Ujjhit-dharmik—A food or drink that has become tasteless to such an extent that no one likes to accept it and is only worthy of being thrown in the dust-bin is called *Ujjhit-dharmik*. Ascetic Dhanya had undertaken to accept such food. This most difficult restraint indicates that Dhanya *Anagar* (Ascetic) had completely detached himself from the care for his body and for the taste, so as to conquer sense of taste.

७. तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठ जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से धण्णे अणगारे पढम-छट्ठखमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ। जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ (जाव) जेणेव कायंदी नयरी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता कायंदीए नयरीए उच्च. (जाव) अडमाणे आयंबिलं, नो अणायंबिलं (जाव) नावकंखंति।

तए णं से धण्णे अणगारे ताए अब्भुज्जयाए पययाए पयत्ताए पग्गहियाए एसणाए एसमाणे जइ भत्तं लभइ, तो पाणं न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ।

तए णं से धण्णे अणगारे अदीणे अविमणे अकुलसे अविसादी अपरितंतजोगी जयण-घडणजोगचरित्ते अहापज्जत्तं समुदाणं पडिगाहेइ। पडिगाहित्ता कायंदीओ नयरीओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता जहा गोयमे (जाव) पडिदंसेइ।

तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए (जाव) अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं आहारं आहारेइ। आहारित्ता संजमेणं तवसा (जाव) विहरइ।

७. तदनन्तर वह धन्य अनगार भगवान महावीर से अनुज्ञा प्राप्त करके हर्षित एवं तुष्ट होकर जीवन-पर्यन्त निरन्तर षष्ठ तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

उसने प्रथम षष्ठ तप के पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। जिस प्रकार गौतम स्वामी ने भगवान से पारणा लेने की आज्ञा ली, उसी प्रकार पारणा के लिए धन्य अनगार ने भी भगवान से आज्ञा प्राप्त की। तब फिर जिस ओर काकन्दी नगरी थी उस ओर चला और चलकर काकंदी नगरी के उच्च, नीच और मध्यम कुलों में (सामुदानिक भिक्षा के लिए) घूमता हुआ, आयंबिल योग्य रूखा आहार मिला, वही धन्य अनगार ने ग्रहण किया। सरस आहार ग्रहण करने की आकांक्षा भी नहीं की।

इसके पश्चात् उस धन्य अनगार ने सुविहित (आगमानुकूल) उत्कृष्ट यतना सहित, दाता द्वारा प्रदत्त तथा गुरुजनों द्वारा जिसकी आज्ञा की गई है, ऐसी एषणा समितियुक्त गवेषणा करते हुए यदि भक्त (भोजन) प्राप्त हुआ, तो पान (पानी) प्राप्त नहीं हुआ और यदि पान प्राप्त हुआ तो भक्त प्राप्त नहीं हुआ।

तब भी वह धन्य अनगार दीनतारहित प्रसन्नचित्त, कषाय आदि से रहित, विषादरहित, अपरिश्रान्त योगी अर्थात् निरन्तर समाधि भाव से युक्त था, तथा उसने

प्राप्त योगों अर्थात् संयम की यतना रखते हुए अप्राप्त योगों की घटना अर्थात् जो प्राप्त नहीं हुआ उस उत्तम चारित्र भाव की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहकर शुद्ध निर्दोष चारित्र का पालन किया। वह यथाप्राप्त अर्थात् समुदान–जैसा मिलता वैसा ही भिक्षान्न ग्रहण कर, काकन्दी नगरी से बाहर निकला। भगवान के निकट आया। जिस प्रकार गौतम स्वामी ने भगवान को आहार दिखलाया था, उसी प्रकार धन्य अनगार ने भी भगवान को आहार दिखलाया।

इसके पश्चात् धन्य अनगार ने श्रमण भगवान महावीर से अनुज्ञा प्राप्त करके मूर्च्छारहित भावपूर्वक, राग-द्वेष से रहित होकर अनासक्त भाव से इस प्रकार आहार किया, जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करते समय बिल के दोनों पार्श्व भागों को स्पर्श नहीं करके मध्य भाग से ही उसमें प्रवेश करता है। अर्थात् धन्य अनगार भी मुख के दोनों पार्श्व भागों से स्पर्श किये बिना ही स्वाद की आसक्ति से रहित होकर आहार करता था। आहार करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

7. After getting permission from Bhagavan Mahavir, Dhanya *Anagar* became happy and satisfied and observed continuously two day fast throughout his life, thus purifying his soul with the hard austerity.

He, on the day immediately following his first two day fast, did *Svadhyay* (study of scriptures or study of self). He took permission of Bhagavan Mahavir to break his fast as Gautam Swami did. Thereafter he went towards Kakandi. He went to high, low and medium families for *bhiksha* (seeking food in prescribed manner) and accepted food according to his vow and proper for *Ayambil.* He never desired to have tasty food.

Later, while moving in search of food following *Eshana Samiti* (the code of accepting food), with highest sense of discernment, according to manner prescribed in scriptures, offered by the owner and allowed by the teacher, he sometimes got food and not water and at others he got only water and not food.

Even then he showed no signs of helplessness; he was happy and devoid of pain, sadness, fatigue. He always remained in a state of equanimity. Observing discrimination required in ascetic order he had accepted and making efforts in still higher state of ascetic conduct he had not yet achieved, he followed pure and stainless conduct. He accepted in *Bhiksha* the food that was available and conformed to the restraints and left Kakandi with that food. He came to Bhagavan Mahavir and showed him what he had got following the code practised by Gautam Swami.

Thereafter he, after getting the permission of Bhagavan Mahavir, took that food in a detached manner without having any feeling of like or dislike in a state of complete equanimity. He put the morsel of food in his mouth and passed it down throughing his throat in the same manner as a snake does without touch the two sides while going into a hole and just follow the central path. He took meals without any attachment for taste. After taking the food, he again engaged himself in restraints.

विवेचन—इस सूत्र में धन्य अनगार के दृढ़ प्रतिज्ञा-पालन का वर्णन किया है। प्रतिज्ञा ग्रहण करके वह जब भिक्षा के लिए नगर में गये तो ऊँच, नीच और मध्य अर्थात् सधन, निर्धन एवं मध्यम घरों में आहार-पानी के लिए भ्रमण करते हुए जहाँ आयंबिल के योग्य उज्झित आहार मिलता था वहीं से ग्रहण करते थे। वे गुरुओं से आज्ञा प्राप्त कर उत्साह के साथ भिक्षा हेतु गये। भिक्षा में जहाँ भोजन मिला, वहाँ पानी नहीं मिला तथा जहाँ पानी मिला वहाँ भोजन नहीं मिला। इस पर भी धन्य अनगार कभी दीनता, खेद, क्रोध, कलुषता और विषाद का अनुभव नहीं करते थे, प्रत्युत निरन्तर समाधियुक्त होकर, प्राप्त योगों में अभ्यास बढ़ाते हुए और अप्राप्त योगों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए जो कुछ भी भिक्षावृत्ति में प्राप्त होता था उसको ग्रहण करते थे।

भिक्षा में उनको जो कुछ भी नीरस—फेंकने योग्य आहार प्राप्त होता था उसको वे इतनी अनासक्ति से खाते थे जैसे एक सर्प सीधा ही अपने बिल में घुस जाता है अर्थात् वे भोजन को स्वाद लेकर न खाते थे, प्रत्युत संयम-निर्वाह के लिए शरीर-रक्षा ही उनको अभीष्ट थी। इस अस्वाद वृत्ति को **'बिलमिव पण्णगभूएणं'** शब्द द्वारा वृत्तिकार ने अर्थ किया है—जैसे सर्प पार्श्व

भाग का स्पर्श न करके सीधा सरल होकर बिल में प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार धन्य मुनि बिना किसी आसक्ति के आहार का स्वाद लिए बिना उस नीरस–बेस्वाद आहार को गले उतार जाते थे।

Explanation—In this *Sutra,* the firm determination (vow) of Dhanya *Anagar* and his great care in following it in letter and spirit has been mentioned. When he went for *Bhiksha* after accepting his vow (restraint), he went to high, medium and low families for food and water. He accepted food only from that house where it was suitable for *Ayambil* and where it was fit to be discarded by others. He went in a courageous manner after seeking permission of the *Guru.* In *Bhiksha* sometimes he got only food and no water and sometime only water but no food. However, he never showed any signs of helplessness, disgust, anger, meanness or sadness. But always remaining in a state of equanimity, increasing his efforts in the accepted code and seriously trying to gain still higher code of conduct, he accepted whatever he got in *Bhiksha* provided it was according to the restraints he had undertaken.

He took the tasteless food worthy to be thrown in a detached manner just as a snake enters his place of stay. He was never looking for the taste of meals but his only consideration was to look after his body to the extent he was able to continue the ascetic practices. This conduct of ignoring taste refers to the words *'Bill-miv Pannag bhootenam'*—which mean as under—Just as a snake enters the hole straight without touching the sides of the hole, he devoured the morsel of tasteless and dry food without any feeling of attachment for its taste.

८. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कायंदीओ नयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से धण्णे अणगारे तेणं उरालेणं (जहा) खंदओ जाव सुहुय उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

८. तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने अन्यदा कदाचित् एक दिन काकंदी नगरी के सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान किया और बाहर जनपदों में विहार करने लगे।

तब धन्य अनगार ने भी श्रमण भगवान महावीर के तथारूप (ज्ञानवंत बहुश्रुत) स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और इसके पश्चात् वह संयम और तप से अपने आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

वह धन्य अनगार उस उदार (घोर) तप के कारण स्कन्दक की तरह सुहुत (घी आदि से प्रज्वलित यज्ञाग्नि) अग्नि के समान अतीव सुशोभित हो रहे थे।

8. Thereafter one day Bhagavan Mahavir left *Sahasra-Amra-Van* garden of Kakandi in order to move in other areas.

Then Dhanya *Anagar* learnt *Samayik* (practice for attaining state of equanimity) and eleven *Anga Sutra* from the learned monks in the order of Mahavir. He then moved purifying his self with restraint and austerities.

That Dhanya *Anagar* was looking bright like a fire to which *ghee* is added from time to time as had been in case of Skandak. This was all due to his hard austerities.

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में धन्य अनगार के तप प्रारम्भ करने के पश्चात् ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन करने की बात कही है। अन्य स्थानों पर मुनियों के वर्णन में पहले अध्ययन (ज्ञानार्जन) करके फिर तपश्चरण में प्रवेश होने का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है धन्य अनगार दीक्षा लेते ही उग्र तपश्चरण में प्रवृत्त हो गये और फिर तपश्चरण के मध्य ही उन्होंने स्थविरो के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

आगमों में स्थविर तीन प्रकार के कहे हैं—

(१) **वयःस्थविर**—साठ वर्ष की आयु वाला श्रमण।

(२) **प्रव्रज्या स्थविर**—बीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला भिक्षु।

(३) **श्रुत स्थविर**—स्थानांग आदि आगमों के ज्ञाता।

धन्य अणगार ने सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। इस प्रसंग में प्रश्न उठता है कि यहाँ ग्यारह अंगों में प्रथम अंग तो आचारांग है, फिर यहाँ सामायिक का उल्लेख क्यों है? टीकाकारों ने इस पर व्याख्या करते हुए लिखा है–सामायिक (श्रमणसूत्र) में भी हिंसा त्यागकर अनारम्भ की चर्चा है और आचारांग में भी हिंसा त्याग की मुख्यता है, इस प्रकार दोनों के विषय में समानता है, एकरूपता है, इस एकरूपता को ध्यान में रखकर ही यहाँ सामायिक को प्राथमिकता दी है। निर्युक्ति में आचारांग का एक नाम 'आजाइय'–आजाति है। उस परिप्रेक्ष्य में यहाँ सामाइय–माजइयं–सामायिक तथा आचारांग आदि अर्थ भी घटित होता है। इससे सामायिक, आचारांग से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया यह अर्थ प्रकट होता है।

स्कन्दक अनगार की उदग्र तपःसाधना का वर्णन भगवतीसूत्र में है, वहाँ बताया है उस उदार–घोर सुदीर्घ तपःसाधना से स्कन्दक का शरीर माँसरहित हो गया। शरीर की हड्डियाँ चमड़े से ढकी हुई रह गईं। नसों–नाड़ियों का जाल दिखाई देने लगा। वह इतने दुर्बल हो गये थे कि कुछ बोलने के पहले ही बोलने के विचार मात्र से ही थक जाते थे। इतनी दुर्बलता में भी उनका मुख तपस्तेज से प्रज्वलित अग्निशिखा की तरह अत्यन्त प्रदीप्त और शोभित हो रहा था। आगे के सूत्रों में तपःसाधना से दुर्बल धन्य अनगार के शरीर की रोमांचक दशा का वर्णन किया गया है।

Explanation—In the present *Sutra,* it is mentioned that Dhanya *Anagar* studied eleven *Anga Sutras* after starting the austerities (*tap*). In other *Sutras,* it is mentioned that the ascetic first studied the scriptures and then started practicing austerities (*tap*). This fact indicates that Dhanya *Anagar* started hard austerities immediately after his initiation and it was during his austerities that he studied *Samayik* and eleven *Anga Sutras* from the learned monks (*Sthavirs*).

In *Agams, Sthavirs* are of three categories—

(1) Vaya Sthavir—(Old in age) An ascetic who is of sixty years of age or more.

(2) Pravrajya Sthavir—(Senior on the basis of period of initiation) It is that monk whose period of initiation is twenty years or more.

(3) Shrut Sthavir—(Accomplished and learned in view of his scriptural knowledge) They are those monks who have studied *Sthanang* and other *Agams.*

Dhanya *Anagar* learnt practice of *Samayik* (equanimity) and eleven *Anga Sutras.* In this context, question arises that the first *Anga Sutra* is *Acharang,* why then *Samayik* has been mentioned here ? The commentators in this context have mentioned that *Samayik* (*Shraman Sutra*—The *Avashyak Sutra* for monks) also deals with avoidance of violence and all such activities including even subtle violence (*arambh*). *Acharang Sutra* also primarily deals with discarding violence (*Himsa*) of all types. So the subjects dealt in both are almost similar. Keeping this similarity in view *Samayik* is mentioned here first. In *Niryukti,* another name for *Acharang* is ***Ajaiya***—*Ajati.* From this the word ***Samaiya—Majaiya*** is derived which means *Samayik.* Thus, it denotes *Acharang* also. Thus, he studied *Samayik* and eleven *Anga Sutras* starting from *Acharang* is the underlying meaning.

The hard austerities of monk Skandak are mentioned in *Bhagavati Sutra.* There it is stated that his body had become very weak due to hard austerities observed for a long period. The bones in his body were just covered with a thin layer of skin. His nerves had become visible. He had grown so feeble that he was feeling fatigue at the very thought of speaking something. Even in that state his face was shining bright like a lighted fire with an aura of his austerities and penances. In the following *Sutras,* there is an interesting account of Dhanya *Anagar* and the weakness appearing in his body due to excessive austerities.

धन्य अणगार का तपोजनित लावण्य

पाँवों का वर्णन

९. धण्णस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था, से जहा नामए सुक्कछल्ली इ वा, कट्ठपाउया इ वा, जरग्गओ वाहणा इ वा, एवामेव धण्णस्स

अणगारस्स पाया सुक्का निम्मंसा अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंससोणियत्ताए।

९. धन्य अनगार के पैरों का तपोजन्य रूप-लावण्य (शारीरिक अवस्था) इस प्रकार का हो गया था, जैसे वृक्ष की सूखी छाल हो वैसी पैरों की चमड़ी हो गयी। काठ की खड़ाऊँ हो तथा पुराना जूता हो (इस प्रकार पैर का पंजा हो गया) इस प्रकार धन्य अनगार के पैर सूखे थे–रूखे थे और उनका माँस सूख गया था। अस्थि (हड्डी), चर्म (चमड़ी) और शिराओं (नसों) से ही पैरों की पहचान होती थी, उनमें माँस और शोणित (रक्त) के क्षीण हो जाने से उनसे वे पहचाने नहीं जाते थे।

THE BRIGHTNESS DUE TO AUSTERITIES IN DHANYA *ANAGAR*

DESCRIPTION OF FEET

9. The state of feet of Dhanya *Anagar* was as under—The skin of his feet was like dry bark of a tree. His feet were like wooden slippers (*Khadaon*) or an old shoe. His feet had dry skin. Their flesh had dried up. They were recognised only by bones, skin and nerves. As the flesh and blood had reduced to the barest minimum, the feet could not be recognised by these.

पैरों की अँगुली का वर्णन

१०. धण्णस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाणं अयमेयारूवे (जाव) से जहा नामए कलसंगलिया इ वा मुग्गमाससंगलिया इ वा, तरुणिया छिण्णा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी मिलायमाणी चिट्ठंति, एवामेव धण्णस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ (जाव) सोणियत्ताए।

१०. धन्य अनगार के पैरों की अँगुलियों का तपोजन्य रूप–लावण्य इस प्रकार दीखता था, जैसे कलाय (मटर) की फलियाँ हों, मूँग की फलियाँ हों, उड़द की फलियाँ हों–इन कोमल फलियों को काटकर धूप में डाल देने पर जैसे वे सूखी और मुर्झायी हो जाती हैं, वैसे ही धन्य अनगार के पैरों की अँगुलियाँ भी सूख गई थीं और मुरझा गई थीं। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही दिखाई देती थीं, माँस और शोणित उनमें (प्रायः) नहीं के बराबर ही थे।

DESCRIPTION OF TOES

10. The toes of Dhanya *Anagar* were like dried beans of peas, pulses or *moong, urad*—such beans that have dried up in the sun and have lost their lustre. Their flesh and blood had almost finished. Only bones, skin and nerves were visible in them.

जंघा-वर्णन

११. धण्णस्स णं अणगारस्स जंघाणं अयमेयारूवे (जाव) से जहा (जाव) काकजंघा इ वा, कंकजंघा इ वा, ढेणियालियाजंघा इ वा (जाव) सोणियत्ताए।

११. धन्य अनगार की जंघाओं (पिण्डलियों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार दीखता था, जैसे काक पक्षी (कौए) की जंघा हो (अथवा काक जंघा नामक वनस्पति की नाल जैसी हो), कंक पक्षी की जंघा हो, ढेणिक पक्षी (पानी में रहने वाला एक माँसाहारी पक्षी) अथवा मोरनी या टिड्डा की जंघा हो। धन्य अनगार की जंघाएँ भी सूखकर इसी प्रकार दीखने लगी थीं। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, उनका माँस और शोणित प्रायः सूख गया था।

DESCRIPTION OF SHINS

11. The shins of Dhanya *Anagar* had grown weak due to austerities and looked like those of a crow, *kank* (a bird), *dhenik* (a carnivorous bird living in water), a she-peacock, a grasshopper or like the stalk of *kak-janghe* vegetable. His thighs and shins had also dried up and contained only bones, skin and nerves. Their flesh and blood had almost dried up.

जानु-वर्णन

१२. धण्णस्स णं अणगारस्स जाणूणं अयमेयारूवे (जाव) से जहा (जाव) कालिपोरे इ वा, मयूरपोरे इ वा, ढेणियालियापोरे इ वा (जाव) सोणियत्ताए।

१२. धन्य अनगार के जानुओं (घुटनों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखता था, जैसे काली वनस्पति का पर्व (सन्धि स्थान या जोड़) हो, मयूर पक्षी का पर्व

(मोर के पैरों की गाँठ या जोड़) हो, ढेणिक पक्षी का पर्व हो। धन्य अनगार के जानु भी सूख गये थे। माँसरहित हो गये थे। उनमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही केवल बची थीं, माँस और रक्त प्रायः उनमें सूख चुका था।

DESCRIPTION OF KNEES

12. Due to austerities, the knees of Dhanya *Anagar* were looking like joints of *Kali* (a vegetable), the joints of the feet of a peacock, the joints of *Dhenik* bird. His knees had also dried up and only bones, skin and nerves were present. The blood and flesh had almost dried up.

उरु-वर्णन

१३. धण्णस्स णं अणगारस्स उरुस्स अयमेयारूवे तव रूवलावण्णे होत्था—से जहा (जाव) नामए बोरीकरीले इ वा, सल्लइकरीले इ वा, सामलिकरीले इ वा, तरुणिए उण्हे (जाव) चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स उरु (जाव) सोणियत्ताए।

१३. धन्य अनगार की उरुओं (सांथलों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार दीखता था, जैसे बदरी (बेर) शल्यकी तथा शाल्मली वृक्षों की कोमल कोपलें काटकर धूप में डालने से सूख गई हों, मुरझा गई हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की उरु भी सूख गई थीं, मुरझा गई थीं। उनमें माँस और शोणित नाम मात्र का ही रह गया था।

DESCRIPTION OF THIGHS

13. Due to hard austerities the thighs of Dhanya *Anagar* were looking like cut and dried soft petals of berry and *Shalmali* tree. They were dried and had lost their lustre. The flesh and blood in them was the barest minimum—almost nil.

कटि-वर्णन

१४. धण्णस्स कडिपत्तस्स इमेयारूवे (जाव) से जहा (जाव) उट्टपादे इ वा, जरग्गपाए इ वा, महिसपाए इ वा, (जाव) सोणियपत्ताए।

१४. धन्य अनगार की कटि पत्र (कमर) का तपस्याजनित रूप-लावण्य इस प्रकार दीखने लगा था, जैसे ऊँट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैर हो और बूढ़े महिष (भैंसे) का

पैर हो। उसमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं, माँस और शोणित उसमें नाम मात्र का ही रह गया था।

DESCRIPTION OF WAIST

14. Due to austerities, the waist of Dhanya *Anagar* was looking like foot of a camel, an old bullock or an old he-buffalo. It had flesh and blood to the barest minimum. Only bones, skin and nerves were left.

उदर-वर्णन

१५. धण्णस्स उयरभायणस्स इमेयारूवे (जाव) से जहा (जाव) सुक्कदिए इ वा, भज्जणयकभल्ले इ वा, कट्ठकोलंबए इ वा, एवामेव उदरं सुक्कं (जाव)।

१५. धन्य अनगार के उदर-भाजन (पेट) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखने लगा था, जैसे सूखी मशक हो, चने आदि भूनने का खप्पर (भाड़) हो, आटा गूँदने की कठौती हो। इसी प्रकार धन्य अनगार का पेट भी सूख गया (भीतर चिपककर खोखला हो गया) था। उसमें माँस और शोणित प्रायः नहीं रह गया था।

DESCRIPTION OF BELLY

15. Due to hard austerities, the belly of Dhanya *Anagar* was looking like a dry *mashak* (leather bag used to bill water and carry at the back), the flat plate used to parch grams, the vessel used to knead flour. The stomach of Dhanya *Anagar* had dried up, it had gone empty from within and so was sticking inside. The flesh and blood in it had almost finished.

पसलियों का वर्णन

१६. धण्णस्स पासुलिया कडयाणं इमेयारूवे (जाव) से जहा (जाव) थासयावली इ वा, पाणावली इ वा, मुंडावली इ वा (जाव)।

१६. धन्य अनगार की पसलियों का तपोज्यन रूप लावण्य इस प्रकार का दीखने लगा था, जैसे स्थासकों की आवलि अर्थात् जैसे ढलान वाली भूमि पर एक-दूसरे के ऊपर रखी हुई दर्पणों की पंक्ति हो। पाणावली अर्थात् एक-दूसरे पर रखे हुए पान-पात्रों (गिलासों) की पंक्ति हो। मुण्डावली अर्थात् स्थाणु विशेष प्रकार के खूँटों की पंक्ति हो।

जिस प्रकार उक्त वस्तुएँ एक-एक गिनी जा सकती हैं, उसी प्रकार धन्य अनगार की पसलियाँ भी एक-एक गिनी जा सकती थीं। उनमें रहा हुआ माँस और रक्त सूख चुका था। केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र दीखता था, उस पर चर्म का आवरण था और उसमें चमकती नसें ही दिखाई देती थीं।

DESCRIPTION OF RIBS

16. Due to difficult austerities, the ribs of Dhanya *Anagar* were looking like a row of mirrors placed on each other on a sloping land. They were like a line of packs of beatle containers (*panavali*). They were like a line of special type of pegs (*mundawali*). Just as the above things could be counted easily, the ribs of Dhanya *Anagar* could also be counted. The blood and flesh in them had dried up and they had reduced to a structure of bones alone covered with skin. The nerves were shining in it.

पृष्ठकरण्ड-वर्णन

१७. धण्णस्स पिट्ठिकरंडयाणं अयमेयारूवं (जाव) से जहा (जाव) कण्णावली इ वा, गोलावली इ वा, वट्टयावली इ वा, एवामेव (जाव)।

१७. धन्य अनगार के पृष्ठकरण्ड (रीढ़ का ऊपरी भाग) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखता था, जैसे मुकुटों के काँटे अर्थात् मुकुटों की किनारियों के कोरों के भाग हों, परस्पर चिपकाये हुए–लगाये हुए गोल-गोल पत्थरों की पंक्ति हो, तथा लाख के बने हुए विशेष प्रकार के गोल-गोल खिलौने हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की रीढ़ के बीच का रक्त और माँस सूख जाने से वे हड्डियों के गोल छल्ले परस्पर जुड़े हुए, गुँथे हुए थे जिन पर नसों का जाल और चर्म का आवरण मात्र शेष रह गया था।

DESCRIPTION OF UPPER PART OF BACK-BONE

17. Due to hard austerities the upper part of back-bone of Dhanya *Anagar* was looking like the edge of crowns. It was looking like a line of round stones stuck to each other or round toys of lacquer. The flesh and blood in the back-bone had almost dried up. The round rings of the bones were

clearly stuck among themselves under a net of nerves and they simply had a covering of the skin.

उरःकटक-वर्णन

१८. धण्णस्स उरकडयस्स अयमेयारूवे (जाव) से जहा (जाव) चित्तकट्टरे इ वा, वियणपत्ते इ वा, तालियंटपत्ते इ वा, एवामेव (जाव)।

१८. धन्य अनगार के उरःकटक (वक्षःस्थल) अर्थात् छाती का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखने लगा था, जैसे बाँस से बनी टोकरी के नीचे का हिस्सा हो, बाँस की बनी खपच्चियों का पंखा हो तथा ताड़-पत्र का बना पंखा हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की छाती एकदम पतली होकर, सूखकर माँस और शोणित से रहित होकर अस्थि, चर्म और शिरा मात्र शेष रह गई थी।

DESCRIPTION OF CHEST

18. Due to hard austerities, the chest of Dhanya *Anagar* was looking like lower part of a bamboo-basket, a fan made of bamboo sticks or leaves of pine tree. His chest had become thin, its flesh and blood had dried up and only bones, skin and nerves were left.

बाहु-वर्णन

१९. धण्णस्स णं अणगारस्स बाहाणं (जाव) से जहा नामए (जाव) समिसंगलिया इ वा, बाहायासंगलिया इ वा, अगत्थियसंगलिया इ वा, एवामेव (जाव)।

१९. धन्य अनगार की बाहु अर्थात् कंधे से नीचे के भाग रूप भुजाओं का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखने लगा था, जैसे शमी (खेजड़ी) वृक्ष की सूखी हुई लम्बी-लम्बी फलियाँ हों, बाहाया (अमलतास) वृक्ष की सूखी हुई लम्बी-लम्बी फलियाँ हों, अगस्तिक (अगतिया) वृक्ष की सूखी हुई फलियाँ हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की भुजाओं का भी माँस और रक्त सूख गया था और वे इतनी पतली हो चुकी थीं उनमें केवल अस्थि, चर्म और शिराएँ ही दिखाई पड़ती थीं।

DESCRIPTION OF SHOULDERS

19. Due to hard austerities the arms (the lower part of shoulders) were looking like dried long beams of *Khejari* tree, long beans hanging from *Amaltas* tree, long beans of *Agastik* (*Agatiya*) tree. The arms of Dhanya *Anagar* had dried up and their flesh and blood had almost gone. They had become so thin that only bones, skin and nerves were visible.

हस्त-वर्णन

२०. धण्णस्स णं अणगारस्स हत्थाणं (जाव) से जहा (जाव) सुक्कछगणिया इ वा, वडपत्ते इ वा, पलासपत्ते इ वा, एवामेव (जाव)।

२०. धन्य अनगार के कुहनी के नीचे के भागरूप हाथों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार दीखने लगा था, जैसे सूखा छाण (कंडा) हो, सूखे बड़ का पत्ता हो, सूखा पलाश का पत्ता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ भी सूख गये थे। उनमें माँस और रक्त नाम मात्र का ही रह गया था। उनमें अस्थि और शिराओं पर केवल चमड़ी लिपटी हुई प्रतीत होती थी।

DESCRIPTION OF HANDS

20. Due to hard austerities, the hands of Dhanya *Anagar* were looking like dry leaves of Banyan tree or of *Palash* tree. His hands had dried up. They had almost lost entire flesh and blood. They appeared like bones and nerves covered with skin.

हस्तांगुली-वर्णन

२१. धण्णस्स णं अणगारस्स हत्तंगुलियाणं (जाव) से जहा (जाव) कलसंगलिया इ वा, मुग्गसंगलिया इ वा, माससंगलिया इ वा, तरुणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी एवामेव (जाव)।

२१. धन्य अनगार के हाथों की अँगुलियों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार दीखता था, जैसे कलाय अर्थात् मटर की सूखी फलियाँ हों, मूँग की सूखी फलियाँ हों,

उड़द की सूखी फलियाँ हों। उन कोमल फलियों को काटकर, धूप में सुखाने पर जिस प्रकार वे सूख जाती हैं, कुम्हला जाती हैं, सिकुड़ जाती हैं। उसी प्रकार धन्य अनगार के हाथों की अँगुलियाँ भी सूख गई थीं, उनमें माँस और शोणित नहीं रह गया था। मात्र अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं।

DESCRIPTION OF FINGERS

21. Due to hard austerities, the fingers of Dhanya *Anagar* were looking like dry beans of peas, pulses (*moong, urad*). Just as soft beans get dried after they are cut and placed in the sun, they lose their brightness, they shrink. The fingers of Dhanya *Anagar* had also dried up. They had lost flesh and blood. They were merely bones, skin and nerves.

ग्रीवा-वर्णन

२२. धण्णस्स गीवाए (जाव) से जहा (जाव) करगगीवा इ वा, कुंडियागीवा इ वा, उच्चट्ठवणए इ वा, एवामेव (जाव)।

२२. धन्य अनगार की ग्रीवा अर्थात् गर्दन का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार दीखता था, जैसे पानी के घड़े का कांठा (गर्दन) हो, छोटी कुण्डी (पानी की झारी) की गर्दन हो, उच्च स्थापनक-लम्बे मुख वाली सुराही की गर्दन हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की गर्दन माँस और रक्त से रहित होकर सूखी-सी और लम्बी-सी दीखने लगी थी।

DESCRIPTION OF NECK

22. Due to hard austerities, the neck of Dhanya *Anagar* was looking like neck of a pitcher of water, neck of small vessel, neck of water container (*Surahi*) with a long narrow opening. The flesh and blood of the neck was almost gone. It was looking long and dry.

हनु-वर्णन

२३. धण्णस्स णं अणगारस्स हणुयाए (जाव) से जहा (जाव) लाउयफले इ वा, हकुवफले इ वा, अंबगट्ठिया इ वा, एवामेव (जाव)।

२३. धन्य अनगार की हनु अर्थात् ठोड़ी का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखता था, जैसे तूम्बे का सूखा फल हो, हकुव अर्थात् हिंगोटे का सूखा फल हो, आम की सूखी गुठली हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की हनु अर्थात् ठोड़ी भी माँस और शोणित से रहित होकर सूखी हुई दीखने लगी थी।

DESCRIPTION OF CHIN

23. Due to hard austerities, the chin of Dhanya *Anagar* was looking like a dried up gourd, dried up *hingota* fruit, dried up kernel of a mango. The flesh and blood of the chin had gone and it was looking completely dry.

ओष्ठ-वर्णन

२४. धण्णस्स णं अणगारस्स उट्ठाणं (जाव) से जहा (जाव) सुक्कजलोया इ वा, सिलेसगुलिया इ वा, अलत्तगुलिया इ वा, एवामेव (जाव)।

२४. धन्य अनगार के ओष्ठों अर्थात् होठों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार हो गया, जैसे सूखी जोंक हो (लाल रंग सूख जाने पर विवर्ण हो गये), सूखी श्लेष्म की गुटिका अर्थात् कफ की लम्बी बत्ती या गोंद की बत्ती हो। अलते ही गुटिका अर्थात् अगरबत्ती के समान लाख के रस की लम्बी बत्ती हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के होंठ सूखकर माँस और शोणित से रहित विवर्ण हो गये थे।

DESCRIPTION OF LIPS

24. Due to hard austerities, the lips of Dhanya *Anagar* were looking like dried leech, dried gum stick, dried incense stick, long dry stick of lacquer. The blood and flesh of lips had gone and they had lost their colour.

जिह्वा-वर्णन

२५. धण्णस्स णं अणगारस्स जिब्भाए (जाव) से जहा (जाव) वडपत्ते इ वा, पलासपत्ते इ वा, सागपत्ते इ वा, एवामेव (जाव)।

२५. धन्य अनगार की जीभ का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था, जैसे बड़ का सूखा पत्ता हो, पलास का सूखा पत्ता हो, शाक अर्थात् सागवान का सूखा

पत्ता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की जीभ भी सूख गई थी, उसमें माँस और शोणित नहीं रह गया था।

DESCRIPTION OF TONGUE

25. Due to hard austerities, the tongue of Dhanya *Anagar* was looking like dried leaf of a banyan tree, a *palash* tree, a teak tree. The tongue had dried up and the blood and flesh therein was almost nil.

नासिका-वर्णन

२६. धण्णस्स णं अणगारस्स नासाए (जाव) से जहा (जाव) अंबगपेसिया इ वा, अंबाडगपेसिया इ वा, माउलुंगपेसिया इ वा, तरुणिया एवामेव (जाव)।

२६. धन्य अनगार की नाक का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखने लगा था, जैसे आम की सूखी फाँक हो, आम्रातक अर्थात् आमड़े की सूखी फाँक हो, मातुलिंग अर्थात् बिजौरे की सूखी फाँक हो। उन कोमल फाँकों को काटकर, धूप में सुखाने पर, जिस प्रकार वे मुरझा जाती हैं, सूख जाती हैं उसी प्रकार धन्य अनगार की नाक भी माँस और शोणित से रहित होकर सूख गई थी।

DESCRIPTION OF NOSE

26. Due to hard austerities, the nose of Dhanya *Anagar* was looking like dried skin of a mango, *aamda* or *bijaura*. When these fruits are cut and the lone pieces of their skin are kept in the sun, they dry up and lose their colour. The nose of Dhanya *Anagar* had also lost flesh and blood and had dried up.

अक्षि-वर्णन

२७. धण्णस्स णं अणगारस्स अच्छीणं (जाव) से जहा (जाव) वीणाछिड्डे इ वा, वद्धीसगछिड्डे इ वा, पभायतारगा इ वा, एवामेव (जाव)।

२७. धन्य अनगार की आँखों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था, जैसे वीणा का छिद्र हो, वद्धीसक अर्थात् बाँसुरी का छिद्र हो, प्राभातिक तारक अर्थात् प्रभातकाल का प्रभाहीन तारा हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की आँखें भी माँस और

शोणित से रहित होकर अन्दर की ओर धँस गई थीं तथा वे प्रकाशहीन–तेजोहीन हो गई थीं। अर्थात् आँखों में कीकी की मात्र टिमटिमाहट ही चमक ही दिखलाई देती थी।

DESCRIPTION OF EYES

27. Due to hard austerities, the eyes of Dhanya *Anagar* were looking like holes of wind-pipe, a *veena* (musical instrument) or a morning star that has lost its lustre. The eyes of Dhanya were without flesh and blood; they had gone deep inside and they had lost their brightness. Only slight shine in the lens of the eye was visible.

कर्ण-वर्णन

२८. धण्णस्स कण्णाणं (जाव) से जहा (जाव) मूलाछल्लिया इ वा, वालुंकछल्लिया इ वा, कारेल्लयछल्लिया इ वा, एवामेव (जाव)।

२८. धन्य अनगार के कानों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का दीखने लगा था, जैसे मूले के कन्द की कटी हुई लम्बी पतली छाल हो, ककड़ी (चीभड़ा) की कटी हुई लम्बी पतली छाल हो, करेले की कटी हुई लम्बी पतली छाल हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के कान भी सूख गये थे। उनमें माँस और शोणित नाम मात्र का ही रह गया था।

DESCRIPTION OF EARS

28. Due to hard austerities, the ears of Dhanya *Anagar* were looking like thin long skin of a slice of radish, cucumber or *karela*. His ears had dried up and flesh and blood in them was the barest minimum.

शीर्ष वर्णन

२९. धण्णस्स सीसस्स (जाव) से जहा (जाव) तरुणगलाउए इ वा, तरुणगएलालुए इ वा, सिण्हालए इ वा, तरुणए (जाव) चिट्ठइ, एवामेव (जाव)। सीसं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं अट्ठि चम्म छिरत्ताए पण्णायइ, नो चेव णं मंस सोणियत्ताए।

२९. धन्य अनगार के शीर्ष (मस्तक) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार दीखता था, जैसे सूखा तूम्बा हो, सूखा कन्द हो, सूखा तरबूज हो-इन कोमल फलों को काटकर धूप में सुखाने पर जैसे ये सूख जाते हैं, मुरझा जाते हैं, वैसे ही धन्य अनगार का मस्तक का भी माँस और शोणित सूख गया था, मुरझा गया था। उसमें अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष दिखाई देती थीं।

DESCRIPTION OF HEAD

29. The head of Dhanya *Anagar,* due to hard austerities, was looking like a dry gourd or a dried water-melon. Just as these soft fruits when cut and dried in the sun, lose their shine, the flesh and blood of head and forehead of Dhanya *Anagar* had also dried up. Only bones, skin and nerves were visible.

३०. एवं सव्वत्थ। नवरं, उयर-भायण-कण्ण-जीहा-उट्ठा एएसिं अट्ठी न भण्णइ, चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ त्ति भण्णइ।

३०. धन्य अनगार के तप से दीप्त आभासित देह के समस्त अंगों का यह सामान्य वर्णन है। विशेष यह है कि पेट, कान, जीभ और होठ-इनमें अस्थि का वर्णन नहीं है, केवल चर्म और शिराओं से ही इनका वर्णन करना चाहिए।

30. This is the general description of various parts of the body of Dhanya *Anagar* and their ultimate condition due to hard austerities. The only difference is that there is no mention of bones in case of stomach, ears, tongue and lips. They had only skin and nerves.

धन्य अनगार की आन्तरिक-तेजस्विता

३१. धण्णे णं अणगारे णं सुक्केणं भुक्खेणं लुक्खेणं पायजंघोरुणा, विगयतडिकरालेणं कडिकडाहेणं, पिट्ठमवस्सिएणं उदरभायणेणं, जोइज्जमाणएहिं पांसुलियकडएहिं, अक्खसुत्तमाला इव गणेज्जमाणेहिं पिट्ठिकरंडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएणं उरकडगदेसभाएणं, सुक्कसप्पसमाणेहिं बाहाहिं, सिढिलकडाली विव लंबंतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइए विव वेवमाणीए सीस-घडीए, पव्वायवयणकमले

उब्भडघडमुहे उच्छुद्धणयणकोसे जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ। से जहा नामए इंगालसगडिया इ वा। जहा खंदओ तहा (जाव) हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णे तवेणं तेएणं अईव अईव तवतेयसिरीए उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

३१. इतने घोर तप के कारण, धन्य अनगार के शरीर के सभी अवयव सूखे, रूखे, माँस-शोणितरहित जैसे हो गये। भूख से रूखे व क्षीण हुए पैर–जंघा आदि अवयव अत्यन्त कृश–दुर्बल हो गये। उनका कटिभाग–कमर कढ़ाई जैसा या कछुए की पीठ जैसा विकृत–माँसहीन हो जाने के कारण हड्डियाँ ऊपर दिखाई देने लगी थीं। माँस और रक्त के अभाव में पेट पीठ से चिपक गया था। उनकी पसलियाँ साफ दिखाई देती थीं। उनकी पृष्ठकरंडक–रीढ़ की हड्डी का रक्त-माँस सूख जाने के कारण उसके गोलक–हड्डियों के जोड़ रुद्राक्ष की माला के मणकों के समान गिने जा सकते थे। उनका वक्षस्थल (फेफड़ा या छाती) गंगा की तरंगों की तरह स्पष्ट दिखाई देता था। उनकी भुजाएँ सूखे हुए सर्प की तरह माँसरहित लम्बी-लम्बी दीखती थीं। उनके आगे के हाथ लोहे के घोड़े की ढीली लगाम के समान काँपती हुई दीखती थी। उनकी गर्दन (सीसघडिका) कम्पन वातग्रस्त रोगी के समान काँपती रहती थी। उनका मुख कमल एकदम म्लान–कुम्हलाया हुआ दीखता था। दोनों होंठ सूख जाने से मुख ऐसा प्रतीत होता था जैसे टूटे मुख वाला घड़ा हो। उनके दोनों नयन कोष भीतर की तरफ धँस गये थे। इस प्रकार दीर्घ तप के कारण उनका शरीर इतना क्षीण हो गया था कि उसमें बिल्कुल बल नहीं रहा। केवल आत्म-बल से ही वह गमन करते, आत्म-बल से ही खड़े होते और बैठते थे। वे कुछ बोलते तो बोलकर थक जाते, बोलते हुए भी थकावट अनुभव करते, यहाँ तक कि 'मैं बोलूँगा' इतना विचार करने मात्र से ही थक जाते थे। जब वह चलते थे तो उनके शरीर की हड्डियाँ खन-खन ऐसी बजती थीं जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी चली जा रही हो।

जो दशा स्कन्दक अनगार की हो गई थी, वही दशा धन्य अनगार की भी हो गई थी। राख के ढेर से ढकी आग के समान वह अन्दर ही अन्दर आत्म-तेज से प्रदीप्त हो रहा था। वह धन्य अनगार तप से, तेज से और तपस्तेज की आभा से सुशोभित होकर अपनी साधना में स्थिर था, अडिग था और अडोल था। (धन्य अनगार की तपोजनित शरीर स्थिति की कल्पना चित्र में देखें।)

INNER BRIGHTNESS OF MONK DHANYA

31. Due to hard austerities, all the parts of the body of Dhanya *Anagar* had dried up and lost flesh and blood. The feet had gone feeble and dry due to starvation, the thigh, shins, etc., had gone extremely thin and weak. The waist was like a shallow vessel and wrinkled like the back of a tortoise. The bones in it were visible. The stomach had stuck to the back due to loss of flesh and blood. The ribs in it were distinctly visible. As the blood and flesh of the back-bone had dried up, its joints were looking like beads of a *rudraksh* rosary and could be easily counted. The chest was looking like waves of Ganga river. The arms were like a dried up snake-skin that has lost flesh and has elongated. His wrist was shivering like leather band of a horse. His neck was trembling like a patient suffering from Parkinson's disease. His face was lustreless. As both the lips had dried up, the face looked like a pitcher with broken mouth. His eyes had sunken. Due to hard and deep austerities his body had become so weak, that there was no strength in it. He was moving, sitting and standing only with the courage in his self. When he spoke sometimes, he soon got tired. He used to feel fatigue while speaking. He used to feel tired even at the very thought that he shall utter something. While walking, his bones rattled as if a truck was carrying charcoal.

The condition of Dhanya *Anagar* was similar to that of Skandak *Anagar*. He was shining with inner lustre of the soul like fire covered with dust. Dhanya *Anagar* was firm in his spiritual practices due to the brightness caused by austerities and the aura thereof. He could not be dwindled or shaken in his practices.

३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिए निग्गए। धम्मकहा, परिसा पडिगया।

तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

इमासिं णं भंते ! इंदभूइ पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं कयरे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव ?

एवं खलु सेणिया ! इमासिं इंदभूइपामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ इमासिं (जाव) साहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव ?

३२. उस काल और उस समय में, राजगृह नगर था। गुणशीलक चैत्य था। वहाँ श्रेणिक का राज्य था।

उस काल और उस समय में, श्रमण भगवान महावीर राजगृह में पधारे। परिषदा दर्शन करने को निकली। राजा श्रेणिक भी भगवान का दर्शन करने चला। धर्मकथा हुई। परिषदा वापस चली गई।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान महावीर के समीप में धर्मदेशना सुनकर, विचारकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके भगवान से इस प्रकार पूछने लगे–

"भंते ! आपके इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में कौन अनगार ऐसा है जो महादुष्कर (अत्यन्त उग्र घोर तप करने वाला) कारक है, महानिर्जरा करने वाला है ?"

भगवान महावीर ने कहा–"श्रेणिक ! इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य नामक अनगार महादुष्करकारक है, महानिर्जरा करने वाला है।"

श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया-"भंते ! किस कारण से आपने यह कहा कि इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही महादुष्करकारक है, महानिर्जराकारक है ?"

APPRECIATION OF DHANYA *ANAGAR* BY BHAGAVAN MAHAVIR

32. At that time during that period there was a town named *Rajagriha.* There was *Gunsheelak Chaitya.* King Shrenik was the ruler of *Rajagriha.*

Once Bhagavan Mahavir came to *Rajagriha.* People came to have his *darshan* and to listen his discourse. King Shrenik also came there. After the spiritual discourse, the congregation dispersed.

After listening to the spiritual discourse, meditating on it, king Shrenik turned to Bhagavan Mahavir and respectfully inquired—

"Bhante ! Out of your fourteen thousand monks headed by Indrabhuti, who is the one practicing most difficult austerities ? Who is the one shedding *Karmas* rapidly ?"

Bhagavan Mahavir said—"Shrenik ! Of my fourteen thousand monks—Indrabhuti and others, Dhanya *Anagar* is practicing most difficult austerities. He is shedding the *Karmas* most rapidly."

Shrenik again inquired—"Bhante ! On what basis your honour has said that out of Indrabhuti and other monks totalling fourteen thousands, Dhanya *Anagar* is practicing most difficult austerities and shedding *Karmas* at great speed ?"

३३. "एवं खलु सेणिया ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायंदी नामं नयरी होत्था (जाव) उप्पिं पासायवडिंसए विहरइ।

तए णं अहं अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्वीए चरमाणे गामाणुगामे दूइज्जमाणे जेणेव कायंदी नयरी जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागए। उवागमित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हामि। संजमेणं (जाव) विहरामि। परिसा निग्गया। तहेव (जाव) पव्वइए (जाव) बिलमिव (जाव) आहारेइ। धण्णस्स णं अणगारस्स पादाणं सरीरवण्णओ सव्वो (जाव) उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

से तेणट्ठेणं सेणिया ! एवं वुच्चइ इमासिं चउद्दसण्हं साहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए महाणिज्जरयराए चेव।''

३३. तब भगवान महावीर ने कहा-''श्रेणिक ! उस काल और उस समय में, (जिस समय का यह वर्णन है) काकन्दी नाम की एक नगरी थी। वह ऋद्ध थी, स्तिमित (स्थिर) थी और समृद्ध थी। वहाँ ऊँचे महलों में धन्यकुमार भोगों में लीन रहता था।

अनन्तर मैं एक बार अनुक्रम से धर्म यात्रा करता हुआ एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करता हुआ जहाँ पर काकन्दी नगरी थी और जहाँ पर सहस्राम्रवन उद्यान था, वहाँ पर आया। आकर यथाप्रतिरूप (साधुजनोचित) स्थान की याचना की। संयम तप में स्थिर होकर विचर रहा था। मेरा आगमन सुनकर धर्म श्रवण के लिए परिषदा आई, यावत् धन्यकुमार भी आया। धर्म सुना, उसके बाद प्रव्रज्या ग्रहण की। उसके पश्चात् क्रमशः अनासक्ति से आहार करता था। घोर तप करने लगा। यहाँ धन्य अनगार के पैर से लेकर मस्तक तक सारे शरीर का पूर्ववत् वर्णन भगवान ने श्रेणिक राजा के सम्मुख किया और कहा-वह तप से सुशोभित होकर रहता है।

श्रेणिक ! इस कारण से मैं यह कहता हूँ कि इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार महादुष्करकारक है, महानिर्जराकारक है।''

33. Then Bhagavan Mahavir said—"Shrenik ! At that time during that period, there was a town named Kakandi. It was prosperous in trade and business, inhabited by well-to-do people. Dhanya Kumar was enjoying worldly pleasures in grand palaces.

Once during my wanderings from one village to the other delivering discourse for spiritual uplift, I came to Kakandi and requested for *Sahasra-Amra-Van* garden for the stay.

I was staying there firm in restraint and austerity. After hearing about my arrival, people came to listen to the spiritual discourse. Dhanya Kumar also came there. He listened to the spiritual discourse and then got initiated in ascetism. Thereafter, he was taking food in a state of complete detachment. He started difficult and austere spiritual restraints and practices." Bhagavan Mahavir then mentioned the state of each part of his body—from foot to head due to austerities (as narrated earlier). Mahavir further said—He is shining with an aura as a result of his hard austerities.

Therefore, I say, that out of all the fourteen thousand monks including Indrabhuti he is practicing the most difficult austerities and shedding *Karmas* at great speed."

३४. तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ (जाव) समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव धण्णे अणगारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धण्णं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुपुण्णे सुकयत्थे कयलक्खणे सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले"—त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

३४. उसके पश्चात् श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान महावीर के श्रीमुख से इस अर्थ को सुना तो विचार कर एवं प्रसन्न होकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना करके, नमस्कार करके जहाँ पर धन्य अनगार था, वहाँ आया। आकर, धन्य अनगार की प्रदक्षिणा की, वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना करके, नमस्कार करके वह इस प्रकार कहने लगा—

"हे देवानुप्रिय ! आप धन्य हो। आप पुण्यशाली हो। आप कृतार्थ हो। आप सुकृतलक्षण हो। हे देवानुप्रिय ! आपने मनुष्य-जन्म और इस जीवन को सफल किया है।"-यह कहकर उसने धन्य अनगार को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके, जहाँ पर श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

[जिस प्रकार स्कन्दक के अधिकार में कहा है वैसा ही यहाँ जानना चाहिए। भगवान महावीर ने उसका उत्तर दिया-"धन्य अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।"]

34. After hearing this detailed account from Bhagavan Mahavir, king Shrenik, thought over it, bowed to the Lord three times in the prescribed manner. Thereafter, he came to Dhanya *Anagar.* He bowed to him in respect and went round him. He then said—

"O blessed of gods ! You deserve appreciation. You are lucky. You are praise-worthy. You have successfully passed this life—the human state." Thereafter, he again bowed to Dhanya *Anagar* and then came to Bhagavan Mahavir. He bowed to Bhagavan Mahavir and went back to the place from where he had come.

[As in the description of Skandak, almost same should be understood here. Bhagavan Mahavir replied that Dhanya *Anagar* shall take re-birth in *Sarvarth Siddh Viman* after completing the present life-span.]

३५. तए णं तस्स धण्णस्स अणगारस्स। अण्णया कयाइ पुव्वरत्ताऽवरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं. इमेयारूवे अब्भत्थिए-

"एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं (जाव)" जहा खंदओ तहेव चिन्ता। आपुच्छणं। थेरेहिं सद्धिं विउलं दुरूहइ। मासिया संलेहणा। नव मासा परियाओ। (जाव) कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम (जाव) नवयगेवेज्जे विमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे।

चित्र परिचय १८

Illustration No. 18
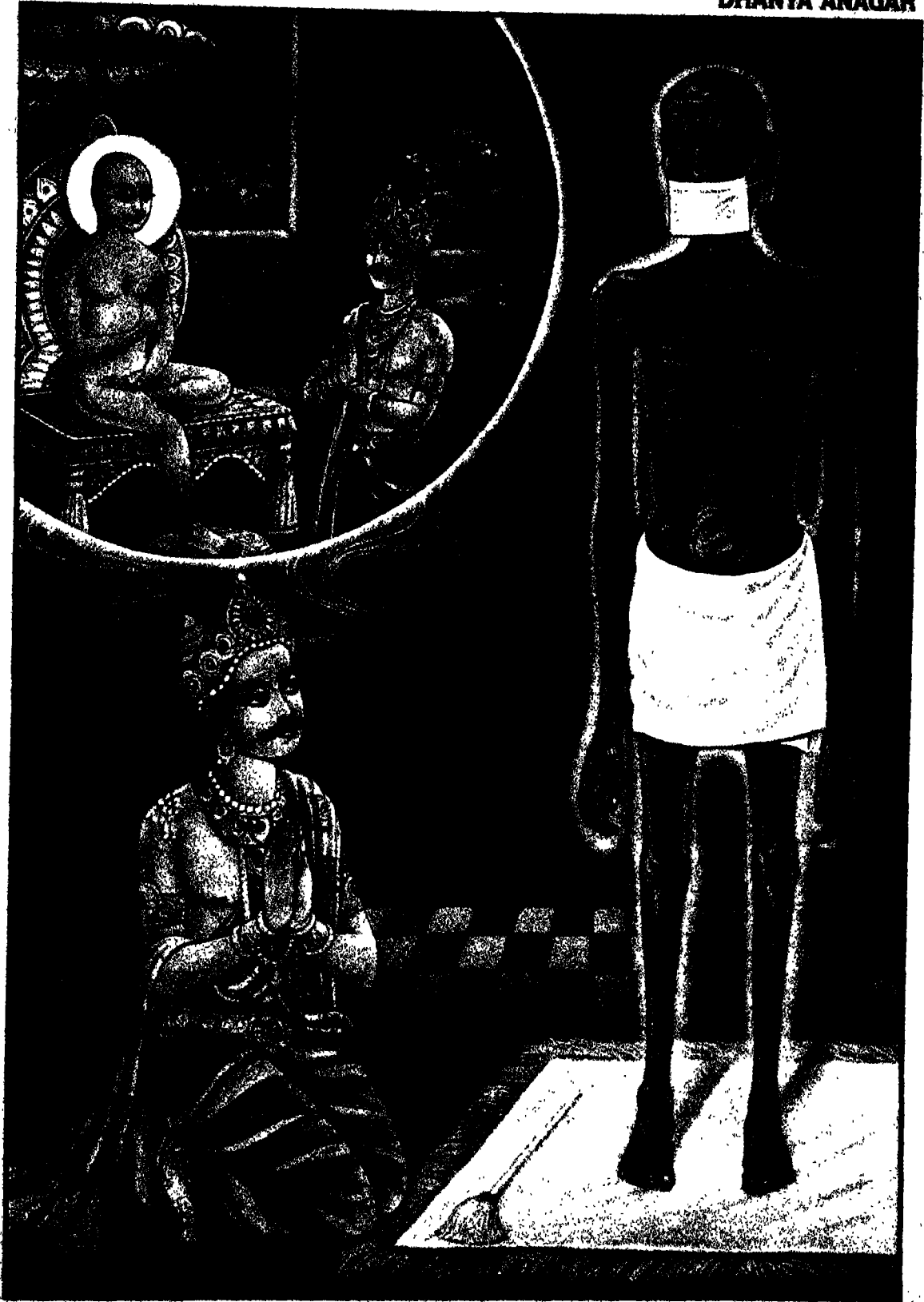
राजा श्रेणिक द्वारा धन्य अनगार को वन्दना

एक बार मगधपति श्रेणिक ने भगवान महावीर से पूछा-"भंते ! आपके चौदह हजार श्रमण शिष्यों में सर्वोत्कृष्ट तप करने वाला श्रमण कौन है ?"

भगवान ने कहा-"राजन् ! धन्य अनगार सबसे उग्र, कठोर और घोर तप करने वाला है। तप द्वारा उसका शरीर अत्यन्त कृश होकर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया है।" उत्सुकतावश राजा श्रेणिक धन्य अनगार के पास आया। तपस्वी ध्यान-मुद्रा में खड़े हैं, उनके अत्यन्त कृश, जर्जर, रक्त-माँस सूखे क्षीण देह पर तप की अद्‌भुत आभा, लावण्य और तेज दमक रहा है। मुख-मुद्रा पर सौम्यता और योगों में अत्यन्त स्थिरता है। ऐसे उपशांत कषायी, घोर तपस्वी को भावपूर्वक वन्दना करते राजा स्वयं को धन्य अनुभव करने लगता है।

-अनुत्तरौपपातिकदशा, वर्ग ३, अ. १

KING SHRENIK SALUTING DHANYA ANAGAR

Once, king Shrenik inquired of Bhagavan Mahavir—"Reverend Sir ! Out of your fourteen thousand ascetic disciples, who is the one observing austerities of the highest order ?"

Bhagavan Mahavir replied—"O king ! Dhanya *Anagar* is observing the most difficult and hard spiritual practices. Due to ascetic practices, his body has become extremely weak. It has reduced to mere skeleton containing bones. Out of curiosity king Shrenik came to Dhanya *Anagar*. He was standing in deep meditation. There was unique aura, beauty and grandeur of austere practices around his extremely weak and feeble body. The flesh and blood had almost dried up. There was a unique serenity on his face and firmness in posture. With deep adoration, bowing to such a monk who had subdued his passions and was observing extreme austerities, king Shrenik was feeling highly blessed.

—Anuttaraupapatik-dasha, Varg 3, Ch. 1

थेरा तहेव ओयरंति (जाव) इमे से आयारभंडए। भंते त्ति भगवं गोयमे तहेव आपुच्छति, जहा खंदयस्स भगवं वागरेइ, (जाव) सव्वट्ठसिद्धे विमाणे उववण्णे।

३५. तत्पश्चात् अन्य किसी दिन मध्य रात्रि के समय में धन्य अनगार के मन में इस प्रकार की धर्म जागरिका (अध्यात्म सम्बन्धी अन्तर विचारणा) उत्पन्न हुई–

'इस प्रकार के उदार तपश्चरण से मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है।' जैसे स्कन्दक अनगार ने चिन्तन किया था, वैसे ही धन्य अनगार ने चिन्तना की, भगवान से आज्ञा ली, आपृच्छना की। फिर स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर आरोहण किया। आरोहण कर स्थान आदि की प्रतिलेखना करके एक मास की संलेखना की। नौ मास की दीक्षा-पर्याय का पालन/आराधन करके यावत् आयुष्य पूर्ण करके चन्द्रमा, सूर्य आदि से ऊपर यावत् नवग्रैवेयक विमान–प्रस्तर को पार कर सबसे ऊँचे सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

धन्य मुनि का स्वर्ग-गमन होने के पश्चात् परिचर्या करने वाले स्थविर मुनि विपुलगिरि पर्वत से नीचे उतरे। जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये तथा निवेदन किया–"भंते ! आपके अन्तेवासी धन्य मुनि के ये धर्मोपकरण हैं।" फिर भगवान गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया–"भंते ! आपका अन्तेवासी धन्य अनगार कहाँ उत्पन्न हुआ है ?"

35. Later, one day at mid-night Dhanya *Anagar* thought during spiritual awakening—

'My physical body has become extremely weak due to long and serious austerites.' Dhanya *Anagar* thought the same as Skandak had done. He then took the permission of Bhagavan Mahavir and climbed *Vipulgiri* hill with other monks. He then carefully selected a suitable place, observed it with great discrimination and remained in *Samlekhana* for one month. After remaining in initiated state for just nine months, he completed his life-span and crossing over the moon, the sun, and nine *Graveyaks,* was re-born in *Sarvarth Siddh Viman* as an angel.

After the death of Dhanya *Muni,* the monks accompanying him climbed down *Vipulgiri* hill. They came to Bhagavan Mahavir and said—"Bhante ! Here are the spiritual belongings of Dhanya *Anagar.*" Then Gautam Swami inquired of Bhagavan Mahavir—"Bhante ! Where has your disciple Dhanya *Anagar's* soul been re-born ?" Mahavir replied—"He has taken re-birth in *Sarvarth Siddh Viman.*"

३६. (क) "धण्णस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?"

"गोयमा ! तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

३६. (क) गौतम ने प्रश्न किया-"भंते ! वहाँ धन्य देव की स्थिति कितने काल तक की कही है ?"

भगवान ने उत्तर दिया-"हे गौतम ! तैंतीस सागरोपम की स्थिति कही है।"

36. (a) Gautam said—"Bhante ! What is the life-span of angel Dhanya there ?"

Mahavir replied—"Gautam ! His life-span is thirty three *Sagaropam.*"

(ख) "से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।"

"तं एवं खलु जंबू ! समणेणं (जाव) संपत्तेणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।"

(ख) "भन्ते ! उस देवलोक से च्यवकर (आयुष्य पूर्ण करके) वह धन्यदेव कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?"

"हे गौतम ! महाविदेह वास में मनुष्य बनकर दीक्षा लेकर यावत् सिद्ध होगा।"

सुधर्मा स्वामी ने कहा-"जम्बू ! इस प्रकार निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है, जो मैंने तुमसे कह दिया।"

(b) Gautam inquired—"Bhante ! After completing his angelic life-span, where shall he be re-born ?"

Mahavir replied—"O Gautam ! He shall take human birth in *Mahavideh* and attain liberation from there."

Sudharma Swami said—"Jambu ! This is the meaning of the first chapter of the third *Varg* as narrated by Bhagavan Mahavir."

विवेचन—धन्य अनगार की अन्तिम धर्म जागरणा तथा संलेखना संथारा सम्बन्धी वर्णन के लिए यहाँ स्कन्दक अनगार के समान वर्णन की सूचना दी गई है।

यह वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है-रात्रि के अन्तिम प्रहर में धन्य अनगार चिन्तन करते हैं-'अभी शासनपति मेरे धर्माचार्य भगवान महावीर विद्यमान हैं, अतः यह सब अनुकूल सुविधाएँ रहते ही मैं इस जीवन की चरम साधना क्यों न कर लूँ।' ऐसा विचारकर उन्होंने प्रातःकाल श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त की और आत्म-विशुद्धि के लिए पंच महाव्रतों का पुनः पाठ पढ़ा तथा उपस्थित श्रमणों और श्रमणियों से क्षमा याचना की। तथारूप स्थविरों के साथ शनैः-शनैः विपुलगिरि पर आरूढ़ हुए। ध्यान देने की बात है कि संलेखना के लिए जाते समय साधक के साथ स्थविर जाते हैं, वे उसकी परिचर्या का ध्यान रखते हैं तथा आने वाले विघ्न, बाधाओं से बचाकर उसे पूर्ण समाधिस्थ रखने का प्रयास करते हैं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कृष्णवर्णी पृथिवी-शिलापट्ट पर प्रतिलेखना कर दर्भ का संस्तारक बिछाया और पद्मासन लगाकर बैठ गये। फिर दोनों हाथ जोड़े और उनसे सिर पर आवर्तन किया। इस प्रकार पूर्व दिशा की ओर मुख कर 'नमोत्थुणं' के पाठ द्वारा पहले सब सिद्धों को नमस्कार किया, फिर अपने धर्माचार्य श्री श्रमण भगवान महावीर को भी नमस्कार किया और कहा-"भगवन् ! वहाँ विराजमान आप सब कुछ देख रहे हैं, अतः मेरी वन्दना स्वीकार करें। मैंने पहले आपके समक्ष अष्टादश पापों का त्याग किया था। अब मैं आपकी ही साक्षी से उनका फिर से जीवनभर के लिए परित्याग करता हूँ। साथ ही साथ अब अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का भी आजीवन परित्याग करता हूँ। अपने संयम सहायक शरीर का भी अन्तिम रूप से व्युत्सर्ग करता हूँ। अब पादपोपगमन नामक अनशन धारण करता हूँ।" इस प्रकार श्री श्रमण भगवान महावीर को साक्षी बनाकर संथारा ग्रहण किया, नव मास पर्यन्त दीक्षा-पर्याय में रहे और एक मास तक अनशन व्रत में व्यतीत किया। साठ भक्त अशन-छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमणपूर्वक उत्तम समाधिमरण प्राप्त किया।

धन्य मुनि ने साठ भक्तों का परित्याग किया। यहाँ जिज्ञासा हो सकती है कि भक्त किसे कहते हैं? समाधान यह है कि प्रत्येक दिन के दो भक्त अर्थात् आहार या भोजन काल होते हैं। इस प्रकार एक मास के साठ भक्त हो जाते हैं।

जब उनके साथ गए स्थविरों ने देखा कि धन्य अनगार अपना देह त्यागकर स्वर्ग को प्राप्त हो गये हैं तो उन्होंने परिनिर्वाण-सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अर्थात् मृत्यु के अनन्तर जो ध्यान किया जाता है उसको परिनिर्वाण-प्रत्ययिक कायोत्सर्ग कहते हैं। साधु के मृत शरीर का परिष्ठापन करना-बोसराना भी परिनिर्वाण कहा जाता है। फिर उनके वस्त्र, पात्र आदि उपकरण उठाकर लाये और श्रमण भगवान महावीर के पास आकर और उनको धन्य अनगार के समाधिमरण का समस्त वृत्तान्त सुना दिया। उनके गुणों का वर्णन किया।

इस सूत्र में बताया है-धन्य अनगार का जीव देवलोक में उत्पन्न होने पर 'धन्य देव' नाम से जाना गया है। कहा गया है कि मनुष्य या तिर्यंचगति से जो प्राणी देवगति में उत्पन्न होता है तो वहाँ उसका कोई नया नाम नहीं होता। अपितु वह पूर्वभव के नाम से ही पहचाना जाता है। देवगति में नामकरण संस्कार की कोई प्रथा नहीं है। जैसे ज्ञातासूत्र में दर्दुर मरकर देव हुआ तो उसे 'दर्दुरदेव' कहा गया। इसी प्रकार धन्य मुनि के जीव का वहाँ 'धन्यदेव' नाम ही प्रसिद्ध हुआ।

अनुत्तर विमानवासी देवों की आयुस्थिति के विषय में अनुयोगद्वार, सूत्र ३९१ (९) में चर्चा की है। वहाँ बताया है-विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-इन चार विमानों में देवों की कालस्थिति जघन्य इकतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम की है। किन्तु सर्वार्थसिद्ध विमान में एक समान-अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की है।

आगम में प्रयुक्त 'पल्योपम' तथा 'सागरोपम' शब्द एक विशेष, अति दीर्घकाल का द्योतक है। जैन वाङ्मय में पल्योपम और सागरोपम शब्द का बहुलता से प्रयोग हुआ है।

नरक तथा देव भवों की स्थिति बताने के लिए पल्योपम तथा सागरोपम शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत में तैंतीस सागरोपम की स्थिति के विषय में जानने के लिए पल्योपम का अर्थ जानना आवश्यक है। जो संक्षेप में इस प्रकार है-

पल्य या पल्ल का अर्थ कुआँ या अनाज का बहुत बड़ा कोठा है। उसके आधार पर या उसकी उपमा से काल-गणना की जाने के कारण यह कालावधि 'पल्योपम' कही जाती है।

पल्योपम के तीन भेद हैं-(१) उद्धार-पल्योपम, (२) अद्धा-पल्योपम, (३) क्षेत्र-पल्योपम।

(१) **उद्धार-पल्योपम**—कल्पना करें, एक ऐसा अनाज का बड़ा कोठा या कुआँ हो, जो एक योजन (चार कोस) लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा हो। एक दिन से सात दिन की आयु वाले नवजात यौगलिक शिशु के बालों के अत्यन्त छोटे टुकड़े किये जायें, उनसे ठूँस-ठूँसकर उस कोठे या कुएँ को अच्छी तरह दबा-दबाकर भरा जाय। भराव इतना सघन हो कि अग्नि उन्हें जला न सके। चक्रवर्ती की सेना उन पर से निकल जाय तो एक भी कण इधर से उधर न हो सके। गंगा का प्रवाह बह जाये तो उन पर कुछ असर न हो सके। यों भरे हुए कुएँ में से एक-एक समय में एक-एक बाल-खण्ड निकाला जाये। यों निकालते-निकालते जितने काल में वह कुआँ खाली हो, उस काल-परिमाण को उद्धार-पल्योपम कहा जाता है। उद्धार का अर्थ निकालना है। बालों के उद्धार या निकाले जाने के आधार पर इसकी संज्ञा उद्धार-पल्योपम है। यह संख्यात समय-प्रमाण माना जाता है।

उद्धार-पल्योपम के दो भेद हैं—सूक्ष्म एवं व्यावहारिक। उपर्युक्त वर्णन व्यावहारिक उद्धार-पल्योपम का है। सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम इस प्रकार है—व्यावहारिक उद्धार-पल्योपम में कुएँ को भरने में यौगलिक शिशु के बालों के टुकड़ों की जो चर्चा आई है, उनमें से प्रत्येक टुकड़े के असंख्यात अदृश्य खण्ड किये जायें। उन सूक्ष्म खण्डों से पूर्व वर्णित कुआँ ठूँस-ठूँसकर भरा जाय। वैसा कर लिए जाने पर प्रतिसमय एक-एक खण्ड कुएँ में से निकाला जाय यों करते-करते जितने काल में वह कुआँ बिल्कुल खाली हो जाये, उस काल-अवधि को सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम कहा जाता है। इसमें संख्यात-वर्ष-कोटि परिमाण-काल माना जाता है।

(२) **अद्धा-पल्योपम**—अद्धा देशी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ काल या समय है। आगम के प्रस्तुत प्रसंग में जो पल्योपम का जिक्र आया है उसका आशय इसी पल्योपम से है। इसकी गणना का क्रम इस प्रकार है—यौगलिक के बालों के टुकड़ों से भरे हुए कुएँ में से सौ-सौ वर्ष में एक-एक टुकड़ा निकाला जाये। इस प्रकार निकालते-निकालते जितने काल में वह कुआँ बिल्कुल खाली हो जाये, उस कालावधि को अद्धा-पल्योपम कहा जाता है। इसका परिमाण संख्यात वर्ष कोटि है।

अद्धा-पल्योपम भी दो प्रकार का होता है—सूक्ष्म और व्यावहारिक। यहाँ जो वर्णन किया गया है, वह व्यावहारिक अद्धा-पल्योपम का है। जिस प्रकार सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम में यौगलिक शिशु के बालों के टुकड़ों के असंख्यात अदृश्य खण्ड किये जाने की बात है, उसके समान यहाँ भी वैसे ही असंख्यात अदृश्य केश-खण्डों से वह कुआँ भरा जाय। प्रति सौ वर्ष में एक खण्ड निकाला जाये। यों निकालते-निकालते जब कुआँ बिल्कुल खाली हो जाय, वैसा होने में जितना काल लगे, वह सूक्ष्म अद्धा-पल्योपम कोटि में आता है। इसका काल-परिमाण असंख्यात वर्ष कोटि माना गया है।

(३) **क्षेत्र-पल्योपम**—ऊपर जिस कुएँ या धान के विशाल कोठे की चर्चा है, यौगलिक के बाल-खण्डों से उपर्युक्त रूप में दबा-दबाकर भर दिये जाने पर भी उन खण्डों के बीच में आकाश-प्रदेश—रिक्त स्थान रह जाते हैं। वे खण्ड चाहे कितने ही छोटे हों, आखिर वे रूपी या मूर्त्त हैं, आकाश अरूपी या अमूर्त्त है। स्थूल रूप में उन खण्डों के बीच रहे आकाश-प्रदेशों की कल्पना नहीं की जा सकती, पर सूक्ष्मता से सोचने पर वैसा नहीं है। इसे एक स्थूल उदाहरण से समझा जा सकता है—कल्पना करें, अनाज के एक बहुत बड़े कोठे को कूष्मांडों—कुम्हड़ों से भर दिया गया। सामान्यतः देखने में लगता है, वह कोठा भरा हुआ है, उसमें कोई स्थान खाली नहीं है, पर यदि उसमें नीबू और भरे जायें तो वे अच्छी तरह समा सकते हैं, क्योंकि सटे हुए कुम्हड़ों के बीच में स्थान खाली जो है। यों नीबुओं से भरे जाने पर भी सूक्ष्म रूप में और खाली स्थान रह जाता है, बाहर से वैसा लगता नहीं। यदि उस कोठे में सरसों भरना चाहें तो वे भी समा जायेंगे। सरसों भरने पर भी सूक्ष्म रूप में और स्थान खाली रहता है। यदि नदी के रजःकण उसमें भरे जायें, तो वे भी समा सकते हैं।

दूसरा उदाहरण दीवाल का है। चुनी हुई दीवाल में हमें कोई खाली स्थान प्रतीत नहीं होता पर, उसमें हम अनेक खूँटियाँ, कीलें गाड़ सकते हैं। यदि वास्तव में दीवाल में स्थान खाली नहीं होता तो यह कभी सम्भव नहीं था। दीवाल में स्थान खाली है, मोटे रूप में हमें मालूम नहीं पड़ता। अस्तु।

क्षेत्र-पल्योपम की चर्चा के अन्तर्गत यौगलिक के बालों के खण्डों के बीच-बीच में जो आकाश-प्रदेश होने की बात है, उसे भी इसी दृष्टि से समझा जा सकता है। यौगलिक के बालों के खण्डों को संस्पृष्ट करने वाले आकाश-प्रदेशों में से प्रत्येक को प्रतिसमय निकालने की कल्पना की जाये। यों निकालते-निकालते जब सभी आकाश-प्रदेश निकाल लिए जायें, कुआँ बिल्कुल खाली हो जाय, वैसा होने में जितना काल लगे, उसे क्षेत्र-पल्योपम कहा जाता है। इसका काल-परिमाण असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है।

क्षेत्र-पल्योपम दो प्रकार का है—व्यावहारिक एवं सूक्ष्म। उपर्युक्त विवेचन व्यावहारिक क्षेत्र-पल्योपम का है। सूक्ष्म क्षेत्र-पल्योपम इस प्रकार है—कुएँ में भरे यौगलिक के केश-खण्डों से स्पृष्ट तथा अस्पृष्ट सभी आकाश-प्रदेशों में से एक-एक समय में एक-एक प्रदेश निकालने की यदि कल्पना की जाय तथा यों निकालते-निकालते जितने काल में वह कुआँ समग्र आकाश-प्रदेशों से रिक्त हो जाय, वह काल-परिमाण सूक्ष्म क्षेत्र-पल्योपम है। इसका भी काल-परिमाण असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है। व्यावहारिक क्षेत्र-पल्योपम से इसका काल असंख्यात गुना अधिक होता है।

अनुयोगद्वार, सूत्र ३८०-३९० तथा प्रवचन-सारोद्धार, द्वार १५८ में पल्योपम का विस्तार से विवेचन है।

Explanation—Here the final spiritual practice—The spiritual awakening and *Samlekhana Santhara* has been stated to be similar to that observed by Skandak.

This description in brief is as under—In the last quarter (*Prahar*) of the night, Dhanya *Anagar* thought that 'my preceptor, my spiritual master is present. So while all the conditions are favourable, why should I not perform the last spiritual practice of my life.' He then in the very next morning secured permission of Bhagvan Mahavir. He repeated the version pertaining to the five great vows for self-purification. He begged pardon of fellow ascetics who were present. He then slowly climbed up *Vipulgiri* hill with other ascetics. It is worth notice that when an ascetic goes for *Samlekhana* (the last spiritual practice of the life), some monks accompany him. They look after his necessities. They help him to remain in state of equanimity at the time of difficulties, obstacles or troubles if any. After reaching the top of the hill, Dhanya *Anagar* carefully examined a black rock, cleaned it with the holy broom and spread a straw bedding. He sat in *padmasan.* He joined his palms touched his head, looking towards the east he bowed to Siddhas (liberated souls) with *Namotthunam*—a hymn in praise. He then bowed to his spiritual master Bhagavan Mahavir and said—"O lord ! Wherever you are. You are seeing all whatever is happening. You, please accept my obeisance. I had discarded eighteen sinful activities near you. Now I again, keeping your presence in my mind, discard them till my last breath. I also discard food, water and all eatables for my entire remaining life-span. I also discard my attachment to my body that had so far co-operated with me in my spiritual restraints and practices. I now practice *padapopgaman* fast (to lie motionless like a separated branch of tree)." Then he accepted *Santhara,* keeping the presence of Bhagavan Mahavir in his mind, he remained in initiated state (monkhood) for nine months. He remained in a state of complete fast for one month. After leaving continuously sixty meals he did penance for past deeds, did *pratikraman* (repented about past undesirable activities if any) and died in equanimity.

Dhanya *Anagar* discarded food for sixty *Bhaktas*. Here the question arises as to what is *Bhakt*. In a day there are two times when meals are taken. These are called *Bhakt*. Thus in a month there are sixty *Bhaktas*.

When the accompanying monks noticed that Dhanya *Anagar* has breathed his last, they did meditation in the context of his death, the silent meditation done at the time of the death of a person is called *Parinirvana—pratyayik kayotsarg*. To leave attachment or care for the corpse of a monk is also called *parinirvana*. They then picked up his pots and clothes, broom etc. They came straight to Bhagavan Mahavir and narrated the entire event up to his death in a state of equanimity. They narrated his good qualities.

In this aphorism, it is mentioned that after re-birth in heaven, the soul of Dhanya is named as Dhanya Dev. It is said that no new name is given to the souls that after life-span in human state or animal state are re-born in heaven. They are known by their very name in the preceding life. There is no practice of christening in heaven. In *Jnata Sutra,* a frog (*Dardur*) after completing life-span was re-born in heaven. He was known as *Dardur* Dev. So Dhanya in heaven is known as Dhanya Dev (god).

The life-span of angels living in *Anuttar Viman* is discussed in *Anuyoga-dvar Sutra*. It is mentioned that the minimum life-span of angels in four *Anuttar Vimans—Vijay, Vijayant, Jayant* and *Aparajit,* is thirty one *Sagaropam* and the maximum is thirty three *Sagaropam*. In *Sarvarth Siddh Viman* it is thirty three *Sagaropam*—neither more nor less.

The words *Palyopam* and *Sagaropam* denote periods of innumerable years. In Jain scriptures these words have been used quite often.

To explain the life-span in hellish existence and angelic existence the words *Palyopam* and *Sagaropam* have been used. In order to understand the life-span of thirty three *Sagaropam* in the present case, it is pertinent to know *Palyopam*. It is explained in brief as under—

Palya or *palla* is a well, or a big silo to store food-grains. Counting of time by using *palya* as a unit is called *palyopam.*

Palyopam is of three types—(1) *Uddhar Palyopam,* (2) *Addha Palyopam,* and (3) *Kshetra Palyopam.*

(1) *Uddhar Palyopam*—The first is defined as—consider a *palya* (well) which is one *yojan* (4 *kos* or eight miles) long, one *yojan* wide and one *yojan* deep. It should be filled with the extremely small pieces of hair of a newborn *Yaugalik* baby (child of the era of twins) of not more than seven days. The filling should be so packed that the fire or water are unable to damage it and even a few pieces do not go astray even if the large army of a *chakravarti* passes over it. If a piece of hair is taken out every *samay* (a very subtle unit of time that cannot be divided further), the period taken to make the well empty is known as *Uddhar palyopam* (*uddhar* means to take out).

Uddhar Palyopam is of two types—Subtle *Uddhar Palyopam* and Practical (*Vyavaharik*) *Uddhar Palyopam.* The above description is of Practical *Uddhar Palyopam.* Subtle *Uddhar Palyopam* is explained as under—The pieces of hair that were done in case of Practical *Uddhar Palyopam* be further divided into innumerable pieces that are almost invisible. The well should be filled with these subtle pieces as before and well packed as mentioned earlier. Thereafter after each *samay,* one piece be taken out. The total time taken to make it empty is known as Subtle *Uddhar Palyopam.*

(2) *Addha Palyopam*—*Addha* is a native word meaning time. The *Palyopam* mentioned in scriptures in the present case relates to this *Palyopam.* To understand the period, take out one piece after every hundred years. The total time taken to make the well empty is *Addha Palyopam.* It is numerable million years.

Addha Palyopam is also of two types—*Vyavaharik* (Practical) and *Sukshma* (subtle). Practical has already been described. The Subtle one is like that in case of *Uddhar Palyopam.* The hair are split into innumerable pieces and taken one each hundred years.

(3) ***Kshetra Palyopam***—When the well or the warehouse for storage of paddy is filled with pieces of hair of the children of *Yaugalik* as mentioned earlier, some space-points (*Akash Pradesh*) remain in-between the pieces of hair although they have been fully packed. The space-points in-between may be very small but they are visible (*roopee*) in shape. Space is not *roopee*. A gross look may not indicate space-points in-between. But when we think in a subtle and deep manner, we understand that the absence of space-points in-between is not true. It can be easily understood by an example—Imagine that a large warehouse has been filled with *Kushmaands* (grains). Outwardly it appears full and there is no vacant space. But if lemons are stocked, they can also be filled in that warehouse already full of grains. After adding lemon-stock, if it is filled with *Sarson* seeds, we find that sufficient quantity of *Sarson* seeds can also be stocked in the already full warehouse containing *Kushmaand* and lemon. If it is now filled with fine sand at the bed of the stream, we find this can also be added. This indicates presence of space-points in-between.

Second example relates to the wall. Outwardly wall has no vacant space. But pegs, nails can be fixed in it. In case there had been no vacant space-points, it would not have been possible to fix such things. There are vacant space-points in the wall but they are not grossly visible.

In the discussion relating to *Kshetra Palyopam,* the space-points in-between the pieces of hair of Yaugalik babies can be imagined in the light of the above examples—In case the space-points touching the hair pieces are taken out one every moment (*samay*), the period taken to take out all vacant space-point is called *Kshetra Palyopam*. This period is, in fact, equal to innumerable *Utsarpini-Avasarpini* period.

Kshetra Palyopam is of two types—Practical (***Vyavharik***) and Subtle *(Sukshma) Kshetra Palyopam*. Subtle *Kshetra Palyopam* can be understood as under—If all the space-points touching and not touching the hair-pieces are taken out one each at every moment (*samay*), the total time taken to vacate the well is Subtle *Kshetra Palyopam*. Its time period is also equal to

innumerable *Utsarpini-Avasarpini* time period. Its time period is innumerable time more than Practical *Kshetra Palyopam.*

(For detailed study, see *Anuyogadvar Sutra,* p. 380-390 and *Pravachan Saroddhar,* p. 158)

■ *विशेष वर्णन : स्कन्दक अनगार की धर्म-चिन्तवना*

उदार तपश्चरण से अत्यन्त कृश–क्षीण हो जाने पर रात्रि के अन्तिम प्रहर में धर्म-जागरण करते हुए धन्य अनगार ने जो चिन्तना विचरणा की उसके लिए। स्कन्दक अनगार की तरह कहकर वर्णन को संक्षिप्त किया गया है। स्कन्दक अनगार की यह चिन्तना अत्यन्त प्रेरक और उद्‍बोधक होने से संक्षेप में यहाँ दी जाती है–

उस काल और उस समय में राजगृह नगर में यावत् समवसरण हुआ यावत् पर्षदा लौटी।

तत्पश्चात् किसी एक दिन उस स्कन्दक अनगार को मध्य रात्रि के समय धर्म-जागरणा में जागते-जागते इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ–

'मैं यह और इस प्रकार के उदार तप के कारण यावत् दुबला हो गया हूँ। मेरी सभी नसें बाहर दिखने लगी हैं। आत्म-शक्ति के सहारे चलता हूँ यावत् इसी प्रकार मैं भी आवाज करता हुआ चलता हूँ और आवाज करता हुआ बैठता हूँ।

''इस स्थिति में भी मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम है, तो जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम है यावत् मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक और शुभार्थी श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हैं, तब तक मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात वाली रात्रि होने पर, कोमल कमलों के विकसित होने पर, निर्मल प्रभात होने के अनन्तर, लाल अशोक वृक्ष जैसे प्रकाश वाले पलाश पुष्प, तोते की चोंच और गुंजा (चनोटी) के आधे भाग जैसे लाल कमल के समूह वाले वन खण्ड को विकसित करने वाले, सहस्र किरणों वाले तथा तेज से जाज्वल्यमान दिनकर–सूर्य का उदय होने पर श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके, नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा करते हुए, सामने विनयपूर्वक अंजलिपूर्वक पर्युपासना कर और श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा लेकर स्वयं ही पंच महाव्रतों का आरोपण कर, श्रमण एवं श्रमणियों को खमाकर, तथारूप योग्य स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर शनैः-शनैः आरोहण कर, मेघ पटल के जैसे श्याम वर्ण के और देवों के वास स्थान रूप पृथ्वी शिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, दर्भ का संथारा बिछाकर और दर्भ संस्तारक पर बैठकर संलेखना द्वारा आत्म-रमण करते हुए, भक्तपान का त्याग करके, पादपोपगमन से स्थित होकर काल (मरण) की आकांक्षा न करते हुए विचरण करूँ–ऐसा

विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर यावत् सहस्र रश्मि तेज से जाज्वल्यमान दिनकर सूर्य के उदित होने पर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए सामने विनयपूर्वक नतमस्तक आसन से बैठकर पर्युपासना करता है।'

"हे स्कन्दक !" यह कहकर श्रमण भगवान महावीर ने स्कन्दक अनगार को इस प्रकार कहा–"हे स्कन्दक ! मध्य रात्रि के समय धर्म-जागरणा में जागरण करते हुए तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय–संकल्प यावत् उत्पन्न हुआ कि मैं पूर्वोक्त प्रकार के उदार, विपुल तप द्वारा यावत् काल की आकांक्षा न करते हुए विचरण करूँ–इस प्रकार का विचार किया और विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर यावत् सहस्र किरण वाले तेज से जाज्वल्यमान दिनकर–सूर्य का उदय होने पर जहाँ मैं हूँ, शीघ्र ही मेरी ओर आये।"

"तो हे स्कन्दक ! यह बात सत्य है ?"

स्कन्दक ने उत्तर दिया–"हाँ भंते ! यह बात सत्य है।"

"हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, विलम्ब मत करो।" भगवान ने कहा।

■ **SPECIAL DESCRIPTION**

Dhanya *Anagar* had gone very weak due to long and hard austerities. One night during the last quarter while practicing spiritual awakening he thought something. In this context it is mentioned that for details see the description relating to Skandak *Anagar*. The meditation of Skandak *Anagar* is very much thought-provoking and worthy of a deep study. It is therefore mentioned below in brief—

At that time during that period a congregation was held in *Rajagriha* and after spiritual discourse, it dispersed.

Thereafter, one day Skandak *Anagar* while in process of spiritual awakening thought at mid-night as under—

'I have grown weak due to long austerities. My nerves have become visible and protruding. I move only due to inner courage of the self. My bones make sound when I sit or when I walk.

Even in this condition, I have *utthan* (courage), *karm* (will), *bal* (strength), *veerya* (inner strength) and *purushakar parakram*

(manliness). Till I have such inner strength etc. and while my spiritual master, my teacher, my well-wisher Bhagavan Mahavir is moving about, it is proper for me that at the very next morning when the lotus brightens, when the day dawns, when the sun rises with shining redness of flowers of Ashok tree, of parrot's beak, of pond full of red lotus flowers, when thousands of rays of the sun bring light and heat indicating that it is the time of sun-rise, I shall bow to Bhagavan Mahavir, greet him from respectable place neither very close nor very far and honour him with joined palms. I shall further, after seeking his permission, repeat my five great vows, bow to fellow ascetics seeking their pardon for any undesirable act. I shall also forgive every one from the core of my heart. I shall climb up *Vipulgiri* slowly and slowly with my ascetic-companions. I shall select a black platform comparable in colour to black dark clouds and the abodes of angels. I shall carefully clean it, spread a straw bedding on it, and having seated I shall do self-introspection after accepting *Santhara* and discarding all types of food and drinks. I shall remain motionless in the posture of a cut off branch of tree not desiring early end. Thereafter, next morning, after sun-rise he came to Bhagavan Mahavir, moved his joined palms around him three times in respect, bowed to him, greeted him from a respectable distance—neither very close nor very far. He then sat down near him bowing his head at his feet.'

Bhagavan Mahavir then said—"O Skandak ! Is it a fact that last mid-night while engaging in spiritual practices, you thought that you had grown weak due to long, hard austerities, etc. (as mentioned in the description above up to the decision in thoughts that he may remain in *Santhara* without desiring early end). With these thoughts, you have come to me after sun-rise."

Then Bhagavan Mahavir said—"O Skanduk ! Is it true ?"

Skandak replied—"Bhante ! All this is true."

Mahavir then said—"O *Devanupriya* ! You do what you wish to, but do not delay in it."

■ *स्कन्दक की संलेखना*

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर की अनुमति प्राप्त होने से हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त, नंदित, प्रीतिमना, परम सौमनस वाला, हर्ष विकसित हृदय वाला होकर स्थान से उठा, उठकर तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके स्वयमेव पंच महाव्रतों का आरोपण किया, आरोपण करके साधु और साध्वियों से खमाता है, क्षमापना करके तथारूप योग्य स्थविरों के साथ धीरे-धीरे विपुलाचल पर चढ़ता है, चढ़कर मेघ-पटल के समान श्याम वर्ण वाले एवं देवों के वास स्थान रूप पृथ्वी शिलापट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भ संस्तारक बिछाया, बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुखकर पर्यंकासन से बैठ दस नखों सहित दोनों हाथों को जोड़, मस्तक स्पर्श कर अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोला—

"अरिहंत भगवन्तों को यावत् सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त हुओं को नमस्कार हो। श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को नमस्कार हो। तत्र विराजित भगवान महावीर को यहाँ रहा हुआ मैं वन्दना करता हूँ, वहाँ विराजित भगवान यहाँ रहे हुए मुझे देखें।" ऐसा कहकर वंदना नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास में सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान यावज्जीवन के लिए कर लिया था यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान जीवन-पर्यन्त के लिए कर लिया था। इस समय भी श्रमण भगवान महावीर के पास जीवन-पर्यन्त के लिए सर्व प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ, इसी तरह यावज्जीवन के लिए अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार का भी प्रत्याख्यान-त्याग करूँगा। जो मेरा यह इष्ट, कान्त, प्रिय शरीर है यावत् वात, पित्त, श्लेष्म, सन्निपात आदि विविध रोग और आतंक स्पर्श न करें, ऐसे इस शरीर को भी चरम उश्वास-निःश्वास पर्यन्त—मरण के अन्तिम क्षण तक के लिए त्याग करता हूँ—ऐसा करके संलेखना को प्रीतिपूर्वक धारण कर; भक्त-पान का त्यागकर; वृक्ष की तरह स्थिर रह; मरण की आकांक्षा न करते हुए विचरण करता है।

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर, बारह वर्ष तक पूर्ण रूप से श्रमण-पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल करके और साठ भक्त-पानों का त्याग करके (अनशन द्वारा) आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त करके कालधर्म को प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात् स्कन्दक अनगार को कालगत जानकर वे स्थविर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग करते हैं, करके पात्र और चीवरों को लेते हैं, लेकर विपुल पर्वत से धीरे-धीरे उतरते हैं, उतरकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान हैं वहाँ आते हैं, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"आप देवानुप्रिय का अंतेवासी स्कन्दक नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र, प्रकृति-स्वभाव से विनीत, प्रकृति-स्वभाव से उपशान्त, प्रकृति से ही अत्यन्त अल्पतम क्रोध, मान, माया, लोभ वाला, मार्दव, आर्जव सम्पन्न, गुरु आज्ञा में लीन अर्थात् गुरु की आज्ञा का पूर्णतया पालन करने वाला तथा भद्र और विनीत था, तथा जो आप देवानुप्रिय की अनुमति प्राप्त करके स्वयं ही पंच महाव्रतों का आरोपण कर श्रमणों और श्रमणियों से क्षमापना कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर धीरे-धीरे चढ़ा था यावत् मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल कर, साठ भक्त पानों का अनशन द्वारा त्यागकर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त कर, क्रमपूर्वक काल को प्राप्त हुआ। यह उसके उपकरण हैं।" (भगवतीसूत्र, शतक २, उद्देशक १)

■ SKANDAK'S *SAMLEKHANA*

Thereafter, securing permission of Bhagavan Mahavir, Skandak *Anagar* felt pleased, satisfied, delighted. He got up with an ascetic bent of mind, completely composed and overjoyed. He moved his joined palms near Bhagavan Mahavir to show his sense of respect. He bowed to him. He then repeated his five great vows himself. He forgave all monks and nuns from the core of his heart and sought apology for any disrespect on his part towards any of them. He then slowly climbed up *Vipulgiri* hill with other monks. He then selected an earthy platform, which was as black as the dark layer of clouds or the abodes of gods. He observed it carefully and cleaned it. He then carefully observed the place for toilet etc. He then spread a bedding of straw on that black platform. He seated himself on it facing towards east. He joined his palms and fingers and the ten nails. He touched his forehead with joined palms and said—

"I bow in obeisance to all the *Arihanta* and the liberated souls—the *Siddhas*. I bow to Bhagavan Mahavir who is going to be liberated and all such persons that are going to be liberated in their present life-span. I bow to Bhagavan Mahavir who is staying away from me but who is fully aware of all my activities." Thereafter, he said—"I had earlier taken the vow of discarding violence of all the living beings (*Pranatipat Pratyakhyan*) upto completely discarding wrong faith (*Mithya-darshan Shalya Pratyakhyan*) for my entire life-span. I again repeat these vows before Bhagavan Mahavir." He then discarded all food and drinks for the entire remaining life-

span. He discarded completely the attachment towards his body that was lovable, desirable, beautiful and whose care had been taken by him so far from the attack of diseases of various types including internal disorders. He left his attachment for his physical body till his last breath in the current life-span. He then undertook *Samlekhana* with a cheerful bent of mind, accepted complete fast till death, became firm and motionless like a tree and started meditation without desiring an early end.

Thus, Skandak *Anagar,* after studying *Samayik* and eleven *Anga Sutras* from the learned monks in Mahavir's *Sangh,* following meticulously the twelve year period of his initiation, observing *Samlekhana* for one month and purifying his soul, discarding food and water completely for one month at the fag end of his life, and undertaking penance for his past deeds died in a state of extreme equanimity.

Noticing that Skandak *Anagar* had breathed his last, the accompanying monks did observe silence and *kayotsarg* in this context at his *parinirvana* (death), picked up his pots, clothes and broom, and came down *Vipulgiri* slowly. They came near Bhagavan Mahavir, bowed to him and said—"O Lord ! Your disciple Skandak *Anagar* was good-natured, humble and quiet. He had almost full control over his passions—anger, conceit, greed and deceit. He was gentle, simple and always devoted to the master. He was meticulously careful in fulfilling the orders of the *guru.* He had gone to *Vipulgiri* with your permission. He had repeated his five great vows himself. He had forgiven all ascetics with a pure heart and sought their forgiveness for ill-thoughts and undesirable activities, if any. He had climbed up Vipulgiri with us slowly. He observed *Samlekhana* for one month, abandoned food and water completely for sixty meal-times, performed atonement for his misdeeds, accepted penance, did *pratikraman* to purify the performance of vows and died in a state of equanimity. Here are his belongings (pot, clothes and broom). (see *Bhagavati Sutra,* Shatak 2, Uddeshak 1)

● FIRST LESSON CONCLUDED ●

सुनक्षत्र अनगार : द्वितीय अध्ययन
SUNAKSHATRA *ANAGAR* : SECOND CHAPTER

उपक्षेप का पाठ इस प्रकार है–

३७. जइ णं भंते ! (जाव) उक्खेवओ।

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते ! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स बितियस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

३७. जम्बू अनगार ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा–

''भंते ! निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिक के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह भाव कहा है तो दूसरे अध्ययन का क्या भाव कहा है ?''

RELATING TO INQUIRY

37. Jambu Swami said to Sudharma Swami—"*Bhante* ! I have grasped the meaning of the first chapter of third *Varg* of *Anuttaraupapatik Sutra*. Please tell me the meaning of the second chapter as narrated by Bhagavan Mahavir."

३८. ''एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं, कायंदी नयरी। जियसत्तु राया। तत्थ णं कायंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ अड्ढा। तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते नामं दारए होत्था अहीण. (जाव) सुरूवे पंचधाइपरिक्खित्ते, जहा धण्णो तहा बत्तीसओ दाओ (जाव) उप्पिं पासायवडिंसए विहरइ।

३८. तब आर्य सुधर्मा जम्बू से इस प्रकार कहने लगे–''जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी। वहाँ का राजा जितशत्रु था। उस काकन्दी नगरी में भद्रा नाम की सार्थवाही रहती थी। धन-वैभव सम्पन्न यावत् अपरिभूता थी। उस भद्रा

सार्थवाही के सुनक्षत्र नाम का एक पुत्र था। सम्पूर्ण सुन्दर अंगोपांग वाला सुरूप था। युवा होने पर धन्यकुमार की तरह बत्तीस कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। बत्तीस दहेज आदि ऐश्वर्य का वर्णन धन्यकुमार की तरह समझें, धन्य की तरह ही महलों में भोगों में लीन रहने लगा। पाँच धायों से उसका परिपालन हुआ।

38. Sudharma Swami replied—"Jambu ! At that time during that period, there was a town named Kakandi. Jitshatru was its ruler. Bhadra *Sarthvahi* was residing there. She was well-to-do and prosperous. She had a son called Sunakshatra. He was well-built and very handsome. When he attained youth, he was married to thirty two young girls like Dhanya Kumar. The description of gifts from their parents to the girls may be understood as similar to those of Dhanya Kumar's wives. He started enjoying worldly pleasures in the palatial buildings like Dhanya Kumar. He had been brought up by five nurses.

३९. तेणं कालेणं तेणं समएणं। समोसरणं। जहा धण्णो तहा सुणक्खत्तो वि निग्गओ। जहा थावच्चापुत्तस्स तहा निक्खमणं, (जाव) अणगारे जाए ईरियासमिए (जाव) बंभयारी।

३९. उस काल उस समय में विहार करते हुए भगवान महावीर काकन्दी नगरी में पधारे। धन्यकुमार की तरह सुनक्षत्र कुमार भी भगवान के दर्शन करने गया। देशना सुनकर वैराग्य होने पर निष्क्रमण एवं अनगार होने का वर्णन थावच्चापुत्र की तरह समझें। ईर्यासमितियुक्त यावत् ब्रह्मचारी हो गया।

39. At that time, during that period, once Bhagavan Mahavir came to Kakandi. Like Dhanya Kumar, Sunakshatra Kumar went to have his *darshan.* He heard the spiritual discourse and decided to get initiated. Further description is the same as that of Thavachchaputra. He strictly followed *Iriya Samiti* (the restraints and precautions to be observed in movements) and became *brahmachari* (perfectly celibate).

४०. तए णं से सुणक्खत्ते अणगारे जं चेव दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे (जाव) पव्वइए तं चेव दिवसं अभिग्गहं। तहेव (जाव) विलमिव (जाव) आहारेइ, संजमेणं (जाव) विहरइ। (जाव) बहिया जणवयविहारं विहरइ। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ (जाव) संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से सुणक्खत्ते तेणं उरालेणं (जाव) जहा खंदओ।

४०. वह सुनक्षत्र अनगार जिस दिन भगवान महावीर के पास मुण्डित हुआ, प्रव्रजित हुआ, उसी दिन उसने धन्य की तरह बेले-बेले तप और पारणे में आयंबिल का कठोर अभिग्रह (प्रतिज्ञा) धारण किया, यावत् अनासक्त होकर आहार करता था। संयम में सावधान यावत् स्थिर होकर बाहर जनपद में विहार किया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। निरन्तर संयम तथा तप से आत्मा को भावित करके विचरण करने लगा।

वह सुनक्षत्र मुनि उस उदार तप से स्कन्दक अनगार की तरह शरीर से अत्यन्त कृश व दुर्बल हो गया।

40. Like Dhanya *Anagar,* Sunakshatra *Anagar* decided on the very day of his initiation to do two day fasts in continuation and to complete each such fast with *Ayambil* accepting food and water only if it is according to his *abhigrah* (special resolve). He used to take meals in a detached manner. He was extremely careful in observing his vows and restraints and being firm in them while going out in populated areas. He studied eleven *Anga Sutras.* He was moving out completely following the restraints and austerities and thus elevating his soul. Due to observance of austerities for a long period, he became extremely weak like Skandak *Anagar.*

At that time, during that period there was a town called *Rajagriha.*

४१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। राया निग्गओ। धम्मकहा। राया पडिगओ। परिसा पडिगया।

तए णं तस्स सुणक्खत्तस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि धम्मजागरियं जहा खंदयस्स। बहू वासा परियाओ गोयम पुच्छा। तहेव कहेइ (जाव) सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। "से णं भंते !" (जाव) "महाविदेहे सिज्झिहिइ।"

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥

४१. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था। गुणशीलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। एक बार वहाँ श्रमण भगवान महावीर पधारे। परिषदा आई। राजा भी दर्शन करने आया। धर्मकथा हुई। धर्मदेशना सुनकर राजा वापस चला गया। परिषदा भी वापस चली गई।

इसके पश्चात् सुनक्षत्र अनगार ने अन्य किसी समय रात्रि के चतुर्थ प्रहर में धर्म विचारणा की, जिस प्रकार स्कन्दक ने की थी। (प्रथम अध्ययन धन्य अनगार की तरह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर गये।) बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया। अन्त में गौतम की पृच्छा यावत् सुनक्षत्र अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ तैंतीस सागरोपम की स्थिति है। गौतम ने पूछा-"भगवन् ! वह सुनक्षत्र देव देवलोक से च्यवकर कहाँ पैदा होगा ?" यावत् "गौतम ! महाविदेह वास से सिद्ध होगा।"

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

41. At that time during that period there was a city called *Rajagriha.* There was *Gunsheelak Chaitya* (garden). King Shrenik was the ruler. Once Bhagavan Mahavir came their. People came to have his *darshan.* The king also came there. Spiritual discourse was made by Bhagavan Mahavir. Thereafter the king returned. The congregation also dispersed.

Later, once during the fourth quarter of night, Sunakshatra *Anagar* thought like Skandak and adopted the

same course as was done by Skandak (He climbed up *Vipulgiri* with other monks like Dhanya *Anagar* as mentioned in first chapter.) He observed ascetic conduct for many years. Further account is similar to that of Dhanya *Anagar* including inquiry of Gautam from Mahavir about his life. He was also re-born in *Sarvarth Siddh Viman* as an angel where his life-span is thirty three *Sagaropam*. Gautam inquired—"Bhante ! After the angelic life-span, where shall Sunakshatra Dev be re-born." Bhagavan Mahavir said—"He shall take birth in *Mahavideh* and attain salvation from there."

● SECOND LESSON CONCLUDED ●

इसिदास आदि अनगार : ३-१० अध्ययन
ANAGARS—ISIDAS AND OTHERS : 3-10 CHAPTERS

४२. एवं सुणक्खत्तगमेणं सेसा वि अट्ठ भाणियव्वा। नवरं, आणुपुव्वीए दोण्णि रायगिहे, दोण्णि साएए, दोण्णि वाणियग्गामे। नवमो हत्थिणापुरे। दसमो रायगिहे। नवण्हं भद्दाओ जणणीओ, नवण्हं वि बत्तीसओ दाओ। नवण्हं निक्खमणं थावच्चापुत्तस्स सरिसं। वेहल्लस्स पिया करेइ। छम्मासा वेहल्लए। नव धण्णे। सेसाणं बहु वासा। मासं संलहेणा। सव्वट्ठसिद्धे सव्वे महाविदेहे सिज्झिस्संति। एवं दस अज्झयणाणि।

४२. इस प्रकार सुनक्षत्र अनगार के सामान शेष आठ कुमारों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए। विशेष अन्तर यह है कि अनुक्रम से दो राजगृह में, दो साकेत में, दो वाणिज्यग्राम में, नवमा हस्तिनापुर में और दसवाँ राजगृह में। नौ की जननी भद्रा थी। नौ का विवाह एवं बत्तीस-बत्तीस दहेज आदि सब वर्णन धन्यकुमार के समान है। नौ का निष्क्रमण थावच्चापुत्र की तरह। वेहल्लकुमार का निष्क्रण उसके पिता ने किया। छह मास की पर्याय वेहल्ल की, नौ मास की पर्याय धन्य की, शेष की पर्याय बहुत वर्षों की। सबकी एक मास की संलेखना, सभी सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। सब महाविदेह वास से सिद्ध होंगे। इस प्रकार दस अध्ययन पूर्ण हुए।

42. The description of the remaining eight young men is similar to that of Sunakshatra *Anagar*. The only difference is that the first two belonged to *Rajagriha,* the next two to Saket, the later two to Vanijyagram, the ninth one to Hastinapur and the last one, *i.e.,* the tenth one to *Rajagriha.* Mother of the first nine was Bhadra. They were married to thirty two young girls each and their gifts in marriage from their parents were same as in case of Dhanya Kumar. They got initiated like Thavachchaputra. The initiation ceremony of Vihalla Kumar was performed by his father. The span of ascetic life of Vihalla Kumar was six months, that of Dhanya Kumar was nine months and of the remaining eight was many years. Each one of them observed *Samlekhana* for one month. All of them were re-born in *Sarvarth Siddh* heaven.

All of them shall re-incarnate in *Mahavideh* and attain salvation from there. Thus, all the chapters have been concluded.

४३. निक्खेवो एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं लोगणाहेणं लोगप्पदीवेणं लोगप्पज्जोयगरेणं अभयदएणं सरणदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा अप्पडिहय-वरणाणदंसणधरेणं जिणेणं जावएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयएणं तिण्णेणं तारएणं सिवं अयलं अरुयं अणंतं अक्खयं अव्वाबाहं अपुणरावत्तयं सिद्धिगइ णामधेयं ठाणं संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ अणुत्तरोववाइयदसाओ समत्ताओ ॥

४३. जम्बू से आर्य सुधर्मा ने कहा-"हे जम्बू ! धर्म की आदि करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वतः ही स्वयं सम्यक् बोध को पाने वाले, लोक के नाथ, लोक में प्रदीप, लोक में प्रद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरण के दाता, ज्ञान नेत्र देने वाले, धर्ममार्ग के दाता, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के उत्तम आचरण द्वारा चार गति रूप संसार का अन्त करने वाले, धर्म-चक्रवर्ती, अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक, स्वयं राग-द्वेष के विजेता, अन्यों को राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने में सहायता करने वाले, स्वयं बोध को पाने वाले तथा दूसरों को बोध देने वाले, स्वयं मुक्त होकर दूसरों को मुक्त कराने वाले, स्वयं तिरे हुए तथा दूसरों को तारने वाले तथा उपद्रवरहित, अचल, रोगरहित, अन्तरहित, अक्षय, बाधारहित, पुनरागमन से रहित, सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वाले श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरौपपातिकदशा के तृतीय वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

॥ अनुत्तरौपपातिकदशा समाप्त ॥

43. Arya Sudharmas said—"Jambu ! Bhagavan Mahavir was fountain head of religion. He was founder of the religious order. He was self-enlightened. He was master of the world, glitter of the world, beacon light of the world. He was erasor of fears. He was giver of shelter. He was opener of the vision for gaining knowledge. He was giver of the spiritual path. He was giver of spirituality, the Dharma. He was master of spirituality. He was the terminator of wandering in four states of existence by his ideal spiritual conduct. He was the king

emperor in the domain of spirituality. He possessed undefiable knowledge and firm and clear perception. He was conqueror of feelings of attachment and aversion. He was helping others in overcoming completely the currents of attachment and aversion. He had gained knowledge by his personal efforts and was giver of high spiritual knowledge to others. He had liberated himself (from the chain of birth and death, the wandering in the worldly ocean) and was guiding others to obtain that state of liberation. He had crossed the worldly ocean and was guiding others to cross it successfully. He had reached the place free from disturbances, free from diseases, free from obstacles, free from falling into worldly existence. That place is a fixed one. It can never be eliminated. It is called *Siddh* state—the state of complete liberation. Bhagavan Mahavir, who is possessor of all the above qualities and who has now reached the final state of liberation, had narrated the third *Varg* of *Anuttaraupapatik-dasha Sutra* in this way."

४४. अणुत्तरोववाइयदसाणं एगो सुयक्खंधो। तिण्णि वग्गा। तिसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सइ। तत्थ पढमे वग्गे दस उद्देसगा। विइए वग्गे तेरस उद्देसगा। तइए वग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नायाधम्मकहाणं तहा नेयव्वं।

॥ अणुत्तरोववाइयदसा सुत्तं णामं नवमं अंगं समत्तं ॥

४४. अनुत्तरौपपातिकदशा का एक श्रुतस्कन्ध है। तीन वर्ग हैं। तीन दिनों में उद्दिष्ट होता है अर्थात् तीन दिन में पढ़ाया जाता है। उसके प्रथम वर्ग में दस उद्देशक हैं, द्वितीय वर्ग में तेरह उद्देशक हैं, तृतीय वर्ग में दस उद्देशक हैं। शेष ज्ञाताधर्मकथासूत्र के समान समझना चाहिए।

॥ अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र नामक नवम अंग समाप्त ॥

44. *Anuttaraupapatik-dasha Sutra* has one *Shrutskandh,* three *Vargs* and it is recited in three days. It is taught in three days. There are ten *Uddeshaks* in the first *Varg,* thirteen *Uddeshaks* in second *Varg* and ten *Uddeshaks* in the third *Varg.*

● ANUTTARAUPAPATIK-DASHA SUTRA NINTH *ANGA* CONCLUDED ●

अनध्याय काल

(स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी म. द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत)

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्याय काल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्याय काल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञ कथित, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण इनका भी आगमों में अनध्याय काल वर्णित किया गया है। जैसे–

स्थानांगसूत्र के अनुसार दस (१०) आकाश से सम्बन्धित, दस (१०) औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार (४) महाप्रतिपदा (पड़वा), चार (४) महाप्रतिपदा की पूर्णिमा, और चार (४) सन्ध्या काल। इस प्रकार बत्तीस अनध्याय (अस्वाध्याय) माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है। जैसे–

APPROPRIATE TIME FOR STUDY OF SCRIPTURES

Holy books should be studied only at a time as prescribed in the scriptures. There are times when this study is prohibited.

In scriptures like *Manusmriti* etc. also the prohibited time has been described. Vedic people also mention about this period in the *Vedas*. Other Aryan holy books also agree to this particular period. Jain scriptures too, as they have been associated with the omnipresent and established by the *devas*, are prohibited to be studied in that particular period, *e.g.*—

According to prohibited periods are ten relating to symptoms in the sky, ten relating to the physical body, four relating to first day of the fortnight, four relating to full moon of the fortnight, four relating to waned moon of the fortnight. Thus, 32 periods are forbidden which are briefly described below—

(१) दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

(२) दसविहे ओरालि असज्झातिते, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानांगसूत्र, स्थान १०

(३) नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए।

(४) नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते।

कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानांगसूत्र, स्थान ४, उद्देशक २

आकाश-सम्बन्धी दस अनध्याय

(१) उल्कापात (तारापतन)—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(२) दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(३) गर्जित—बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

(४) विद्युत्—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

(५) **निर्घात**–बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर या बादलों सहित आकाश में बिजली कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

(६) **यूपक**–शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(७) **यक्षादीप्त**–कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(८) **धूमिका (कृष्ण)**–कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका–कृष्ण कहलाती है। जब तक वह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(९) **मिहिकाश्वेत**–शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

(१०) **रज-उद्‌घात**–वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूल छा जाती है। जब तक यह धूल फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश-सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

RELATING TO SYMPTOMS IN THE SKY

(1) If an important star has fallen, then the study is forbidden for three hours.

(2) If there is red colour in the sky then the study should not be done.

(3) No study for three hours after thunder of clouds.

(4) Upto three hours after lightening, study is not allowed.

(5) If there is thunder without clouds in the sky or if there is crackling with presence of clouds, then study is forbidden for 6 hours.

(6) The evening time of 1st, 2nd and 3rd day of the fortnight when the moon waxes, is forbidden for the study.

(7) Till the time when the after glow of lightening is visible in any direction, study should not be done.

(8) From October to January, there is fog. Till the time there is fog, study is forbidden.

(9) During winters, there is fine fog of white colour. Till the time there is fog, that is forbidden time.

(10) Due to air movement, if there is dust in the air, then the study is not allowed.

औदारिक शरीर-सम्बन्धी दस अनध्याय

(११)-(१२)-(१३) **हड्डी, माँस और रुधिर**-पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, माँस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जायें, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आसपास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं। इसी प्रकार मनुष्य-सम्बन्धी अस्थि, माँस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म को अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

(१४) **अशुचि**-मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

(१५) **श्मशान**-श्मशान भूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

(१६) **चन्द्र-ग्रहण**-चन्द्र-ग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(१७) **सूर्य-ग्रहण**-सूर्य-ग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्याय काल माना गया है।

(१८) **पतन**-किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र-पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाह-संस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ़ न हो, तब तक शनैः-शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

(१९) **राजव्युद्ग्रह**—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाये, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करे।

(२०) **औदारिक शरीर**—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा सौ हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त दस कारण औदारिक शरीर-सम्बन्धी कहे गये हैं।

(२१)–(२८) **चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा**—आषाढ़-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

(२९)–(३२) **प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्ध-रात्रि**—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्ध-रात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त बत्तीस प्रकार का अस्वाध्याय काल छोड़कर स्वाध्याय काल में स्वाध्याय करना चाहिए, जैसे—**पूर्वान्ह** (सूर्योदय से एक घड़ी पश्चात् बारह बजे से पहले)। **अपरान्ह** (दोपहर के बाद सूर्यास्त के पूर्व तक)। **प्रदोष** (एक घड़ी रात बीत जाने पर मध्य-रात्रि के पहले तक)। **प्रत्युष** (मध्य-रात्रि के बाद सूर्योदय से एक घड़ी पहले तक)।

RELATING TO THE PHYSICAL BODY

(11)—(12)—(13) Till bone, flesh or blood of any five-sensed being is visible, study is not to be done. Similarly, human bone, flesh and blood is also considered taboo for study. Their presence forbids study for 3 days.

(14) Presence of stool and urine prohibits study.

(15) 100 *hath* around a funeral place is unfit for study.

(16) Study is prohibited during lunar eclipse for a minimum of 24 hours, medium of 36 hours and maximum of 48 hours.

(17) The same holds good during solar eclipse.

(18) Till the funeral of a big king or national leader after his death, study is prohibited.

(19) Till the time peace does not prevail after a fight between two neighbouring kings, study is forbidden and thereafter for 24 hours.

(20) Physical Body—In case a five-sensed animal dies or is killed in the *upashraya* (place where ascetics are staying), scriptures should not be studied till the dead body is there. If the dead body is lying at a distance upto 100 *hath*, then also the scriptures cannot be studied.

The above mentioned ten taboos relate to physical body.

(21)—(28) Four auspicious days and four pratipadas—Fifteenth day of the bright fortnight in *Ashadh* (June), *Ashvin* (September), *Kartik* (October) and *Chaitra* (March) are known as *Mahotsava* (Auspicious days). The day immediately followings are *mahapratipada*. Scriptures should not be studied in these eight days.

(29)—(32) Scriptures should not be studied for 24 minutes immediately preceding and immediately following the sunrise, the noon, the sunset and mid-night.

Avoiding the aforesaid 32 prohibited periods studies should be conducted during time suitable study, *i.e.*, *Purvanha* (48 minutes after dawn till just before noon); *Aparanha* (after noon till just before sunset); Pradosh (after 48 minutes into the night till just before mid-night) and Pratyush (after mid-night till 48 minutes before dawn).